गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

वर्ष: 42, अंक: 3-4, मई - अगस्त, 2019 (संयुक्तांक)

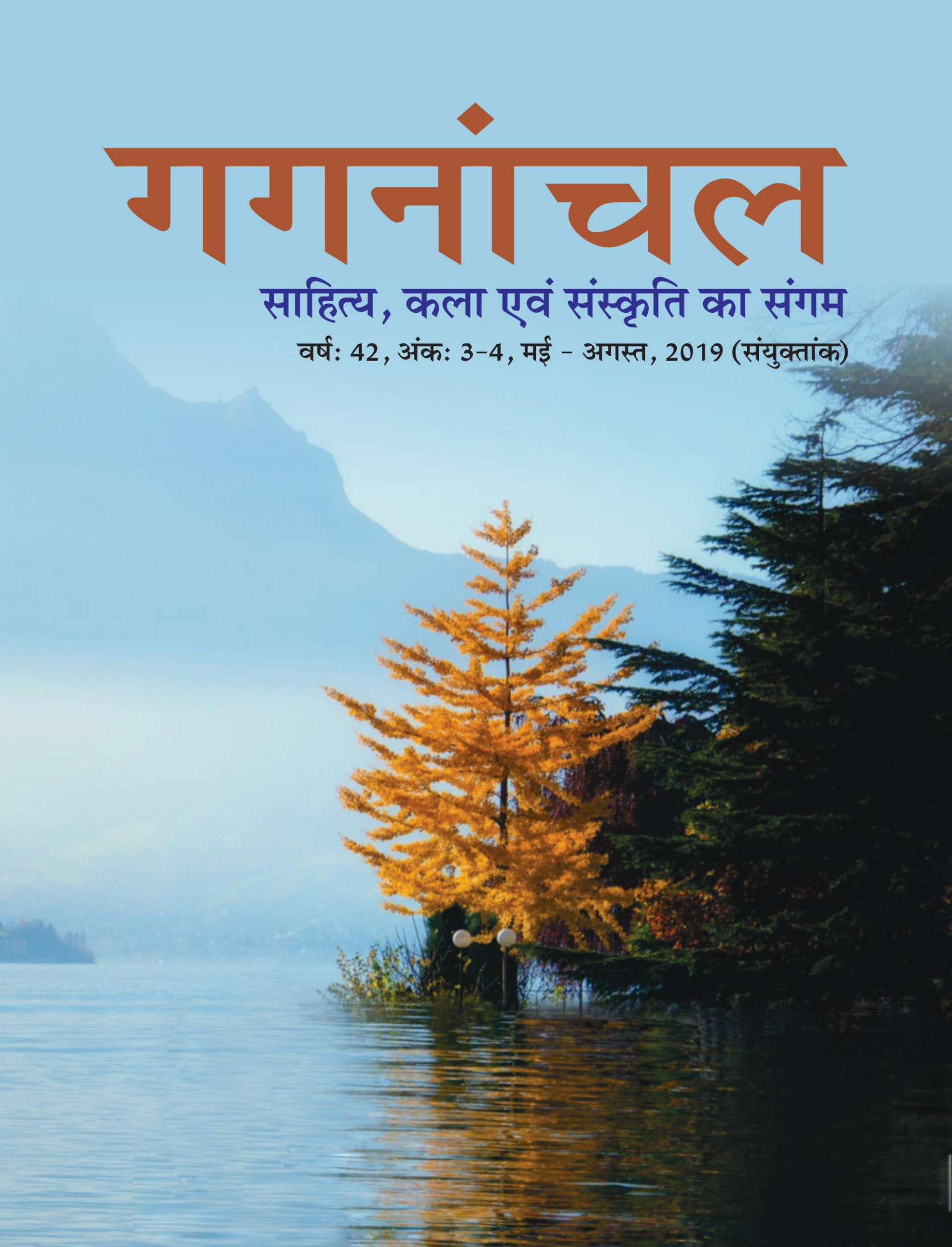

महावीर प्रसाद द्विवेदी

जहाँ हुए व्यास मुनि-प्रधान,
रामादि राजा अति कीर्तिमान।
जो थी जगत्पूजित धन्य-भूमि ,
वही हमारी यह आर्य्य-भूमि ।।

जहाँ हुए साधु हा महान
थे लोग सारे धन-धर्म्मवान।
जो थी जगत्पूजित धर्म्म-भूमि,
वही हमारी यह आर्य्य-भूमि।।

गगनांचल

मई-अगस्त, 2019

प्रकाशक

अखिलेश मिश्र

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली

संपादक

डॉ. हरीश नवल

सहायक संपादक

डॉ. आशीष कंधवे

ISSN : 0971-1430

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

आज़ाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली-110002

ई-मेल: **spdawards.iccr@gov.in**

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है।
www.iccr.gov.in/journals/hindi-journals
पर क्लिक करें।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अत: प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों और फोटोग्राफ्स की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद की नहीं।

शुल्क दर

वार्षिक	:		₹ 500
		यू.एस.	$ 100
त्रैवार्षिक	:		₹ 1200
		यू.एस.	$ 250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक : इमेज इंडिया, नई दिल्ली-110002
9953906256

अनुक्रम

विमर्श

हिंदी-कविता में हिमालय का सांस्कृतिक स्वरूप 5
डॉ. अशोक कुमार ज्योति

'पद्मावत' और पूर्वराग 9
रेनू यादव

मीडिया: चयन का सवाल और विजुअल्स की दुनिया का सच 15
हर्षबाला शर्मा

स्वतंत्रतापूर्व हिन्दी पत्रकारिता की भाषा 19
राहुल राज आर्यन

शैक्षणिक विप्लव का राग: राग दरबारी 23
डॉ. हरींद्र कुमार

नरेंद्र मोहन की आत्मकथा का सच 26
डॉ. कमलेश सचदेव

पश्चिमी इतिहासकारों के दृष्टि-दोष का परिणाम 33
अखिलेश आर्येन्दु

मैथिलीशरण गुप्त के राम काव्य में सांस्कृतिक चेतना 36
गुरमीत सिंह

अमरकान्त की कहानियों का रचनात्मक सरोकार 41
डॉ. अजय कुमार यादव

साठोत्तर नाटकों में वर्ग-वैषम्य एवं व्यक्ति तथा समाज का द्वन्द्व 45
डॉ. मंजुला दास

व्यक्तित्व

यथार्थ के ओजस्वी अनुगायक : भवानी प्रसाद मिश्र 48
राजेंद्र परदेसी

समालाप

हिमांशु जोशी से साक्षात्कार 51
आरती स्मित

संस्मरण

अपना और पराया 55
डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरूण'

स्मृति में कोरिया 58
विजया सती

पर्यटन

फ्रांसीसी संस्कृति का जीता जागता उदाहरण : पांडिचेरी 61
ज्योति प्रकाश खरे

चार धाम, बनाम चार ग्रेटर -धाम 63
राजेश जैन

संस्कृति

हमारी संस्कृति की पहचान हिडिम्बा देवी और वीर घटोत्कच के मंदिर 68
सविता चड्ढा

कथाक्रम

ड्रीम डेट 72
सीमा सक्सेना असीम

दोष 77
मूल: वासदेव मोही; अनुवाद: डॉ. प्रेम प्रकाश

उर्मिला 81
मूल: गौरहरि दास; अनुवाद: सुशील दाहिमा

दुखहरण 88
कमलेश पांडेय 'पुष्प'

करवा-चौथ 91
अंजु रंजन

जहरबाद 95
इंदिरा दाँगी

रिज 104
ज्ञानप्रकाश विवेक

दोनों आसमानों के रंग... 110
ज़किया ज़ुबैरी

वह लड़की 121
नरेंद्र कोहली

आवारागर्द 132
मूल: कुर्रत-उल-ऐन हैदर; अनुवाद: खुर्शीद आलम

लघुकथा

बंटवारे का सामान 137
महावीर राजी

निर्णय 138
किशन लाल शर्मा

मोयली की बेटी 139
मृदुला श्रीवास्तव

अर्जुन या एकलव्य 140
रोहित कुमार 'हैप्पी'

गुलशन पिपलानी की दो लघुकथाएँ 141

नजरिया 142
आशा शर्मा

लोक संस्कृति

पर्वत राग 143
सुदर्शन वशिष्ठ

शोध पत्र

रामदेव धुरंधर के उपन्यास 'ढलते सूरज की रोशनी' में समसामयिक बोध 146
शालेहा प्रवीन

21वीं सदी के निबंध साहित्य में संबंधों का बदलता स्वरूप 149
मनप्रीत सिंह संधू

काव्य निधि

दो डोगरी कविताएँ 154
मूल: पद्मा सचदेव; अनुवाद: कृष्ण शर्मा

मेरा गाँव 155
डॉ. घमंडीलाल अग्रवाल

बेटे के लिए कवितायें 156
गंभीर सिंह पालनी

जनार्दन मिश्र की दो कविताएँ 157

क्षणिकाएं 158
प्रीति प्रकाश

ना हार तू 158
प्रगति गुप्ता

मोहिनी वाजपेयी के दो गीत 159

पानी: तीन स्थितियाँ 160
राजकुमार कुम्भज

ग़ज़ल 160
राजेंद्र निशेश

तबला 161
शहंशाह आलम

निर्देश निधि की तीन कविताएँ 162

राजेंद्र स्वर्णकार के संगीतमय दोहे 163

शब्द 164
सलिल सरोज

नहीं चाहिए 165
डॉ. परमजीत ओबराय

बंटवारे के बाद 166
मो. बाबर खान

बाजार में हो 167
विवेक गौतम

सावन गीत 168
जितेंद्र निर्मोही

गौरैया 169
अनिल प्रभा कुमार

जसवीर त्यागी की तीन कविताएँ 170

प्रेम बिहारी मिश्र की गीत व गजल 172

विनोद

अभी तो मैं जवान हूँ 173
अर्चना चतुर्वेदी

व्यंग्य

वसंत के बहाने 176
नीरज नीर

पुरुषों की प्रतिनिधि पत्रिका 178
सूर्यकांत नागर

हृदय का पत्र मस्तिष्क के नाम 180
शोभना श्याम

समीक्षा ग्राम

प्रेम जनमेजय कृत 'भ्रष्टाचार के सैनिक' 182
तरसेम गुजराल

संजय सिंह बघेल कृत 'विज्ञापन और ब्रांड' 185
अरूण कुमार भरत

राज हीरामन कृत 'मेरे आते जाते पत्र' 188
संतोष अर्श

अंततोगत्वा

मेरा हाफलाइनर: आपकी नज़र 193
हरीश नवल

प्रकाशकीय

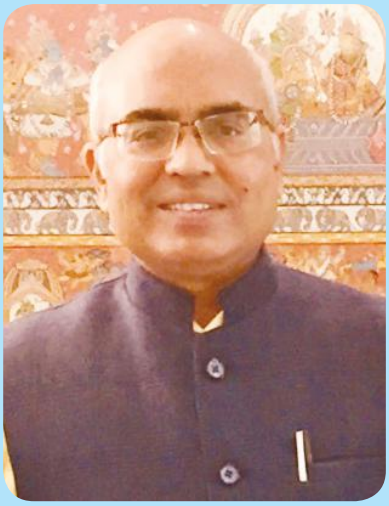

अखिलेश मिश्र
महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् ने विश्व संस्कृति दिवस के अवसर पर भारतीय सौम्य शक्ति (सॉफ्ट पावर) पर एक वार्षिक व्याख्यान माला स्थापित की थी जिसका शुभारंभ 21 मई 2018 को माननीय विदेश मंत्री सुषमा स्वराज जी के उद्बोधन से हुआ था। सुषमा जी ने भारत के सांस्कृतिक सौम्य शक्ति के विभिन्न तत्वों पर अत्यंत विचारोत्तेजक एवं सारगर्भित व्याख्यान दिया था, जिसमें भारत की भाषाओं की विविधता, उसकी समृद्धि एवं उनकी महत्ता का भी प्रमुखता से उल्लेख किया था।

माननीया सुषमा स्वराज अब हमारे मध्य नहीं है किन्तु उनका भारतीय संस्कृति, कलाओं और भाषाओं में अगाध प्रेम और भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की गतिविधियों में व्यक्तिगत रूचि तथा 'गगनांचल' को उनका सतत् मार्गदर्शन चिरकाल तक हमें प्रेरित करते रहेंगे। सुषमा जी अनेक भारतीय भाषाओं में पारंगत थीं, परंतु हिंदी और संस्कृत में उनकी विशेष रूचि थी, जिनके संवर्धन के विषय में उन्होंने आजीवन प्रयास किया।

भाषा केवल शब्दों का समुच्चय, उनके प्रयोग का विधि-विधान का या केवल संपर्क-संवाद का साधन मात्र नहीं है। भाषा के द्वारा ही पीढ़ी-दर-पीढ़ी संस्कृति, दर्शन, लौकिक ज्ञान और अनुभव संप्रेषित होते हैं। कबीर, सूर, रैदास और गुरू नानक देव जैसी विभूतियां अपनी वाणी से सहस्राब्दियों की हमारी चिंतन, परंपरा, आध्यात्मिक और लौकिक ज्ञान का अमृतधार प्रवाहित करते थे। दुर्भाग्यवश 19वीं शताब्दी में लॉर्ड मैकाले द्वारा थोपी गई शिक्षा प्रणाली के काल हम अपने पारंपरिक ज्ञानार्जन की परंपरा से दूर होते जा रहे हैं। विदेशी प्रभाव के कारणा आत्म-भाषाओं के स्थान पर अंग्रेजी के प्रत्यारोपण के परिणाम का हमें अभी समुचित आभास तक नहीं है। केवल संबोधन का प्रश्न हो तो 'मम्मी' और 'पापा' पर्याप्त हो सकते हैं, किन्तु वे ''माता' और ''पिता'' के कभी नहीं पर्याप्त पर्याय हो सकते हैं। माता और पिता शब्दों के जो गुणवाची भाव हैं व हजारों वर्षों की दार्शनिक, चिंतनपरंपरा के द्योतक हैं-''माता भूमि: पुत्रोऽहम् पृथिव्या:'' और ''अदिति: माता स पिता स पुत्र:'' में अंग्रेजी के 'मदर' और 'फादर' का उपयोग अनर्थकारी ही होगा।

हर भारतीय का कर्तव्य है कि अपनी माता-सदृश ही अपनी मातृभाषा का भी सम्मान करें और उसके गौरव और समृद्धि के लिए समर्पित रहे। भारत की सभी भाषायें और बोलियाँ एक विशाल महावृक्ष की शाखाओं-उपशाखाओं जैसी हैं जो एक ही ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, और दार्शनिक उर्वरता से पोषित प्रफुल्लित हुई हैं। सभी भाषाओं ने एक दूसरे को अपने शब्दों से, अपनी सृजनात्मक ऊर्जा से उत्प्रेरित किया है एवं एक दूसरे को समृद्धवान भी बनाया है। किसी भी भाषा का, बोली का ह्रास समस्त देश की क्षति है और सबका समन्वित विकास ही देश के भाषायी संपत्ति का संरक्षण एवं संवर्धन कर सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में सभी भाषाओं के साहित्य का दूसरी भाषाओं में स्तरीय अनुवाद की नितांत आवश्यकता है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, साहित्य अकादमी एवं विभिन्न भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार और शोधकार्यों में संलग्न संस्थाओं के साथ मिलकर इस दिशा में कार्य करना चाहेगी। सभी दिशाओं से सकारात्मक विचारों और सहयोग का स्वागत है।

अखिलेश मिश्र

संपादकीय

हरीश नवल
संपादक

किसी भी पत्रिका और रचना की गुणवत्ता का सबसे सशक्त मापक 'पाठक' होता है। संतोष है कि 'गगनांचल' के पाठकों का प्रेम, सम्मान और उत्साहवर्धन इसे निरंतर निखार रहा है। पिछला अंक जो अमरीका और कनाडा के हिंदी लेखन पर आधारित था, भारत, अमरीका और कनाडा के अतिरिक्त अन्य देशों में भी पसंद किया गया और पाठकों, लेखकों के दर्जनों पत्र तथा सोशल मीडिया के द्वारा बीसियों संदेश हमें प्राप्त हुए।

गत अंक का लोकार्पण न्यूयॉर्क में स्थित भारतीय कौंसलावास में हुआ जिसमें अमरीका के अनेक गणमान्य नागरिक और हिंदी रचनाकार तथा हिंदी अध्यापन-शिक्षण से संबंद्ध व्यक्तित्व पधारे। इस सफल आयोजन के संयोजक थे प्रसिद्ध रचनाकार श्री अनूप भार्गव। भारत से इस सार्थक समारोह के लिए 'गगनांचल' के संपादक के रूप में स्वयं मैं और सहायक संपादक डॉ. आशीष कंधवे सम्मिलित हो सके थे। हमारे पास थे भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के यशस्वी अध्यक्ष डॉ. विनय सहस्त्रबुद्धे और मनस्वी महानिदेशक श्री अखिलेश मिश्र की शुभकामनाएं और संदेश जो वहाँ सार्वजनिक रूप से प्रसारित किए गए।

'गगनांचल' का स्वरूप अंतरराष्ट्रीय है जिसका एक बड़ा कारण हिंदी भाषा है। विश्व के लगभग पौने दो सौ देशों में हिंदी किसी न किसी रूप में है। यह हिंदी सिनेमा से लेकर तुलसी, कबीर, प्रेमचंद के साहित्य तक उपलब्ध है। आमजन की रूचि से लेकर विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम तक प्रसारित है। 'गगनांचल', हिंदी के माध्यम से भारतीय संस्कृति और साहित्य के साथ-साथ अन्य देशों के साहित्य का भी प्रकाशन करता है।

यह अंक कुछ अपरिहार्य कारणों से विलंब से प्रकाशन में आया है। इस संयुक्तांक में विशेष है कि इस बार पाठकों/रचनाकारों के आग्रह को ध्यान में रखते हुए 'लंबी कहानी' विधा में इंग्लैंड की जक़िया ज़ुबैरी, भारत के नरेंद्र कोहली और इंदिरा दांगी की कहानियाँ आप पढ़ेंगे। उर्दू की प्रख्यातनामा कुर्रत-उल-ऐन-हैदर की लंबी उर्दू कहानी भी इस अंक में शामिल है जिसका अनुवाद श्री खुर्शीद आलम ने किया है। युवा पाठकों की एक मांग 'शोध-पत्र' प्रकाशन की थी, अतः दो शोध-पत्र प्रकाशित कर पूर्ण की गई है।

स्वर्गीया, विदुषी पूर्व विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज जो 'गगनांचल' की अंक योजना में बहुत रूचि लेती थी और बहुमूल्य सुझाव देती थी, की स्मृति में यह अंक समर्पित है।

सादर नमन।

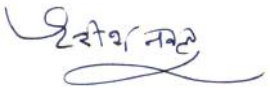

हिंदी-कविता में हिमालय का सांस्कृतिक स्वरूप

डॉ. अशोक कुमार ज्योति

भाषा संस्कृति का अभिन्न अंग है। भाषा के माध्यम से ही व्यक्ति संस्कारित होता है। जन्म से लेकर जीवन-पर्यंत मनुष्य भाषा के सहारे हँसता-खेलता है, जीवन जीता है। मनुष्य की वाग्धारा जब शुरू होती है तो उसके मुख से निःसृत शब्द भाषा का ही अंग होता है।

संस्कृति संस्कारित आचरण है। जब विचार, आचरण, दिनचर्या, जीवनचर्या, रीति, परंपरा, आचारसंहिता, वाक्-शैली इत्यादि धरातलों पर हम अपनी सुविधा, अनुकूलता, सुख तथा समाज-कल्याण की भावना से परिवर्तन कर लेते हैं और यह परिवर्तन सदैव लोक-हितैषी होता है तो इसे हम 'संस्कृति' की संज्ञा देते हैं। प्रकृति परमात्मा या कुदरत की देन है, जबकि संस्कृति मानव की देन है।

'संस्कृति' शब्द पर विचार करते हुए हमारा ध्यान उसकी व्युत्पत्ति पर जाता है। 'कृ' धातु में 'सम्' उपसर्ग और 'क्तिन्' प्रत्यय लगाने से बना है 'संस्कृति' शब्द, जिसका अर्थ होता है—परिष्कार करना। परिष्कार होता है जीवन-व्यवहार का, रहन-सहन का, आचरण का, जीवन-शैली का, भाषा का, साहित्य का, धार्मिक प्रवृत्तियों का, शिक्षा इत्यादि का। इन सबके समन्वय से परिष्कृत संस्कृति का निर्माण होता है।

परिष्कार 'संस्कार' शब्द का वंशज है, जिसका तात्पर्य भी सुधारने या शुद्ध करने से है। अन्य जीवधारियों के विपरीत मनुष्य अपनी बौद्धिक शक्ति के उपयोग से अपनी मूल प्रवृत्तियों को शोधता है तथा इनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के हित जीवन का एक ढाँचा उठाता है। वह अपने अनुभवों के आधार पर कुछ व्यवहारों को सीखता चलता है। इन्हीं सीखे हुए व्यवहारों तथा सामाजिक परंपरा से प्राप्त अन्य लोगों के सीखे हुए व्यवहारों को संस्कृति का नाम दिया गया है। संस्कृति के द्वारा ही मनुष्य मनुष्य बनता है।

संस्कृति और प्रकृति पर विचार करते हुए महीयसी महादेवी वर्मा ने लिखा है—''संस्कृति' शब्द से हमें जिसका बोध होता है, वह वस्तुतः ऐसी जीवन-पद्धति है, जो एक विशेष प्राकृतिक परिवेश में मानव-निर्मित परिवेश संभव कर देती है और फिर दोनों परिवेशों की संगति में निरंतर स्वयं आविष्कृत होती रहती है। यह जीवन-पद्धति न केवल बाह्य, स्थूल और पार्थिव है और न मात्र आंतरिक, सूक्ष्म और अपार्थिव। वस्तुतः उसकी ऐसी दोहरी स्थिति है, जिसमें मनुष्य के सूक्ष्म विचार, कल्पना, भावना आदि का संस्कार, उसकी चेष्टा, आचरण, कर्म आदि के परिष्कार में

सम्पर्कः ए-6ए, धर्म कॉलोनी, पालम विहार एक्स्टेंशन, गुरुग्राम-122017 हरियाणा, मोबाइल : 9911382072, ई-मेल : ashokpjyoti@gmail.com

व्यक्त होता है और फिर चेष्टा, आचरण आदि बाह्याचार की परिष्कृति उसके अंतर्जगत् पर प्रभाव डालती है।...

लगभग 1000 वर्ष पूर्व जब साहित्य का लेखन शुरू हुआ तो लेखकों के उल्लेख का मुख्य तथ्य प्रकृति रही। मनुष्य स्वभावतः कृतज्ञ प्राणी रहा है, इसीलिए वह जिस माध्यम से जो कुछ प्राप्त करता है, उसके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता है। यही कारण रहा कि प्रकृति में विद्यमान् सूर्य, चंद्र, पृथ्वी, आकाश, वायु, अग्नि, वृक्ष, पर्वत—सबकी पूजा की जाने लगी। भारत और विश्व के आकर्षण हिमालय को भी लेखन में पर्याप्त स्थान मिला। भारतीय संस्कृति में हिमालय का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिंदी-कवियों ने संस्कृति के चर्चा-क्रम में अपनी कविताओं में हिमालय का उल्लेख किया है। यहाँ वे कविताएँ समीक्षणीय हैं।

भाषा संस्कृति का अभिन्न अंग है। भाषा के माध्यम से ही व्यक्ति संस्कारित होता है। जन्म से लेकर जीवन-पर्यंत मनुष्य भाषा के सहारे हँसता-खेलता है, जीवन जीता है। मनुष्य की वाग्धारा जब शुरू होती है तो उसके मुख से निःसृत शब्द भाषा का ही अंग होता है।

कविवर गिरिधर शर्मा ने हिंदुस्तान की भाषा हिंदी की शाश्वतता की बात कही है कि इस देश में कितनी भी भाषाएँ क्यों न आ जाएँ, हिंदी को कितना भी क्यों न दबाया जाए, वह उसी तरह अडिग है, शाश्वत है, जिस तरह कितनी भी तेज हवा चलने या आँधी-तूफान आने से हिमालय जरा भी नहीं हिलता। इसलिए हिंदुस्तान में जन्म लेनेवालों के लिए हिंदी जानना आवश्यक है। गिरिधर शर्मा हिंदी के हिमालयत्व का बखान करते हुए लिखते हैं—

अँगरेजी जरमन फ्रेंच ग्रीक लैटिन ज्यों,
रशियन जपानी चीनी प्राकृत प्रमानी हो।

तामिल तैलंगी तूलू द्राविड़ी मराठी ब्राह्मी,
उड़िया बंगाली पाली गुजराती छानी हो।

जितनी अनार्य आर्य भाषा जग जाहिर हैं,
फारसी ऐराबी तुर्की सब मन आनी हो।

जनम बृथा है तो भी मेरे जान मानव को,
हिंदी में जनम पा के हिंदी जो न जानी हो।।

उदय न होगा भानु पूर्व छोड़ पश्चिम में,
आकर्षण शक्ति कहीं धरा की न जावेगी।

हिलेगा न हिमालय चाहे जैसी हवा चले,
मणिमय दीये की न ज्योति बुझ जावेगी।।

शुचिता और शुद्ध आचरण भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल पक्ष है। सात्त्विकता के लिए हम सदैव प्रयत्नशील रहे हैं। हमारे धर्म-ग्रंथों में भी पाप-कर्म से बचने की बात की गई है। कविवर सैयद अमीरअली 'मीर' ने 'हिमगिरि' कविता में हिमालय से निकली परम पावन पुण्यतोया गंगा से निवेदन करते हैं कि समाज में व्याप्त पाप के दुश्मन को तुम धो डालो और इस हिंदुस्तान को शुद्ध कर दो—

तारीफ सुनते हैं तुम्हारी हम बहुत,
सार्थक करतीं नहीं क्यों नाम को।
मात गंगे! पाप अरि को दो बहा,
शुद्ध कर दो, हिंद के उद्दाम को।।

वास्तु-शिल्प, ललित-कला, चित्रांकन, नृत्य इत्यादि भारतीय संस्कृति के अंग रहे हैं। संस्कृति की इस चित्रांकन परंपरा का उद्घोष महाकवि कालिदास ने भी किया है। महाकवि ने उसमें हिमालय को भी स्थान दिया है।

हिमालय प्रकृति-स्थल के साथ संस्कृति-स्थल भी है। जहाँ आदर्श और गौरव का समन्वय हो, वह हमारी सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक माना जाएगा। इस दृष्टि से गोपालशरण सिंह की ये पंक्तियाँ समीचीन हैं—

हिमालय! हिम-शेखर! हिम-प्राण! दिव्यता के तुम हो अवतार,
उच्चता के तुम हो आदर्श, देश के गौरव हो साकार!

गोपालशरण सिंह ने अपनी इसी कविता 'हिमालय के प्रति' में हिमालय का मानवीकरण करते हुए कहा है कि यह हिमालय भारत की पीड़ा को नहीं सह सकता, इसलिए पृथ्वी की पिपासा को शमित करने के लिए अनेक नदियों का निर्झरण किया है। वे लिखते हैं—

नहीं सह सकते हो तुम ताप, शीघ्र होते हो द्रवित अपार,
बुझाने को जगती की प्यास बहा दी है नदियों की धार।।

हिमालय संस्कृति का ऐसा पीठासन है, जिसको कवि ने उड्डयन-पट्टिका के रूप में प्रयोग किया है। युधिष्ठिर ने इसी

हिमालय से स्वर्ग की यात्रा की थी। कवि को अर्जुन, भीम के साथ गांडीव और गदा का भी स्मरण हो रहा है–

रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ,
जाने दे उसको स्वर्ग धीर,
पर, फिरा हमें गांडीव-गदा
लौटा दे अर्जुन-भीम वीर...

शमशेर बहादुर सिंह बारीक अनुभूति और अभिव्यंजना के कवि हैं। उनकी दृष्टि में हिमालय एक शिवलोक है, जहाँ वे चीनी दीवार उठाने क विरोध करते हैं। 'चीनी दीवार' एक मुहावरा है, जो चीन के विभक्ति-भाव और प्रसार-नीति को संकेतित करता है। उनकी दृष्टि में हिमालय पर कोई भी किया गया पाप या आरोपित उच्चाकांक्षा गल-पिघलकर नष्ट हो जाती है, वहाँ केवल सच्चाई की उज्ज्वलता अक्षुण्ण रही है। यह 'सत्यमेव जयते' की भारतीय सांस्कृतिक चेतना है। वे लिखते हैं–

शिव-लोक में चीनी दीवार न उठाओ,
वहाँ सबकुछ गल जाता है
सिवाय सच्चाई की उज्ज्वलता के।।

रामानंद तिवारी ने 'हिमालय' शीर्षक अपनी कविता में हिमालय को हरे-भरे जीवन का प्रतीक माना है। हिमालय को तूफानों में अचल रहने के कारण एक विश्व प्रहरी के रूप में स्वीकार किया है। हिमालय पर उगे भोज-वृक्षों के वल्कल और भोज-पत्रों पर हमारे देश का प्राचीन इतिहास लिखा गया है। यहीं से विश्व को प्रकाश मिलता रहा है। इसलिए हिमालय हमारी संस्कृति का अंग है, पंक्तियाँ हैं–

सदा हरित जीवन के रस से देवदारु उन्नत सुविशाल,
तूफानों में अचल शैल-से जग के प्रहरी उन्नत-भाल!
भोज-वृक्ष, जिसके पत्रों पर अंकित पुराचीन इतिहास,
डाल रहा है आज विश्व के जीवन पर निस्सीम प्रकाश!!

गंगा को श्रमगीत से जोड़ा गया है। 'श्रम एव जयते' का जो उद्घोष है, उसे हिमालय से जोड़ा गया है। हिमगिरि से निकलती हुई नदियाँ एक प्रकार से श्रमसीकर ही हैं–

गंगा-यमुना की कल-कल से, हिमगिरि पर होती हलचल से,
खलिहानों-खेतों-जंगल से आती है आवाज–
समय एक होने का भाई, सुधरें सारे काम!!

कविवर सियारामशरण गुप्त की काव्य-रचना लोक-मंगल से जुड़ी है। उनकी रचनाओं में आदर्श, आस्था, करुणा, उदारता इत्यादि का मिश्रण है। सामाजिक आदर्श के सूक्ष्म बिंदुओं पर भी उनकी चेतना सक्रिय रहती है। अपनी 'जय हिंद' कविता में मानवीय आदर्शता के सौंदर्य विनय के प्रतीक के रूप में हिमालय को देखा है। हिमालय का मानवीकरण करते हुए गुप्त जी लिखते हैं कि अपनी ऊँचता के बावजूद हिमालय सदा विनम्र रहा है–

ऊँचे और विनम्र सदा के हिमगिरि, विंध्य, हमारे हिंद,
जय-जय भारतवर्ष हमारे, जय-जय हिंद, हमारे हिंद!!

भारतीय समाज की यह हमेशा से माँग रही है, और लोगों की स्वत:स्फूर्त चेतना भी रही है कि मनुष्य का चरित्र उच्च हो, स्वच्छ हो, समाज-हितैषी हो। कविवर मोहनचंद्र मंटन ने 'भारत की जय हो' कविता में कामना की है कि सबका चरित्र हिमालय-सा हो और जीवन गंगा-सा पवित्र हो, भाव सागर की तरह गंभीर हो और छवि मनमोहक हो, और ऐसे भारत की जय हो–

हिमगिरि-सा ऊँचा चरित्र हो,
गंगा-सा जीवन पवित्र हो,
सागर-सा गंभीर भाव ले–
छवि महिमालय हो।
भारत की जय हो।।

मनुष्य-जीवन के उत्थान, संवर्धन और विकास के लिए यह आवश्यक है कि उसमें योग्यता, धैर्य, कार्यकुशलता और एक अटल इच्छाशक्ति हो। इसके लिए जहाँ उसमें प्रतिभा, ज्ञान और समझ की आवश्यकता होती है, वहीं उसे प्रेरक-तत्त्वों की भी जरूरत होती है। हमारे कवियों ने हिमालय के अनेक गुणों का तो उल्लेख किया ही है, उसे मनुष्य के जीवन को निरंतर प्रेरणा देनेवाला एक अक्षुण्ण स्तंभ भी बताया है। कविवर सोहनलाल द्विवेदी उत्तम उपमा से समाज को जाग्रत् होने की प्रेरणा दे रहे हैं–

खड़ा हिमालय बता रहा है, डरो न आँधी पानी में।
खड़े रहो अपने ही पथ पर, कठिनाई-तूफानों में।
डिगो न अपने पथ से तो फिर, सबकुछ पा सकते हो प्यारे।
तुम भी ऊँचे हो सकते हो, छू सकते हो नभ के तारे।।

कवि द्विवेदी यह भी कहते हैं कि हमारे समक्ष खड़ा हिम-शिखर हमें अपने प्रण को कायम रखने की प्रेरणा दे रहा है। कवि कहता है कि जिस तरह हिमालय अटल है, उसी तरह हमारा संकल्प भी अटल रहे, और हम अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आगे बढ़ते रहें–

रहे समक्ष हिम-शिखर
तुम्हारा प्रण उठे निखर
भले ही जाए जन बिखर
रुको नहीं, झुको नहीं
बढ़े चलो, बढ़े चलो!!

कविवर महावीर प्रसाद गैरोला ने मानव-समाज के गिरते आचरण को रेखांकित किया है कि मनुष्य अपने पुरखे बंदर की भाँति आचरण करने लगा है और इसका साक्षी हिमालय है–

हिमालय साक्षी है
कि आज का मानव,
अपने तथाकथित पुरखे–
बंदर
की ही भाँति,
धरती पर पशुवत् आचरण
करने लगा है।

समाज में संपत्ति के बँटवारे की भी संस्कृति रही है। यों तो कहा यह जाता है कि यह भूमि माता है और माता कभी बाँटी नहीं जा सकती; पर व्यवहार में कुछ और है। संपत्ति या तो खरीदी जाती है या फिर पूर्वजों की थाती के रूप में वंशजों को मिलती रहती है। पूर्वजों से मिली संपत्ति को हम 'बपौती' कहते हैं। कविवर वागीश दिनकर के अनुसार हिमालय हमारे लिए इसी बपौती संस्कृति की धरोहर है–

हमने मनु के चारु चरित शिक्षण को चुना चुनौती में
हिमगिरि का उत्तुंग शिखर है हमको मिला बपौती में,
हम ऊँचे आदर्शों को नभ से भूतल पर लाते हैं
हम रत्नाकर गंगा का भू पर अवतरण दिखाते हैं।

पुरखागत संस्कृति की इस मान्यता में कवि डॉ. वेद व्यथित ने भी हिमालय की स्थापना की है। भारतीय सामाजिक संस्कृतिगत यह मान्यता है कि यह ज़िंदगी चार दिन की है। कवि व्यथित को ये चार दिन काफी लगते हैं और कहते हैं कि हम तो अपने पुरखों से सुनते आए हैं कि एक पल में नक्षत्र, आकाश, समुद्र, धरा इत्यादि बसे हैं और उनपर हिमालय, नदियाँ तथा सागर आनंद लेते हैं। वे लिखते हैं–

चार दिन तो बहुत हैं
बस एक पल है ज़िंदगी
श्वास आए तो भला है
नहीं तो फिर शेष होती ज़िंदगी।

और इस पल में बसा है
भू, भुवन, आकाश सारा
चंद्र, दिनकर और सभी
ग्रह, नक्षत्र, अनगिनत तारा
पृथ्वी जैसे अनेकों पिंड इसमें डोलते हैं
और उनपर नगपति
नद और सागर झूलते हैं
ये सभी इतिहास पुरखों से
सुना जाता रहा है।।

संस्कृति जीवन-बोध और समाज-बोध की सहज धारा है। हिंदुस्तान में विभिन्न संस्कृतियों के मिश्रण के बावजूद हमारी अतीतागत संस्कृति उच्चतम संस्कारों के साथ प्रतिष्ठित है। हिमालय से निकली सांस्कृतिक धारा अंबुधि-पर्यंत मानव-जीवन के हर क्षेत्र में समाहित है। हिमालय में भारतीय संस्कृति आज भी बोलती है।

○○○

'पद्मावत' और पूर्वराग

रेनू यादव

यदि मनुष्य के दैहिक संवेदनाओं वाले अंश को निकाल दिया जाये और आध्यात्मिक रूप से तथा सूफी सिद्धांतों के अनुरूप देखें तो रत्नसेन-पद्मावती (आत्मा-परमात्मा, सूर्य-चन्द्र) के मिलन तक सटीक बैठता है किंतु उसके बाद कहानी में आत्मा-परमात्मा का भाव समाप्त हो जाता है, राजा रत्नसेन मात्र वर्चस्ववादी सत्ता का वहन करने वाले एक पति और रानी पद्मावती भारतीय संस्कारों में ढली पतिव्रता पत्नी बन कर रह जाती है। उनके मिलन से पूर्व आध्यात्मिक एवं योग-साधना के अनुसार भी उल्टे प्रतीक की कल्पना एवं संयोग दृष्टिगत होता है कि यदि पद्मावती परमात्मा है तो उसे सूर्य होना चाहिए और रत्नसेन को चन्द्र।

सम्पर्क: रिसर्च / फेकल्टी असोसिएट
भारतीय भाषा एवं साहित्य विभाग, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय
यमुना एक्सप्रेस-वे, नियर कासना, गौतम बुद्ध नगर,
ग्रेटर नोएडा - 201 312 (उ.प्र.), फोन - 9810703368
ई-मेल- renuyadav0584@gmail.com

जायसी कृत पद्मावत में यदि आध्यात्मिक पक्ष को छोड़ दिया जाये यह विशुद्ध मांसल प्रेम अथवा प्रणय-काव्य कहा जा सकता है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि पद्मावत में समस्त घटनाओं का हेतु कामवासना है, जिसकी शुरूआत पूर्वराग से होती है। इस ग्रंथ में चार पात्रों में पूर्वराग उत्पन्न हुआ है -चित्तौड़गढ़ के राजा रत्नसेन, सिंघलगढ़ की राजकुमारी पद्मावती, दिल्ली का शाह अलाउद्दीन खिलजी और कुंभल नरेश देवपाल।

यह कहना गलत न होगा कि पूर्वराग- 'वन साइडेड लव' में प्रत्यक्ष दर्शन 'टर्निंग प्वांइट' का काम करता है, जो कि पद्मावत् में रत्नसेन, पद्मावती, अलाउद्दीन के साथ दर्शाया गया है किंतु देवपाल के लिए यह संभव नहीं हो सका। राजा रत्नसेन और पद्मावती के हृदय में पूर्वराग उत्पन्न करने वाला माध्यम हीरामन तोता तथा अलाउद्दीन के हृदय में उत्पन्न करने वाला माध्यम राघव-चेतन बनता है।

राजा रत्नसेन के हृदय में पूर्वराग -

चित्तौड़गढ़ के राजा चित्रसेन के पुत्र रत्नसेन के लिए एक ज्योतिषि ने भविष्यवाणी की थी कि इसकी जोड़ी उत्तम पदार्थ पद्मावती रूपी हीरे के साथ लिखी है, इनके मिलने से चाँद और सूर्य जैसा योग होगा।

जिसकी सत्यता पाट प्रधान रानी चम्पावती की पुत्री पद्मावती जिसे शिव लोक की मणि माना गया था, वह दीपक बन सिंहल द्वीप में उत्पन्न हुई, जिसे जायसी ने सूर्य की कला से भी श्रेष्ठ माना है, के माध्यम से प्रमाणित होती है। सिंहलद्वीप के सात खण्डों वाले धवलगृह में निवास करने वाली पद्मावती के साथ दैव द्वारा प्रदत्त ज्योति के समान महापंडित सुनहरे रंग वाला हीरामन तोता रहता था, जिसके नेत्रों में रत्न और मुख में माणिक और मोती लगे हुए दिखाई देते थे। पद्मावती और हीरामन साथ-साथ वेदशास्त्र पढ़ते थे जिसे सुनकर ब्रह्मा भी सर हिलाने लगते थे। पद्मावती के सौन्दर्य की पराकाष्ठा कहानी के प्रारंभ में ही पता चल जाती है कि उसे पाने के लिए योगी, यति और सन्यासी भी तप साधते थे।

देखा जाय तो सुआ हीरामन द्वारा राजा रत्नसेन के हृदय में प्रेमानुराग उत्पन्न करना स्वाभिमान और अपमान-बोध के कारण है। हीरामन सुआ के द्वारा पद्मावती को 'सूर्य' का उपदेश अर्थात् पुरूषसंसर्ग का उपदेश देते हुए राजा गंधर्वसेन चक्रवर्ती ने सुन लिया, जिससे वे विचलित हो गये कि सुआ वेदपाठ के बहाने कामभाव की शिक्षा प्रदान कर रहा है इसलिए उन्होंने उसे नाऊ-बारी के हाथों मारने का आदेश दे दिया। उस समय पद्मावती ने उसे बचा लिया किंतु अपमान-बोध के कारण और अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए वह वन में प्रस्थान कर गया। जहाँ उसे बहुरूपिये बहेलिए ने बंदी बना लिया और उसे बेचने के लिए सिंघलगढ़ के बाजार जा पहुँचा।

इधर चित्तौड़गढ़ के बंजारों के साथ एक गरीब ब्राह्मण भी व्यापार के लिए सिंहल-द्वीप पहुँचा, जिसने सुनहरे सुआ (जो वेदादि ग्रंथों का ज्ञाता था) को खरीद लिया और उनसे चित्तौड़ के तत्कालीन राजा रत्नसेन ने एक लाख मूल्य देकर मस्तक पर टीका, कंधे पर जनेऊ, व्यास जैसे कवि, सहदेव जैसे पण्डित एवं लाल और काले दो कण्ठ वाले सुग्गा को खरीदा।

'नागमति सुआ खण्ड' में रानी नागमति अपने पति को खो देने के विचार से आशंकित हो जाती है और किसी भी साक्षी के अभाव में सुआ को धाय द्वारा मारने का आदेश देती है किंतु रानी के आदेश के विपरीत धाय ने उसे बचा लिया और एक बार फिर से सुआ रत्नसेन के हृदय में प्रेम उत्पन्न करने के लिए तत्पर हो गया।

राजा रत्नसेन सुरतानुराग के लिए व्याकुल हो जाते हैं उस पर से सुआ के द्वारा पद्मावती के नख-शिख सौंदर्य (कस्तूरी से काले केश, जिन पर नागराज वासुकि भी बलि जाता है, मलयगिरि रूपी शरीर, मेघों में खिंची बिजली अथवा कसौटी में खिंची कंचन रेखा रूपी माँग, ज्योति द्वितीया के चन्द्रमा के समान ललाट, ताने हुआ धनुष की भाँति भौंहें, लाल कमल पर मँडराते हुए भौरों के समान नेत्रों में काली पुतलियाँ अथवा नेत्र जल से भरे समुद्र में लहरों का माणिक्य अथवा क्रीड़ा करते हुए खंजन पक्षी रूपी नेत्र, आकाश में अनगिनत नक्षत्रों की भाँति बरौनियाँ, शुक्र भी जिसके नाक में बेसर बनकर सुशोभित हो अथवा जिसके सामने सुग्गा भी लजाकर पीला पड़ जाए ऐसी नासिका, लाल गुल दुपहरिया (बन्धूक पुष्प) जैसे अधर, मिस्सी के गहरे श्याम रंग में सुशोभित होते हुए दशन अथवा दाँत जो सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों, रत्नों, हीरे, माणिक्य और मोतियों को भी ज्योति प्रदान करते हैं, अमृत वचन बरसाती रसना जिसने कोकिल और चातक के भी स्वरों को ग्रहण कर लिया, पराग और अमृत के रस को सानकर कत्थे की सुरंग टिकिया बाँधे अथवा एक नारंगी के दो अनमोल खंडों के समान लाल-लाल कपोल, बाएँ कपोल पर तिल जिसे देखते ही देखने वाले के शरीर के तिल तिल में आग लग जाती है, सीपियों जैसे दो कान, मोरनी अथवा कबूतर के ग्रीवा से ली गयी अथवा क्रौंच पक्षी की ग्रीवा के समान ग्रीवा, केले के खम्भों के समान भुजाएँ और लाल कमल के समान हथेलियाँ, सुवर्ण दण्ड के समान कलाई, सोने के लड्डू के समान हृदय रूपी में थाल में सुशोभित दोनों कुच, चन्दन के पत्र की भाँति पेट, काली नागिन की भाँति रोमावली, नाभिकुंड बनारस, मलयगिरि चन्दन से सँवारी गई पीठ, बर्र की कमर से भी पतली कमर अथवा कमलिनी के दो टुकड़ों में टूट जाने पर बीच में बचे पतले तार की भाँति कमर, समुद्र के भँवर की भाँति घूमी हुई तथा मलय की सुगन्ध से पूरित नाभि कुण्ड, कटि भाग की शोभा बढ़ाने वाले नितम्ब, केले के खम्भों को उलटकर रखे हुए जंघाएँ, देवता द्वारा हाथों-हाथ उठा लेने वाले चरण कमल तथा जहाँ जहाँ चरण कमल पड़ते हैं देवता अपना सर रख देते हैं, चाँद और सूर्य की भाँति उज्ज्वल दोनों पैरों के चूड़े, नक्षत्रों तथा तारों की भाँति चमक और बिछिया का वर्णन सुनकर उन्हें वृष्ठानुराग की स्थिति में पहुँचा देता है, जिससे मूर्च्छित हो जाते हैं।

मूर्च्छा समाप्ति पर राजा के हाथ में किंगड़ी, सिंगी चक्र और कमण्डलु, सिर पर जटाएँ, शरीर पर भस्म रमा, मेखला बाँधकर गले में जोगपट्ट, कन्धे पर बाघम्बर धारण कर कथरी पहने तन से बेसुध और मन से बावले की भाँति रटते हुए जोगी वेश में घर से निकलने की तैयारी करना, राजमहल में अनेक लोगों का समझाना, उनकी माता रतन रतन कहते हुए सुग्गा द्वारा बहका ले जाने का दुख व्यक्त करना और रानियों का रो रो कर प्राण देना, हाथ की चूड़ियाँ फोड़कर खलिहान भरना, उनकी प्रिय रानी जिसे अपने प्रेम पर अति गर्व था उसका संसार की सबसे खूबसूरत नायिका होने का घमण्ड चूर-चूर होना तथा रानी का खंडिता नायिका बनकर रह जाना पूर्वराग में प्रबल उत्कर्ष दर्शाता है।

पद्मावती के हृदय में पूर्वराग

हीरामन की युक्ति के अनुसार अपने योग से धरती-आकाश को जीतने वाले राजा रत्नसेन माघ मास के शुक्ल पक्ष में वसन्त

पंचमी के दिन कंचन पर्वत पर स्थित शिव मंडप में पद्मावती के दर्शन के लिए पहुँच जाते हैं तथा दूसरी ओर स्वयं पद्मावती यौवन की पीड़ा ''जोबन भर भादौं जस गंगा। लहरैं देई समाई न अंगा''। कामोद्दीप्त रहती है। ऐसे में हीरामन सुआ द्वारा रत्नसेन का जोगी वेश में उसे प्राप्त करने का संदेश -यौवन के गहरे समुद्र से बाँह पकड़कर खींचने वाले सूर्य के समान प्रकाशमान रत्नसेन स्वयं उसके प्रेमावेश में उसके दर्शन के लिए जोगी का वेश धारण कर सोलह सहस्र राजकुमारों (जिन्होंने जोगी वेष धारण कर रखा है) के साथ महादेव के मठ में पहुँच चुका है।

किंतु पद्मावती राजा रत्नसेन के समान तत्काल प्रेम में विह्वल और भावुक नहीं होती बल्कि वह प्रेम में अनुरक्त होने के पश्चात् भी अपने पिता (जिनके भय से स्वर्ग में इन्द्र भी काँपते हैं) के विषय में सोचती है तथा अपनी विशिष्टता से रत्नसेन की तुलना करते हुए बौद्धिकता का परिचय देती है कि उसके योग्य वर भला संसार में कहाँ है? सुग्गा के लाख प्रशंसा के बावजूद भी अपने हृदय में राजा की स्तुति समेटे वह अपनी दिनचर्या में खो जाती है। सामान्यत: प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी बसंत-पंचमी को उपवन में विहार करते हुए महादेव के मठ पहुँचती है। आश्चर्य की बात है कि जायसी ने यहाँ पद्मावती को देव-दर्शन के लिए भेजा है किंतु स्वयं पद्मावती के दर्शन से देवताओं के भी धड़ में प्राण नहीं जान पड़ता। तत्पश्चात् सखियों द्वारा बताये गए मठ के पूर्व द्वार पर ठहरे हुए जोगी जो संभावित था कि हीरामन के द्वारा जिसकी प्रशंसा सुनी थी वही हो, उसके दर्शन के लिए जाती है। जोगी के विषय में जैसा सुनी थी वैसा ही वहाँ उन्हें सूर्य के समान तेजस्वी पाती है। किंतु जोगी यानी कि राजा रत्नसेन की दृष्टि पद्मावती पर पड़ते ही वे मूर्च्छित हो जाते हैं और बड़े ही धैर्य के साथ वह उनके हृदय पर संदेश लिख वापस महल लौट जाती है -

चेतना वापसी के पश्चात् राजा अपने हृदय पर चंदन से लिखा संदेश देख कर विलाप में डूब गए और वे स्वयं को एवं देवताओं को कोसने लगें। उनके रक्त के आँसू के ढेर लग गए। तत्पश्चात् शिव-पार्वती के मार्गदर्शन के अनुसार वे स्वर्ग के समान सिंहलगढ़ के सात खंड, उस गढ़ के भीतर नौ डयोढ़ियाँ (नौ इन्द्रिय द्वार), जिसके पाँच कोतवाल (पंच प्राण), दसवाँ गुप्त (अगम् और टेढ़ा) द्वार (ब्रह्मरन्ध्र), गढ़ के नीचे अथाह कुंड में छिपी सुरँग से चोर की भाँति सेंध लगा पद्मावती को प्राप्त करने हेतु पहुँचते हैं।

दूसरी ओर सूरतानुराग के पश्चात् पद्मावती की अति दारूण दशा हो जाती है। वह पीउ पीउ करते हुए पपीहा की भाँति व्याकुल होकर रत्नसेन को सोने की स्याही से पत्र ''हौं पुनि अहौं ऐसि तोहिं राती'' लिखकर प्रेम की अभिव्यक्ति करती है। किंतु यह ध्यान देने योग्य बात है कि प्रेम में विह्वल होने के पश्चात् भी वह अपनी बुद्धिमत्ता का परित्याग नहीं करती और रत्नसेन की परीक्षा लेती है। परीक्षा में सफल होने के पश्चात् ही उन्हें उड़न्त छाल पर बैठकर सिद्द बनाने के लिए बुलाती है।

अलाउद्दीन के हृदय में पूर्वराग

जिस प्रकार राजा रत्नसेन और पद्मावती के हृदय में पूर्वराग उत्पन्न करने वाला माध्यम हीरामन तोता होता है उसी प्रकार शाह यानी अलाउद्दीन के हृदय में प्रेम उत्पन्न करने वाला माध्यम राघव चेतन है। हीरामन तोता की भाँति कुटिल राघव चेतन को भी देश निकाला दिए जाने पर अपमान-बोध के कारण बदले की भावना से अलाउद्दीन के हृदय में पूर्वराग की उत्पत्ति करता है।

संदर्भानुसार यक्षिणीपूजक व्यास की भाँति कवि और सहदेव की भाँति पण्डित राघव चेतन और कुछ अन्य ब्राह्मणों से राजा रत्नसेन ने अमावस के दिन पूछा कि दोयज कब है? इस पर अन्य पण्डितों ने 'कल' यानी दूसरे दिन का समय बताया किंतु राजा का विश्वास प्राप्त करने के लिए राघव ने सबकी दृष्टि जादू से बाँध कर अमावस्या के दिन ही दोयज दिखा दिया। जब दूसरे दिन ठग-विद्या का भेद खुला तब राघव को राजा द्वारा देश निकाला दे दिया गया। किंतु यह बात बुद्धिमती पद्मावती को पता चलते ही उसने राज्य को अनहोनी से बचाने के लिए कुटिल किंतु ज्ञानी यक्षिणीपूजक ब्राह्मण को वापस बुलाया। निष्कलंक चन्द्रमा के समान उसने झरोखे से नौ रत्न कोर जड़े कंगन देते हुए उसे राज्य में रूकने के लिए कहा। किंतु उसके सौन्दर्य-दर्शन से राघव मुर्च्छित हो गया और राजा से अपमान का बदला लेने के लिए अलाउद्दीन खिलजी (अल्दीन अब्बुल मुजफ्फर मुहम्मद शाह अल सुल्तान) के दरबार दिल्ली चला गया। शाह के दरबार में पेश होने पर वह हस्तिनी, सिंहनीं, चित्रिणी, पद्मिनी स्त्रियों में भेद बताते हुए बारह बानी कुंदन जैसी शुद्ध और चमकीली और चन्द्रबदनी पद्मावती का वर्णन करते हुए कहता है -

''पदुमिनी सिंघल दीप की रानी। रतनसेनि चितउर गढ़ आनी।
कँवल न सरि पूजै तेहि बाँसा। रूप न पूजै चंद अकासाँ।

जहाँ कँवल ससि सूर न पूजा। केहि सरि देउँ औरू को पूजा''।

ऐसा दिव्य-दर्शन का वर्णन सुनकर शाह को मूर्च्छा आ गई। मूर्च्छा समाप्त होने पर ''तब अलि अलाउद्दीन जग सुरू। लेउँ नारि चितउर कै चुरू''। अर्थात् ''तब मैं जगत में अलावल अलाउद्दीन सच्चा शूर (या सूर्य) हूँ, जब चित्तौड़ को नष्ट करके उस बाला को प्राप्त करूँ, का प्रण लेता है। तत्पश्चात् शाह ने राघव को पान, सरोपा, दस नर हाथी, सौ घोड़े, कंगन की जोड़ी, तीस करोड़ मूल्य के रत्न, एक लाख दीनारें देने के पश्चात् पद्मावती को प्राप्त करने के बदले चित्तौड़ का सिंहासन का वचन देकर सरजा बलवान पुरूषसिंह के हाथों रत्नसेन को पद्मावती को सौंपने के लिए पत्र लिखकर भेजा।

रत्नसेन का पत्र सुनकर भड़कना और शाह से युद्ध करना और युद्ध के दौरान शाह द्वारा चित्तौड़गढ़ को घेर लेना, चित्तौड़गढ़ में राजा का युद्द के लिए अंतिम प्रयास और रानियों का जौहर करने का निर्णय करना और उसकी सूचना शाह तक पहुँचना, पद्मिनी के खो देने के भय से शाह का संधि का प्रस्ताव और सम्मान देकर राजा को परास्त करने की कुटिल सोच में पड़ना, चित्तौड़गढ़ के पाँच रत्न हंस, अमृत, पारस पत्थर नग, सोनहा पक्षी, शार्दुल के बदले संधि का प्रस्ताव रखना, संधि की स्वीकृति और राज्य में शाह के स्वागत की तैयारी करना, शाह का चित्तौड़गढ़ में आना, शाह का बसंती फुलवारी, मंदिर आदि देखना, भोज के समय उसका मन न लगना और शतरंज के खेल में दर्पण को अपने पैरों की ओर रखना ताकि झरोखे में आते ही पद्मावती की झलक देख सके आदि प्रयोजन पूर्वराग में कुटिलता के साथ व्याकुलता को दर्शाता है। यहाँ आश्चर्य की बात है कि पद्मावती अपनी बुद्धिमत्ता का प्रयोग न करके सखियों के कहने पर जिज्ञासावश रात्रि समय में शाह को देखने पहुँच जाती है और उसी समय शाह उसे दर्पण में देख लेता है -

''विहँसि झरोखे आइ सरेखी। निरखि साहि दरपन महँ देखी।
होतहि दरस परस भा लोना। धरती सरग भएउ सब सोना।

वह पद्मावती को देखते ही मूर्च्छित हो जाता है और होश आने के पश्चात् राघव के द्वारा पूछने पर उसने बताया कि

''अति विचित्र देखेऊँ सो ठाढ़ी। चित कै चित्र लीन्ह जिय काढ़ी।

फिर क्या था ऐसी अनुपम सुन्दरी को वह बल के बजाय छल से पाने के लिए अनेक षड़यंत्र गढ़ने लगा।

देवपाल के हृदय में पूर्वराग

कुंभलनेर के नरेश देवपाल के हृदय में सांकेतिक रूप से पूर्वराग दर्शाया गया है। जिसने शाह द्वारा रत्नसेन को बन्दी बना लिए जाने पर सुअवसर देखते हुए अपनी दूती को पद्मावती के हृदय में परपुरूष यानी अपने प्रति प्रेम जागृत करने हेतु भेजा और दूती प्रेम जागृत करने का पूरा प्रयास भी करती है - ''भोग विलास केरि यह वेरा। मानि लेहि पुनि को केहि केरा''।

वह उसे यौवन की महत्ता स्पष्ट करते हुए परुपुरूष की ओर यौवन का रसपान करने लिए प्रेरित करती है-

''रस दोसर जेहि जीभ बईठा। सो पै जान रस खट्टा मीठा।
भँवर बास बहु फूलन्ह लेई। फूल बास बहु भँवरन्ह देई।
तैं रस परस न दोसर पावा। तिन्ह जाना जिन्ह लीन्ह परावा।
एक चुरू न रस भरै न हिया। जौ लहि नहिं भरि दोसर पिया''।

यह सुनते ही पद्मावती भड़क उठती है और अपने सतित्व का परिचय देते हुए उसे अपने दासियों द्वारा पिटवाकर वापस लौटा देती है। जब राजा रत्नसेन शाह के बंधन से बंधनमुक्त होकर वापस लौटते हैं तब पद्मावती उन्हें सारी कथा सुनाती है, जिससे वे क्रोधित हो देवपाल से युद्ध करने पहुँच जाते हैं और देवपाल का वध करके विजय तो प्राप्त कर लेते हैं किंतु देवपाल से युद्ध ही उनके अंत का कारण बनता है। अनेक उपचारों के बाद भी घाव ठीक न होने के कारण उनकी मृत्यु हो जाती है।

पूर्वराग की दुखान्तक परिणति

राजा रत्नसेन और देवपाल के बीच होने वाले युद्ध में देवपाल का वध हो जाता है किंतु राजा रत्नसेन अपने मृत्यु पर विजय प्राप्त नहीं कर पाते। अन्ततः पद्मावती और नागमती एक साथ अपने पति के साथ भाँवर लेते हुए सति हो जाती हैं। हालांकि शाह चित्तौडगढ़ पर आक्रमण करने आ ही रहा होता है लेकिन पद्मावती के सती होने के बाद वहाँ पहुँचता है और पद्मावती के सती होने की कथा सुनकर उसकी मुट्ठी भर राख उड़ाते हुए 'पिरिथमी झूठी' कहते हुए अफसोस व्यक्त करता है। जिसकी परिणति चित्तौड़गढ़ के ध्वस्त होने के रूप में होती है। बादल के साथ साथ समस्त सैनिक शहीद हो जाते हैं तथा वहाँ की सारी औरतें जौहर कर लेतीं हैं।

इस ग्रंथ में चित्तौड़गढ़ को तन, राजा रत्नसेन को मन, सिंघलगढ़ को हृदय, पद्मिनी को परमात्मा या बुद्धि, नागमति को दुनिया हीरामन को शुक गुरू, राघव चेतन को शैतान, अलाउद्दीन को माया कहा गया है। यह ग्रंथ न सिर्फ पाठक के हृदय में प्रश्न जागृत करता है बल्कि परंपरागत आध्यात्मिक आलोचना पर भी प्रश्न उठाता है –

पहला प्रश्न प्रतीकों की हेरा-फेरी से उठता है कि यदि मनुष्य के दैहिक संवेदनाओं वाले अंश को निकाल दिया जाय और आध्यात्मिक रूप से तथा सूफी सिद्धांतों के अनुरूप देखें तो रत्नसेन-पद्मावती (आत्मा-परमात्मा, सूर्य-चन्द्र) के मिलन तक सटीक बैठता है किंतु उसके बाद कहानी में आत्मा-परमात्मा का भाव समाप्त हो जाता है, राजा रत्नसेन मात्र वर्चस्ववादी सत्ता का वहन करने वाले एक पति और रानी पद्मावती भारतीय संस्कारों में ढली पतिव्रता पत्नी बन कर रह जाती है। उनके मिलन से पूर्व आध्यात्मिक एवं योग-साधना के अनुसार भी उल्टे प्रतीक की कल्पना एवं संयोग दृष्टिगत होता है कि यदि पद्मावती परमात्मा है तो उसे सूर्य होना चाहिए और रत्नसेन को चन्द्र। किंतु यहाँ रत्नसेन सूर्य है और पद्मावती चन्द्र। यही नहीं कवि अलाउद्दीन और देवसेन को भी सूर्य की संज्ञा दी गई है! यदि हठयोग के सिद्धांत पर रत्नसेन सूर्य है और पद्मावती चन्द्र तो अलाउद्दीन भी सूर्य कैसे हो सकता है? तथा देवपाल भी उससे कम नहीं! फिर सबके साथ हठयोग के सिद्धांत का क्या औचित्य? यदि औचित्य है भी तो परमात्मा सर्वव्यापक है, वह मात्र किसी एक जीव के दायरे में कैसे बँध सकता है अथवा किसी एक जीव से कैसे प्रेम कर सकता है? पद्मावती परमात्मा ने अपने प्रकाश से अलाउद्दीन और देवपाल को वंचित क्यों रखा?

दूसरा प्रश्न, परमात्मा पद्मावती के अलौकिक सौन्दर्य का अतिशयोक्तिपूर्ण आलोक से है, जिसे देखते ही रत्नसेन, अलाउद्दीन और राघव-चेतन मूर्च्छित हो जाते हैं, यहाँ तक कि देवताओं के धड़ में भी प्राण नहीं रहते। आश्चर्यजनक है कि पद्मावती के आस-पास के लोग जीवित कैसे रह गये? पद्मावती के जिन स्वरूप का वर्णन हीरामन सुआ करता है, वह बिल्कुल एक नारी के सौंदर्य का वर्णन है न कि परमात्मा का आलोक! यदि परमात्मा के आलोक का आरोपण कर भी दिया जाय तो जिन शब्दों में हीरामन सुआ पद्मावती का वर्णन रत्नसेन से करता है तो वह गुरू माना जाता है किंतु उन्हीं शब्दों में वर्णन करने वाला राघव चेतन शैतान कैसे? जिस परमात्मा को प्राप्त करने के लिए 'जीव' या 'आत्मा' राजा रत्नसेन जोगी बन बैठा उसी परमात्मा को प्राप्त करने को इच्छुक अलाउद्दीन 'माया' कैसे? कहानी का अंत करने में राजा देवपाल कहानी का मुख्य हिस्सा होते हुए अमान्य कैसे रह गया? परमात्मा से प्रेम क्या पुरूष ही कर सकते हैं स्त्री नहीं! नागमति परमात्मा पद्मावती की भक्त क्यों नहीं बन पायी? यदि पद्मावती परमात्मा है तो उसे नागमति से सौतियाडाह क्यों? विवाह से पूर्व यदि पद्मावती परमात्मा का स्वरूप है तो विवाहोपरांत मात्र पतिव्रता भारतीय स्त्री कैसे बन गयी?

परमात्मा पद्मावती का स्वरूप उस समय और अधिक संदिग्ध हो जाता है जब वह एक आम इंसान की भाँति काम भावना में दग्ध हो जाती है। आत्मा यानी जीव के आने के पूर्व से ही उसके अंदर कामभावना का दीप प्रज्वलित रहता है और रत्नसेन का आगमन जलती अग्नि में घी के समान कार्य करता है, जिसे परमात्मा का जीव से मिलने की तीव्र उत्कंठा कही गयी है। मिलन यानी विवाह के पश्चात् चित्तौड़गढ़ में आने पर उसका परमात्मापन का भारतीय पतिव्रता नारी के रूप में परिवर्तित होना उसके अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह खड़ा करता है। सुहागरात की सेज पर आत्मा-परमात्मा का मिलन अश्लीलता की सारी हदें तोड़ता हुआ नजर आता है। जिसमें जायसी स्त्री-भेद हस्तिनी, सिंहिनी, चित्रिणी, पद्मिनी बताते हुए पद्मिनी नायिका के भोग को उत्कृष्ट साबित करते हैं साथ ही पुरूष को संतुष्ट करना स्त्री का परम कर्तव्य है, जैसे सिद्धांतों पर बल देते हैं। रामकुमार वर्मा के अनुसार, ''जायसी ने अपने 'पद्मावत' की कथा में आध्यात्मिक अभिव्यंजना रखी है... पर जायसी इस आध्यात्मिक संकेत को पूर्ण रूप से नहीं निबाह सके और अधिकांश में पद्मावत में चित्रित प्रेम का स्वरूप अलौकिक न होकर लौकिक हो गया है''।

इतना ही नहीं आत्मा परमात्मा का भोग कर वापस दुनिया-धंधा यानी नागमति के पास लौट आता है और अपने शब्द जाल में दुनियाँ-धंधा को फँसाते हुए उसका भी उपभोग करता है। भोग उपभोग की कहानी यहीं समाप्त नहीं होती बल्कि सौतियाडाह का रूप ले लेती है।

जीव या आत्मा के लिए दुनिया-धंधा और परमात्मा में सौतियाडाह व्यंग्य तथा कलह के माध्यम से इतना बढ़ जाता है कि विवाद सुलझाने के लिए आत्मा को दखलअंदाजी करनी पड़

जाती है। ऐसी स्थिति में आत्मा को बेहद सशक्त और परमात्मा को कमजोर बनना आध्यात्मिक काव्य के हित में दृष्टिगत नहीं होता। आदर्शवाद के नाम पर शब्दाम्बरों की आड़ लेकर अलौकिक एवं उदात्त प्रेम में लिपटे परमात्मा का ऐसा अनावरण पूरे सूफी काव्य को संदेह के घेरे में खड़ा कर देता हैं।

इतना ही नहीं, इस अलौकिक गाथा का अंत राम और कृष्ण की भाँति स्वेच्छा से मृत्यु का वरण करने से होता है। जिसके प्रकाश से संसार प्रज्ज्वलित है ऐसे परमात्मा का अपने प्रिय जीव के साथ सती करने में जायसी थोड़ा भी नहीं हिचकिचाते। उसके बावजूद भी अलाउद्दीन की शक्ति बची रह जाती है और परमात्मा के नगर को पूजने के बजाय ध्वस्त करने की आवश्यकता पड़ जाती है! डॉ. शिवकुमार मिश्र कहते हैं, ''पद्मावत की त्रासदी यह नहीं है कि जीव भस्म हो गया और मुट्ठी भर क्षार बची रही। बल्कि सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि जीव के साथ ब्रह्म भी मर गया। प्रेम तो जीवन का सार हैं। अगर वह नहीं बचा तो बचा क्या''?

कहना गलत न होगा कि यह ग्रंथ अलौकिक गाथा में परमात्मा रूपी पर्दे के पीछे छुपकर नैतिकता की दुहाई देते हुए विशुद्ध लौकिक प्रणय-काव्य है और संस्कारों का चोला पहन कर परमात्मा के आवरण में छुप कर कामुकता को तुष्ट करना कवि और आलोचकों के लिए आसान रहा है। यदि यह ग्रंथ विशद्ध प्रणय-ग्रंथ के रूप में मान्य होता तो यह एक बेहतरीन ग्रंथ होता किंतु उसे आध्यात्मिक आवरण ने अनगिनत सवालों के कठघरे में खड़ा कर दिया है। समासोक्ति-अन्योक्ति अथवा अलौकिक और ऐतिहासिकता का मिश्रण रूपी ग्रंथ के अंत को प्रक्षिप्त अंश कहना हमारे उस संस्कारी मानसिकता को दर्शाता है जहाँ कामभाव की स्वीकृत्ति मन में तो है पर सार्वजनिक स्तर पर स्वीकार करने की हिम्मत नहीं होती। यह वर्चस्ववादी सत्ता का नारी के सौन्दर्य और उसकी बौद्धिकता को भोग-उपभोग कर अपने कामुक भावनाओं को तुष्ट करना तथा उसे अपनी जायदाद समझ कर अपनी ज़िंदगी ही नहीं बल्कि पूरे राज्य को दाँव पर लगाने की कथा है।

भारतीय परम्परा के अनुसार भी पद्मावती परकीया नायिका ही थी, जिससे विवाह करके रत्नसेन ने स्वकीया बना लिया और अपने पति के वियोग में तड़पने वाली नायिका के दु:ख की अवहेलना करते हुए उसे दुनिया-धंधा का नाम दे दिया गया, जो स्वकीया होते हुए भी परकीया की भाँति चर्चित रही। दुनियाँ-धंधा के ईर्ष्या-द्वेष को सार्वजनिक किया गया और परमात्मा के ईर्ष्या-द्वेष संबंधी उदाहरणों पर टिप्पणी करने पर बड़ी ही चालाकी से बच जाया गया। यह एकांगी दृष्टि वर्चस्ववादी सत्ता का न सिर्फ अपनी सुविधानुसार नायिका के चयन का अधिकार एवं उसके प्रेम को रेखांकित कर इतिहास बदलने की दृष्टि को दर्शाता है बल्कि भक्तिकालीन साहित्य में स्त्री के प्रति उपेक्षात्मक दृष्टि पर पर्दा डालने का प्रयास नजर आता है। यह सोचनीय है कि यदि यही प्रेम नागमति को किसी पुरूष परमात्मा से होता तो क्या नागमति दुनिया-धंधा भी रह पाती? क्या सूफी संत फिर भी किसी प्रेम-गाथा का उत्कृष्ट रूप तैयार करते? क्या नारी सम्मान की पात्र होती या पूर्वराग को महत्त्व दिया जाता? अथवा यदि ये सभी प्रश्न सूफीमत के विरोध में हैं... तो क्या परमात्मा स्त्री अपने सभी जीवों से समान प्रेम करते हुए साहित्य के इतिहास में इसी रूप में होती?

राजा रत्नसेन और पद्मावती के मिलन को अलौकिक मिलन साबित करने के पश्चात् कथा को आगे बढ़ाना जायसी की सबसे बड़ी भूल थी, लेकिन यदि जायसी अलाउद्दीन का प्रसंग छोड़ देते, शायद यह ग्रंथ उतना उत्कृष्ट एवं चर्चित भी न होता। फिर भी हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि कोई भी लेखक तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं लिख सकता, जायसी के साथ भी यही हुआ। वर्चस्ववादी मानसिकता के प्रभाव में भक्ति का आवरण ओढ़ काव्य-रचना की गयी और उसी मानसिकता से अब तक इसका मूल्यांकन होता आया है तथा विभिन्न विश्वविद्यालयों में पढ़ाया भी जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि सामाजिक, सांस्कृतिक, प्रेमाख्यान आदि दृष्टि से यह ग्रंथ अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, लेकिन इन सबके साथ इस ग्रंथ पर पुनर्विचार करने की भी अत्यंत आवश्यकता है कि यह ग्रंथ विशुद्ध लौकिक प्रेम-काव्य है अथवा आध्यात्मिक प्रेमाख्यान?

ooo

मीडिया: चयन का सवाल और विजुअल्स की दुनिया का सच

हर्षबाला शर्मा

फिक्शन और तकनीक के इस जादू ने जिस कोमल मन पर सबसे अधिक शिकंजा कसा, वह है बाल मन। बाल मन जिसके सामने सब कुछ मौजूद है, हर घटना और परिघटना! वह मीडिया के प्रस्तुतीकरण के माध्यम से बाजार की लगभग हर चीज से परिचित हो चुका है और जो नहीं जानता, उसे जानने की इच्छा वह तकनीक के सहारे पूरी कर लेता है। पर इस बाल मन की सहज जिज्ञासा ने आज आगे बढ़ते बढ़ते हिंसा और प्रतिहिंसा की दुनिया में प्रवेश पा लिया है।

सम्पर्क: 806, हरसिंगार टावर, क्षिप्रा सृष्टि, अपार्टमेंटस, अहिंसा खंड-I, इंदिरापुरम (उ.प्र.)

याद कीजिए अपने बचपन में देखे गए सिंकारा के विज्ञापन का विजुअल -एक दुबला-पतला सींकिया पहलवाननुमा आदमी -जिसे चाहिए सिंकारा! आप भूले नहीं होंगे उसे! भले ही चेहरा याद न हो पर दृश्य कहीं ठहरा हुआ जरुर होगा आपके मन में! ऐसे ही न जाने कितने ही दृश्य होंगे जो कहीं बाजरे की कलगी की तरह अटके-तिटके होंगे; तकनीक की भौतिक सत्ता अद्भुत है, जन्म लेते ही शाश्वत! कहीं कुछ खत्म नहीं होता-वाले सिद्धांत की तरह अनंत और हर समय उपलब्ध- 24×7...

आजकल एक वाक्यांश बहुत अधिक चलन में है- चयन का अधिकार! टीवी से लेकर इंटरनेट तक मीडिया के सभी चैनल अपने दर्शक को चयन का अधिकार देने को बेताब हैं। 'जब देखेंगे आप तो निर्णय कोई और क्यों करेगा?' 'आप ही तय कीजिए कि आप क्या देखना चाहते हैं'। ऐसा लगता है कि मीडिया का लोकतंत्र एक ऐसा समाज निर्मित कर रहा है जहाँ हर व्यक्ति अपनी इच्छा और सुविधा के अनुसार चयन कर सकता है और जी सकता है-अपने हिस्से की खुशी को, अपने हिस्से के हर पल को! मनोरंजन इसके केंद्र में है और चमकीली दिखने वाली वस्तुओं को मूलभूत आवश्यकता में परिवर्तित करना इसकी जरूरत! जॉन फिस्के मीडिया को सच दिखाने वाला न मानकर 'सत्याभास' कराने वाला मानता है। तो क्या यह चयन का अधिकार वास्तव में मिलने वाला है अथवा यह भी आभासी ही है! यह आभासी दुनिया भी काल्पनिक विजुअल्स के सहारे ही निर्मित की जाती है जिससे वह दृश्य दर्शक के दिमाग पर काबिज हो सके।

लोकतंत्र की सबसे बड़ी सुविधा है कि वह समाज के हर युवा व्यक्ति को वोट के माध्यम से चयन का अधिकार देता है। हालाँकि यह अधिकार अकेले नहीं आते, अपने साथ कुछ नैतिक कर्तव्यों की सूची भी लेकर आते हैं, जिसे सामान्य भाषा में दायित्व कहा जा सकता है। लोकतांत्रिक समाज में रहकर यह अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को मिलता है भले ही वह व्यक्ति इस अधिकार को ग्रहण करने की पात्रता रखता हो या नहीं। इसीलिए शिक्षा ग्रहण करते समय विवेक और समझ की शिक्षा

भी व्यक्ति को दी जाती है। यहाँ यह भी समझने की जरूरत है कि लोकतंत्र एक ऐसे समाज की ताकत है जहाँ व्यक्ति के पास अपना भला-बुरा समझने की शक्ति हो। ऐसे किसी भी समाज में लोकतंत्र असफल है जहाँ व्यक्ति चयन के विवेक से परिचित नहीं है। मीडिया की दुनिया में भी चयन के विवेक का प्रश्न सर्वोपरि है और होना चाहिए। मीडिया की दुनिया आभासी रूप से अत्यंत लोकतांत्रिक होने का दावा करती है पर यहाँ इस लोकतंत्र के विवेक का प्रश्न समकालीन समाज में सिरे से लापता है। क्या सचमुच दर्शक इतना विवेकवान हो गया है कि चयन कर सके! फिर दूसरा प्रश्न यह भी है कि विकल्पों की सूची में क्या सचमुच दर्शक को यह अधिकार मिल रहा है कि वह अपनी इच्छा से सही और जरूरी चुन सके! जिस तरह लोकतंत्र के नाम पर जिन दलों के बीच चयन करने का भ्रम हमें दिखाया जाता है उन दलों के बीच न तो वैचारिकी का अंतर है न ही सत्ता के लोभ का! ठीक उसी प्रकार जिन चैनलों के बीच हमें चयन की सुविधा दी जा रही है क्या उनमे चरित्रगत अंतर है या केवल प्रस्तुतीकरण का! सामान्य जनता और उसके मुद्दे उनमें से किसी के केंद्र में नहीं हैं -किसान की तकलीफ, आत्महत्या और आत्महत्या के लिए विवश करने वाले कारकों को मिटाने की इच्छा न तो मैनिफेस्टो में हैं न ही दलों की चिन्तन प्रक्रिया में। एक रिपोर्ट के अनुसार जनता से जुड़े लगभग 60 प्रतिशत मुद्दों को छोड़कर मीडिया हाउसेज गैरजरूरी मुद्दों को सामने रखते है। क्या करें, टीआरपी का जमाना है और मीडिया घरानों के बीच टिके रहने की होड़ भी है।

मीडिया के इस भ्रामक लोकतंत्र की यह एक बड़ी समस्या है। मीडिया हमारे सामने हर विषय पर विकल्प प्रस्तुत करने का दावा कर रही है पर एक चैनल की विषयों और प्रस्तुति की शैली में उतना ही झूठापन और उबाउपन है जितना किसी अन्य चैनल के पास। खबरों की दुनिया में वही सतहीपन है जो दर्शक को किसी प्रकार के वैचारिक निष्कर्ष नहीं देता न ही सोचने का अवसर क्योंकि रिमोट की आजादी ने विचार की अपेक्षा चयन और बदलाव पर बल दिया है विवेक और विचार पर नहीं। एक अजब विवेकहीनता का दौर है जहाँ मीडिया के पास विषयों का अभाव नहीं पर कुछ नया और जरूरी करने की इच्छा भी नहीं, जहाँ दर्शक को डान्स और म्यूजिक के लाइव शोज में किसी को विजयी बनाने का झूठा अधिकार दिया जाता है जिसके हर संदेश की कीमत है- 6 रूपये से आठ रूपये। एक ऐसा झूठा गर्वीला भाव जिसकी कीमत चुकाते- चुकाते दर्शक भावात्मकता की गिरह में फंस कर नियंता होने के भाव से अभिभूत रहता है और जरूरी मुद्दों से भटक जाता है। इतनी रंगीन दुनिया मीडिया ने निर्मित की है जिससे जब दर्शक को चयन का अधिकार मिलता है, अक्सर औसत दर्शक इन्फोटेंमेन्ट से इन्फो छोड़ देता है और टेनमेंट चुन लेता है।

मीडिया की यह दुनिया ताकतवर दुनिया है जो विजुअल्स के सहारे अपना महावृतांत रचती है। यह एक साधारण सा सिद्धांत है कि देखी हुई वस्तु का असर हम पर देर तक और दूर तक रहता है। दृश्यों की शृंखला हमारे मन-मस्तिष्क पर गहरा असर ही नहीं डालती बल्कि हमारे जीवन को प्रभावित भी करती है। यहाँ तक कि नकारात्मक दृश्य भी हमें प्रभावित भी करते हैं और हमें गढ़ने का कार्य भी करते हैं। अमेरिकी नीति निर्माताओं ने मुक्त संचार बाजार व्यवस्था का समर्थन किया जिसे उपभोक्ता की आजादी कहा गया। उपभोक्ता को एक तरह से इस संचार समाज का विश्व नागरिक मान लिया गया जिसके पास एक क्लिक पर सारी सूचनाएँ और तैर-तरीके विद्यमान हैं। पर क्या हम सचमुच इस मेटा-इन्फौर्मेशन के लिए तैयार समाज हैं? मीडिया हावी है, मीडिया खुद ही सन्देश है और खुद ही माध्यम! यहाँ मीडिया ही मेटा-नैरेटिव है और वही मेटा-थ्यौरी का निर्माता; मीडिया शक्ति भी है और शक्ति निर्माता भी। तकनीक के माध्यम से जन समाज को प्रभावित करने, उसकी सोच को एक खास दिशा में मुड़ने और जनता से सम्वाद करने में मीडिया सबसे बेहतरीन माध्यम के रूप में उपलब्ध है। इस काम में मीडिया कई तरह से कार्य करती है पर मैं इस आलेख में तीन तरीकों की पड़ताल करना चाहती हूँ- कल्पना या फिक्शन के जरिये मेटा नैरेटिव्स का निर्माण करते हुए, अपने खास संकेत चिह्नों के माध्यम से, दोहराव के माध्यम से!

केवल चार दृष्टान्तों के माध्यम से मीडिया की इस शक्ति को समझा और जाना जा सकता है- दो फिल्में, एक बालमन की अभिव्यक्ति के कारक और तीसरा वर्चुअल मीडिया के लोकतंत्रीय निर्धारक (बाहुबली, दृश्यम, कार्टून चैनल, आज के दौर में मीडिया का प्रयोग और समाचार की विश्वसनीयता का प्रश्न)

फिल्मों का वृत्तांत इसलिए जरूरी है क्योंकि इसका प्रभाव सबसे अधिक हर वर्ग के लोगों पर पड़ता है। 100 करोड़ के क्लब की जिस बहस से फिल्म की सफलता को मापा जाता है, उसके भीतर कंटेंट का प्रश्न कितना जरूरी है, इसे भी देखा जाना चाहिए।

पहली फिल्म है 'दृश्यम' --- फिल्म के एक सीन में तब्बू (जो आई-जी. की भूमिका निभा रही है) कहती है कि जो हम देखते हैं उसका असर हम पर हमेशा रहता है। पूरी फिल्म आपके मन और मस्तिष्क पर बेचैनी से छाई रहती है और कई सवाल खड़े करती है। ये सवाल सीधे मीडिया से न होते हुए भी उसकी ताकत से ही जुड़े हैं। फिल्म देखते हुए हमारा सामना एक चौथी फेल 'आम आदमी' से होता है जिसके लिए उसका परिवार ही सब कुछ है। अपने परिवार को बचे रखने की मुहिम में उसके हाथों कत्ल हो जाता है -एक ऐसे लड़के का जिसने उसकी बेटी की ज़िंदगी बर्बाद करने की कोशिश की! यहाँ तक तो ठीक है, पर ठीक यहाँ से वह आम आदमी कानून को खिलौना बनाकर अपनी देखी हुई फिल्मों से दृश्य चुनकर एक ऐसा खेल तैयार करता है, जिसके फेल होने का कोई अवसर नहीं! यह सब काम वह चौथी फेल आदमी उन सारी फिल्मों के विजुअल्स के सहारे करता है, जिनसे उसे कत्ल छुपाने की प्रेरणा) भी मिली और शायद न पकड़े जाने का साहस भी! अंत तक भी आई.जी. खुद अपने ही बेटे के कत्ल की गुत्थी नहीं सुलझा पाती और दर्शक ठगा सा रह जाता है कि वह इस कत्ल को छिपा लेने वाले की पीठ थपथपाए जिसने अपने परिवार को बचा लिया पर कानून को खिलौना बनाकर रख दिया या फिर कानून और नियमों के हार जाने का सोग मनाए? मजेदार यह कि समाज भी विजय सालगांवकर के साथ है क्योंकि विजुअल्स के माध्यम से उसने यह सिद्ध कर दिया कि वह हर उस जगह 2 तारीख को मौजूद था, जहाँ वह 2 तारीख को गया ही नहीं! सही और गलत की रेखा को धुंधलाती यह फिल्म एक बार फिर से मीडिया की ताकत को सामने खड़ा कर देती है जहाँ सबकुछ मौजूद है-आप चाहें तो नैतिक पाठ भी, चाहे तो हथियार भी और चाहे तो बम बनाने से लेकर उसे छिपाने के तरीके भी! सब कुछ सामने मौजूद है पर फिर सवाल उठता है कि क्या सही गलत का इतना तीखा विवेक भी हमारे पास है कि इस ताकत के भीतर छिपे उचित-अनुचित में भेद कर सकें?

'दृश्यम' फिल्म झिंझोड़कर रख देती है और तब्बू अंत तक जान नहीं पाती कि उसके बेटे की लाश कहाँ है? यह ठीक है कि एक आम आदमी को उस घड़ी में जो सही लगा उसने किया पर क्या यही काम करने की छूट सभी को दे दी जाए तो हम फिर आदिम और बर्बर युग में नहीं लौट जाएँगे जहाँ जिम्मेदारी से ज्यादा मसला सिर्फ अपनी सुविधा और सुरक्षा का है! और फिर यहाँ तो जो किया गया वह परिवार को बचाने के लिए पर क्या इससे यह छूट नहीं मिल जाती कि जो आपको सही लगे, वह आप कर सकते हैं, कि हर गलत को सही बनाने के विजुअल्स आसानी से हर जगह मौजूद हैं, जैसा चाहे चुन लीजिए! मेतलार्द ने इस मीडियम के सार्वजनिक जीवन में बढ़ते हस्तक्षेप को देखते हुए ही इसे उपनिवेशीकरण का मजबूत हथियार माना था!

एक दूसरी फिल्म है -'बाहुबली'! फिल्म को बहुत पसंद किया गया, खुद मैंने भी इस फिल्म को चार बार देखा। फिल्म कल्पना लोक की उड़ान पर ले जाती है और उस कल्पना लोक में से राजा-रानी और नायक-खलनायक का वृत्त बनता है। इस वृत्त के इर्द-गिर्द जनता है-राजा के प्रति वफादार और समर्पित जनता जो अपने उद्धारक का इंतजार करती है और खलनायक के आगे सर झुकाने के लिए मजबूर है। गुलाम वफादार होते हुए भी सही और गलत का निर्णय नहीं कर सकता बल्कि सिंहासन की गुलामी के लिए मजबूर है। रोमांस और प्रेम के मजबूत दृश्य होते हुए भी फिल्म मूलत: खलनायकी की ताकत के आगे नायक के महामानवत्व के वृत्तांत को स्थापित करती है-हैप्पी एंडिंग के साथ! पर पूरी फिल्म तकनीक की जादूगरी है -हर दृश्य की भव्यता और सुपर-नैचुरल प्रकृति एक ही साथ आकर्षित भी करती है और भय भी पैदा करती है। लब्बो-लुआब यह कि फिल्म की तकनीकी ताकत फिल्म के विजुअलाइजेशन को दिल-दिमाग में स्थापित कर देती है - भले ही वह पिंडारियों के लूट के दृश्य हों या बाहुबली की मृत्यु का दृश्य! कल्पना एक ऐसा सच हमारे दिमाग में तैयार करती है कि हम उससे बाहर आ ही नहीं पाते और उसे सच मानकर ही जीने लगते हैं। याद कीजिए ऐसा ही असर स्पाइडर मैन और अन्यों की फिल्मों का हुआ था, जहाँ रस्सियों के सहारे उड़ते महामानव के इन्तजार में कितने ही बच्चों ने जान गवाई। सत्य और कल्पना का यह घालमेल कहीं न कहीं अतिशय-सत्य का निर्माण कर रहा है जिससे सत्य-असत्य के बीच की रेखा लगातार झीनी हुई है।

फिक्शन और तकनीक के इस जादू ने जिस कोमल मन पर सबसे अधिक शिकंजा कसा, वह है बाल मन। बाल मन जिसके सामने सब कुछ मौजूद है, हर घटना और परिघटना! वह मीडिया के प्रस्तुतीकरण के माध्यम से बाजार की लगभग हर चीज से परिचित हो चुका है और जो नहीं जानता, उसे जानने की इच्छा वह तकनीक के सहारे पूरी कर लेता है। पर इस बाल मन की सहज जिज्ञासा ने आज आगे बढ़ते बढ़ते हिंसा और प्रतिहिंसा की दुनिया में प्रवेश पा लिया है। जहाँ विज्ञापन की दुनिया से

वह कल्पनालोक की उड़ान भर रहा है, वहीं वीडियो गेम्स के जरिये हिंसक दुनिया के बीच जीतने का झूठा सपना उसे अकेला कर रहा है। जिस तरह सिनेमा ने आम दर्शक के भीतर एक स्वप्नलोक बनाया और तीन घंटे तक दर्शक उस सच और झूठ के बीच की रेखा के साथ झूलता रहा आज वैसे ही बच्चा इस सच-झूठ की परिधि को लांघकर अवसाद की नई दुनिया में प्रवेश पा रहा है - 'मीडिया: वोइलेंस एंड चिल्ड्रन' में डगलस और के. एंडरसन वोइलेंट मीडिया गेम्स पर विचार करते हुए लिखते हैं कि ''आज बच्चे लगभग 10 से 12 घंटे वीडियो गेम की नयी मीडिया की दुनिया में बिताते हैं जिसमें से 89 प्रतिशत हिंसक खेल हैं'' सर्वेक्षण के जरिये वे बताते हैं कि लगभग 80 प्रतिशत बच्चे ऐसे खेल खेलना चाहते हैं जिनमें किसी पात्र को मार दिया जाए या भयानक रूप से वह घायल हो जाए। इसे वे फेंटेसी हिंसा का नाम देते हैं। एक ऐसा खेल जो आपको न केवल मानसिक तौर पर कमजोर बनाता है बल्कि हिंसा पर विश्वास करना भी सिखाता है। खेल की यह परिणति आज हिंसक हो रही दुनिया के दांत और अधिक पैने तो नहीं कर रही जिसका शिकार हमारे बीच का बच्चा हो रहा है? हिंसा को सत्य मानने वाला समाज वैसे ही उन्मादी हो रहा है जिसकी अगली पीढ़ी भी वीडियो गेम की दुनिया के उन्माद से हिंसा के प्रति इम्यून होती जा रही है। बच्चों की कहानियों की दुनिया से हिंसा के सफर का यह वृत्तांत मीडिया के नैरेटिव्स को भी बदल रहा है जिसका सम्बन्ध एक तरह प्रथम विश्व की साम्राज्यवादी नीतियों से है तो दूसरी ओर हॉलीवुडीय फिल्मी फिक्शन से!

एडोर्नो और हौर्खेमर ने इसे कल्चरल इंडस्ट्री का नाम दिया क्योंकि यह दर्शक के मन में एक ऐसा संसार निर्मित करता है जो सत्य तो नहीं पर सत्याभास का निर्माण अवश्य करता है। जॉन फिस्के ने अपनी पुस्तक ''अंडरस्टैंडिंग पॉपुलर कल्चर'' में सिनेमा को दोहरी अर्थव्यवस्था का चालक माना है-वित्तीय और सांस्कृतिक! वह एक साथ वित्तीय-सांस्कृतिक भी है और सांस्कृतिक-वित्तीय भी! सिनेमा इसी वित्तीय-सांस्कृतिक यात्रा के बीच अपनी भूमिका निभा रहा है-वह भी जरूरी चीजों को गैर-जरूरी बनाकर!

आज की दुनिया में खबर ने इस जरूरी और गैर-जरूरी के बीच की रेखा को बहुत तेजी से धुंधला किया है। यह कहना कठिन है कि किसे जरूरी कहा जाए और किसे गैर-जरूरी! यहाँ तक कि खबरों की विश्वसनीयता भी प्रभावित हुई है। कौन सी खबर असली है और कौन सी बनाई हुई- यह फर्क भी धीमे-धीमे मिट रहा है। हाल के वर्षों में विश्वसनीयता का सवाल बहुत तेजी से उठा है। क्या मीडिया खबर दिखती है या खबर बनाती है? इस विषय पर इधर बहुत बहस हुई। एक समय था जब समाचारों को सत्य मानकर उसके आधार पर जीवन की दिशाएँ बनती या बिगड़ती थीं पर इधर मीडिया को भी सत्ता के पक्षधर और विपक्ष की तरह देखा जाने लगा है। पहले भी यह था पर शायद इस विषय पर इतने खुलेपन से बात नहीं होती थी। यह ताकत भी हमें मीडिया ने दी है। कुछेक चैनल तो पूरी तरह से इस लोक से लेकर उस लोक तक की यात्रा का पूरा महावृतांत रचते ही नहीं बल्कि उसके सत्य होने का भरोसा भी दिलाते हैं। मेटा नैरेटिव्स के इस दौर में खबरें भी अपना मेटा-चरित्र बना रही है जिसमें कुछ खबरें दर्शक के भीतर हलचल ही पैदा नहीं करतीं बल्कि सोचने के लिए भी मजबूर करती हैं और कुछ केवल स्तब्ध करती हैं, डराती हैं, अपनी ही विश्वसनीयता को प्रश्नचिह्नित करती हैं। यहीं एक सवाल स्मृतिहीनता का भी है-दोहराव इतना ज्यादा है की स्मृति में ही सेंध लग गई है। कुछ याद रहे इसलिए विजुअल्स का दोहराव बहुत ज्यादा है- जो दिखता है, वो बिकता है।

दौर कठिन है, मीडिया भी अपना रूप तेजी से बदल रही है-पक्ष और प्रतिपक्ष की लड़ाई जारी है- पर मीडिया का दायित्व है कि वह प्रतिपक्ष में खडी रहे ताकि दर्शक और पाठक के भीतर विवेक और चयन का माद्दा पैदा होता रहे। यही मीडिया की ताकत है और यही भावक का भरोसा भी! रिपोर्ट और तथ्यों का नैरेटिव्स न हो बल्कि जीवन में परिवर्तन की बेहतरीन सम्भावना पैदा कर सके! हालाँकि अब नैतिकता का प्रश्न भी एक मोरल यूटोपियन प्रश्न हो गया है पर फिर भी साधारण भले ही असाधारण बने, असत्य असाधारण न हो जाए, इसकी उम्मीद ज़िन्दा रहनी चाहिए।

○○○

स्वतंत्रतापूर्व हिन्दी पत्रकारिता की भाषा

राहुल राज आर्यन

अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो वे पद्माकर और द्विजदेव की परम्परा में दिखाई पड़ते थे, दूसरी ओर बंग देश के माइकेल और हेमचन्द्र की श्रेणी में। एक और तो राधाकृष्ण की भक्ति में झूमते हुए नयी भक्तमाल गूँजते हुए दिखाई देते, दूसरी ओर मंदिरों के अधिकारियों और टीकाधारी भक्तों के चरित्र की हँसी उड़ाते हुए और स्त्री-शिक्षा, समाज सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाये जाते थे। प्राचीन और नवीन का यही सुन्दर सामंजस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है।

सम्पर्क: म.न. 89, गली नं. 6, भगत कालोनी, संतनगर, बुराड़ी, दिल्ली-110084, मो. 7827915153, ई-मेल: claryans@gmail.com

भारत में पत्रकारिता का इतिहास काफी पुराना है। वास्तव में हमारे यहाँ पत्रकारिता का आरंभ, अंग्रेजी-राज के खिलाफ एक संघर्ष के रूप में हुआ था। 19वीं सदी की शुरूआत के साथ ही भारत में चेतना की लहरें हिलोरे लेने लगी थी। नव्य शिक्षित मध्यवर्ग मानव-अधिकारों की वकालत खुलकर करने लगे थे। पत्रकारिता का स्वरूप धीरे-धीरे स्थिर होने लगा था। साथ ही साम्राज्यवादी शासन के खोखलेपन को भी इनमें अभिव्यक्ति मिल रही थी। ब्रिटिश सरकार तरह-तरह से प्रेस की आजादी को सीमित करने का प्रयास कर रही थी जिसका विरोध होना स्वाभाविक था।

1857 की क्रांति की विफलता के बाद भारतीय चिंतकों के समक्ष दो सवाल मुँह बाए खड़े थे- पहला, जनजागरण को राष्ट्रीय जागरण का स्वरूप देना और दूसरा, इस राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति हेतु सर्वव्यापी, सर्वग्राही भाषा की तलाश। इन दोनों ही कार्य में पत्रकारिता की भूमिका महत्वपूर्ण थी। इस रूप में विचार पत्रकारिता की भूमिका महत्वपूर्ण थी। इस रूप से विचार करें तो तत्कालीन पत्रकारिता के न केवल सामग्री महत्वपूर्ण हो जाते है बल्कि साथ-साथ उनकी भाषाई दक्षता और संप्रेषण नीति भी महत्वपूर्ण हो उठता है।

ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष के दौर में कई साहसी निडर पत्र व संपादक सामने आए। दरअसल, उस समय भारत में शायद ही कोई ऐसा बड़ा राजनैतिक नेता था जो खुद अखबार न निकालता हो या फिर किसी न किसी रूप से अखबार से न जुड़ा हो, क्योंकि पत्र-पत्रिकाओं, अखबारों का असर शहरों, कस्बों के अलावा दूर-दराज के गाँवों तक भी थी। इस तरह इस समय की पत्रकारिता न केवल लोगों को राजनीतिक रूप से शिक्षित कर रहे हैं बल्कि वह उन्हें सामूहिक भागीदारी और उनकी (जनता) भाषाई चेतना का भी निर्माण कर रहे थे। भाषा का सीधा संबंध मनुष्य के सांस्कृतिक परिवेश के साथ है। ब्रिटिश शासन ने हमारी सांस्कृतिक श्रेष्ठता को हर प्रकार से दीन-हीन बनाने का प्रयास किया था। मैकाले की शिक्षा नीति इसी प्रकार के उद्देश्यों से प्रेरित थी। इस सांस्कृतिक हीनता की स्थिति में हिन्दी पत्रकारिता ने केवल भाषाई चेतना को गढ़ने का काम

किया बल्कि जनता की व्यथा, आक्रोश व असंतोष को उसकी ही भाषा में अभिव्यक्ति दी है।

भारत का पहला हिन्दी पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' 30 मई 1826 को प्रकाशित हुआ। लेकिन व्यवस्थित रूप से हिन्दी पत्रकारिता भारतेंदु के साथ ही शुरू होती है। यहाँ आकर पहली बार विचारों में परिवर्तन, विषय-वस्तु में व्यापकता के साथ साहित्यकारों और पत्रकारों की दृष्टि यथार्थवादी हुई। दरबारी वृत्ति और रसिकता में कमी के साथ ही साहित्य और जीवन का संबंध जुड़ा, कथ्य और शिल्प बदले। मातृभाषा, मातृभूमि की महिमा का ज्ञान हुआ, स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग की होड़ बढ़ी। पत्रकारों ने देश की दुर्व्यवस्था को मिटाने के लिए जन सामान्य को उद्वेलित किया। इस काल में हिन्दी गद्य प्रवर्तन के साथ ही एक ओर हिन्दी-उर्दू का प्रश्न छिड़ा तो दूसरी ओर हिन्दी के स्वरूप पर विवाद पैदा हो गया। फ्रेंच विद्वान गार्सी द तासी ने हिन्दी का विरोध करते हुए कहा-

''इस वक्त हिन्दी की हैसियत एक बोली सी रह गयी है, जो हर गाँव में अलग-अलग बोली जाती है। हिन्दी में हिन्दू धर्म का आभास। इसके विपरीत उर्दू इस्लामी संस्कृति और आचार-व्यवहार का संचय है।''

सर फ्रेडरिक पिन्काट हिन्दी के समर्थक थे। पंजाब में श्रद्धाराम फुलौरी ने हिन्दी का प्रचार-प्रसार किया। शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' की फारसी मिश्रित हिन्दी का पक्ष दुर्बल पड़ता गया तथा राजा लक्ष्मण सिंह की भाषा-नीति सबल हो गई। ऐसी ही संक्रमण स्थिति में हिन्दी पत्रकारिता अपना रूप ग्रहण कर रही थी और नेतृत्व बहुमुखी व्यक्तिवाले भारतेंदु के हाथों में था। वे परंपरा और प्रगतिशीलता के मध्य समन्वय स्थापित करने वाले नेतृत्वकर्ता थे।

''अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो वे पद्माकर और द्विजदेव की परम्परा में दिखाई पड़ते थे, दूसरी ओर बंग देश के माइकेल और हेमचन्द्र की श्रेणी में। एक और तो राधाकृष्ण की भक्ति में झूमते हुए नयी भक्तमाल गूँजते हुए दिखाई देते, दूसरी ओर मंदिरों के अधिकारियों और टीकाधारी भक्तों के चरित्र की हँसी उड़ाते हुए और स्त्री-शिक्षा, समाज सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाये जाते थे। प्राचीन और नवीन का यही सुन्दर सामंजस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है।''

हिन्दी गद्य के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन के साथ पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन, सम्पादन में उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया। भारतेन्दु ने 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगजीन और 'बालबोधिनी' पत्रों को स्वत: निकाला तथा उन्होंने प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, चौधरी बदरीनारायण प्रेमघन, अम्बिकादत्त व्यास आदि को विविध पत्रों के प्रकाशन हेतु सत्प्रेरणा दी।

भारतेन्दु की सबसे बड़ी देन है हिन्दी को परिष्कृत रूप प्रदान करना। सन् 1873 की 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में उन्होंने स्वत: लिखा ''हिन्दी नयी चाल में ढली'' भारतेन्दु ने भाषा में संक्रमण की स्थिति को समाप्त किया। अंग्रेजी, बंगला, फारसी, अरबी से संक्रमित कुंठित बोझिल हिन्दी को उबारने का श्रेय उन्हें जाता हैं।

उद्भव काल के प्रारम्भिक पत्रों की भाषा ऊबड़-खाबड़ और अपरिमार्जित थी। व्याकरण की दृष्टि से भाषा न तो शुद्ध थी और न उसमें प्रवाह ही था। 1867 में भारतेन्दु-मण्डल ने हिन्दी गद्य को वहीं रूप प्रदान किया जो हिन्दी-प्रदेश की जन-भावना के अनुरूप था। व्यावहारिक, सजीव, प्रवाहपूर्ण गद्य से हिन्दी साहित्य को गौरवान्वित करने का क्षेय 'कविवचन सुधा', 'बिहारबंधु', 'हिन्दी प्रदीप', 'भारतमित्र', 'क्षत्रियपत्रिका', 'उचितवक्ता', 'आनन्द कादम्बिनी', 'ब्राह्म' आदि पत्रों को है। इन पत्रों में समादृत लेखों में यथा संभव लोक प्रचलित शब्दावली का प्रयोग मिलता है। वाक्य छोटे-छोटे व्यंजक है। कहावतों, लोकोक्तियों तथा मुहावरों के प्रयोग से भाषा जीवंत व स्वाभाविक बनायी गयी। गद्य ब्रजभाषा के प्रयोगों से प्रभावित है। गद्य का रूप स्थिर हुआ, उसका प्रसार हुआ, नवीन विधाओं का सूत्रपात हुआ। पत्रकारों की भाषा में स्थानीय रंग लक्षित होता था जिसे स्थानीय मुहावरों, लोकोक्तियों और शब्दों ने और भी गाढ़ा बना दिया। हिन्दी पत्रकारिता जगत को भारतेंदु और उनकी मंडली ने राष्ट्रीयता की भावना से भर दिया। उनका कहना था: ''जिसमें तुम्हारी भलाई हो वैसी ही किताब पढ़ो, वैसी ही खेल खेलो, वैसी की बातचीत करो, परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा का भरोसा मत रखो। अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।''

भारतेंदुयुगीन पत्रकारिता की भाषा का यह उदाहरण: ''झाड़ू को देखो कि जब तक यह बंधी है तब तक कोई भी सबल इसके तोड़ने को सामर्थ्य नहीं होता और आपकी झाड़ू में सामर्थ्य है कि मानों कूड़े को बात की बात में बाहर निकालदे। परन्तु जब उसके बंधन खुल के बिखर जावें तो उस समय सारा बल उसका नाश ही कर डालें। इसी प्रकार जब तुम्हारा घर झाड़ू की भाँति

एकता भाव करके बंधा हुआ है तुम भी समर्थ हो।'' आकर्षक भाषा को जनता के करीब रखने के उपक्रम में बहुत बार शीर्षक भी मुहावरे, लोकोक्तियों में होते थे। यथा-

'जले पर नोन', 'शोक पर शोक', (पीयूष प्रवाह, 25 जनवरी, 1885) 'आधा तीतर आधा बटेर', 'घर के न घाट के' (हिन्दी प्रदीप फरवरी-मार्च 1883) इस प्रकार धरती की गंध से अनुप्राणित सहज, सजीव हिन्दी का निर्माण संभव हुआ।

हिन्दी पत्रकारिता की कथा यात्रा भारतीय राष्ट्रीयता के उद्‌भव और विकास से संबंद्ध है। सरकार की अत्याचार पूर्ण नीति, भारतीय नेताओं की दूरदर्शिता, अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार, लोकतंत्रात्मक भावनाओं के विकास और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना ने हिन्दी पत्रकारिता को वस्तु और अभिव्यक्ति दोनों स्तरों पर प्रभावित किया था। पत्रकारिता में आत्मविश्वास का स्तर बढ़ा हुआ मिलता है। पहले जो बात संकेतों में कही जाती थी वह अब चुभने वाली भाषा में और तीखे व्यंग्य में कही जाने लगी।

हिन्दी प्रदीप ने लिखा:

''ओ स्वतंत्रता! तुम भारत को छोड़कर क्यों भाग गयी और अकेला छोड़ दिया? भगवान की बेटी, विश्व की प्रेमिका और गुणों का पुंज तुम कहाँ चली गयी।''

'कायस्थ समाचार', 'अम्युदय', 'केसरी', 'युगान्तर', 'कर्मवीर', 'प्रताप', 'गदर' ने उदारवादियों की भीख मांगने वाली प्रवृत्ति को उपहासास्पद बतलाया। ऐसे अवसरों पर इन पत्रें में व्यंग्य और भाषा की तीक्ष्णता का एक उदाहरण 'कर्मयोगी' का इस प्रकार है-

''ओ राष्ट्रवादियों! कायरों से कोई आशा न करो। (उदारवादी) हाथियों का शिकार करते गीदड़ कभी भी शेरों का साथ नहीं दे सकते, यद्यपि वे शेरों की अपेक्षा शिकार मरने पर माँस अधिक खा सकते हैं। ओ वीरो, अपने पैरों पर खड़े हो और अपने कर्त्तव्य का पालन करो।''

एक तरफ राजनीतिक नेताओं द्वारा सामाजिक समन्वय का प्रयास हो आकार ले रहा था तो दूसरी तरफ साहित्यिक-सांस्कृतिक समन्वय भी धरातल पर दिखने लगा था। 'आर्य समाज' और उसकी विविध पत्र-पत्रिकाओं का योगदान इस दिशा में मील का पत्थर है। उर्दू के मध्य हिन्दी की नींव को सुदृढ़ करने में इनका योगदान महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने 'हिंदी' को 'आर्य भाषा' के रूप में पल्लवित-पुष्पित किया और 'हिन्दी' को सर्वथा नवीन विचार भूमि दी। 'आर्यवृत्त' (1887), 'आर्यमित्र' (1890), 'आर्यपत्र' (1895), 'आर्य भास्कर' (1896), 'आर्य सेवक' (1900), 'आर्यदर्पण' (1906), 'आर्य कुमार' (1917) आदि ऐसे ही कुछ पत्र हैं जो महर्षि दयानंद के इस कथन को साकार देखना चाहते थे-

''भाई, मेरी आँखें उस दिन को देखने के लिए तरस रही हैं जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक भाषा को समझने और बोलने लगेंगे।... अनुवाद तो विदेशियों के लिए हुआ करते हैं।''

हिन्दी भाषा के विकास का इतिहास पत्र-पत्रिकाओं के विकास पर आश्रित है। जो साहित्य के लिए द्विवेदी युग है, पत्रकारिता में वही जागरण-सुधार काल कहा जाता है। द्विवेदी जी ने, व्याकरण-सम्मत, सरल और स्पष्ट तथा विचारपूर्ण गद्य का निर्माण 'सरस्वती' द्वारा किया। बालमुकुन्द गुप्त ने मुहावरेदार, सजीव और परिष्कृत हिन्दी हेतु जीवन अर्पित कर दिया। 'सरस्वती', 'नागरी प्रचारिणी सभा' ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण काम किया। 'इन्दु', 'सुदर्शन', 'समालोचक', 'प्रभा', 'मर्यादा', 'माधुरी' आदि की भाषा साहित्यिक स्वरूप में स्थिर रूप ग्रहण कर रही थी। यह ठोस भाषा के निर्माण का दौर था। जिसमें विस्मयकारी उर्वरता, विविधता, ताजगी, ओज, नैतिक गाम्भीर्य एवं प्रफुल्लता के दर्शन होते हैं। 'संसार' साप्ताहिक के संपादक पराड़कर द्वारा लिखित ये पंक्तियाँ भाषाई दक्षता की दृष्टि से एक उदाहरण है-

''फिर भी हम समझते हैं कि भारत में अरुणोदय होने जा रहा है। इसका कारण यह है कि समस्या जब जटिल और असह्य हो जाती है तब उसका निपटारा हो ही जाता है। रोग आप अपनी दवा बन जाता है। हमारा विश्वास है कि इस रोग से भारत मुक्ति पा जाएगा, भय का स्थान आत्मविश्वास ग्रहण करेगा जगत् में भारत अपना पद पा जाएगा।''

सन् 1920 से 1947 ई. तक पूरा भारतवर्ष असहयोग आंदोलन, चौरी-चौरा कांड, लाहौर उद्‌घोषणा, सविनय अवज्ञा आंदोलन, नमक सत्याग्रह, द्वितीय विश्वयुद्ध, भारत छोड़ो आंदोलन और सांप्रदायिक दंगों के कारण उद्वेलित था। युग का नेतृत्व महात्मा गाँधी के पास था जिनकी भाषाई चेतना बिल्कुल स्पष्ट थी। 'सत्याग्रह', 'यंग इंडिया', 'नवजीवन', 'हरिजन' आदि पत्रों

॥ सादर नमन ॥

भारतीय मनीषा की गरिमामय विभूति

स्वर्गीया श्रीमती सुषमा स्वराज

14 फरवरी 1952 – 06 अगस्त 2019

के माध्यम से गांधी जी भारतीय जन-मानस पर छा गए। गांधी का मानना था- ''यदि स्वतंत्रता के साथ हिन्दी नहीं आयी तो स्वतंत्रता अधूरी रह जाएगी।'' यह समय छायावाद का था। हिन्दी भाषा में अपार अभिव्यंजना शक्ति विकसित हुई। चित्रण प्रधान, लाक्षणिक, अलंकृत हिन्दी भाषा में अनुभूति की सघनता और भावों की तरलता आ गई। आंदोलन के विस्तार के साथ ही पत्र-पत्रिकाओं की शब्द-संपदा में वृद्धि हुई। प्रेमचंद, हजारीप्रसाद द्विवेदी, वियोगी हरि, सेठ गोविंददास, शिवपूजन सहाय आदि की लेखनी से गुजरकर हिन्दी गद्य सशक्त होकर विराट जीवन को वाणी देने में सक्षम हुआ। जौनपुर से प्रकाशित 'समय' पत्रिका की यह भाषा गद्य के उत्कर्ष का प्रमाण है-

''... कैसा दृश्य है- करुणोत्पादक, भयंकर किन्तु उत्साहवर्द्धक- एक ओर हमारा वीर धीर व्रती एक सिद्धांत पर अटल निर्भीकतापूर्ण मृत्यु का आह्वान करता है तो दूसरी ओर फौलादी पंजा टस से मस नहीं होता... यतीन्द्र! भारतवर्ष का अपने बलिदान से सिर ऊँचा कर दिया।''

सारांश यह है कि स्वतंत्रतापूर्व पत्रकारिता भारत के क्रांति का दस्तावेज तो है ही, भाषाई चेतना के विकास का भी प्रमाण है। उस समय पत्रकारों के लिए राष्ट्रीयता फैशन और व्यवसाय नहीं अपितु एक पवित्र व्रत और साधना थी। इस राष्ट्रीयता के निर्माण का प्रश्न भाषाई चिंतन से प्रत्यक्ष जुड़ा हुआ था। ब्रजभाषा-खड़ी बोली विवाद, हिन्दी-उर्दू विवाद, हिन्दी-हिन्दुस्तानी विवाद जैसे अनेक पड़ाव पार कर हिन्दी अपना स्वरूप ग्रहण करती जाती थी। इस पूरी प्रक्रिया में पत्रकारिता लोक के बीच से भाषाई प्राणवायु अर्जित कर न केवल हिन्दी को अभिव्यक्ति के अनेक तरकशों से लैस कर रही थी अपितु साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना और भाषाई चेतना दोनों को समान धरातल भी प्रदान करती चली जा रही थी। स्वतंत्रतापूर्व पत्रकारिता का भाषाई अवलोकन हिन्दी को उबड़-खाबड़ रास्ते से होकर सरपट भागने की कहानी है जिसे कुशल चालकों ने निर्देशित किया है।

○○○

शैक्षणिक विप्लव का राग: राग दरबारी

डॉ. हरींद्र कुमार

शिक्षा प्रणाली की अनुपयुक्ता, राजनीति, गुटबाजी और छल प्रपंचों के कारण शिक्षण संस्थानों का स्तर लगातार गिर रहा है। रचनाकार ने 'शिवपालगंज' के इन्टरमीडियट विद्यालय के माध्यम से प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय की शिक्षा विभाग का डायरेक्टर जब हिमायती शिक्षकों से कहे—'तुम कहते हो कि वहाँ पर सिर्फ गुटबन्दी है, लड़कों की पढ़ाई ठीक से नहीं होती, हिसाब-किताब गड़बड़ है, इम्तिहान में नकल करायी जाती है।

सम्पर्क: 39/9, फर्स्ट फ्लोर, शक्ति नगर, दिल्ली-110007

उपन्यास अपने उस समय का दस्तावेज होता है, जो सदैव परिवर्तित होता रहता है। सैद्धान्तिक तौर पर अध्ययन और अनुशासन शैक्षणिक संस्थान का प्रमुख गुण माना जाता है किन्तु बदलते वक्त के साथ भारतीय शैक्षणिक परिसर राजनीति के 'शिक्षालय' और बाद में 'अखाड़े' बनते चले गए। श्री लाल शुक्ल द्वारा लिखित 'राग दरबारी' उपन्यास में इस बदलते हुए समय और समाज का संवेदनशीलता के साथ अंकन किया गया है।

भारत भारद्वाज ने स्पष्ट किया है कि 1968 में प्रकाशित चर्चित और लोकप्रिय उपन्यास को 1970 में यदि साहित्य अकादमी पुरस्कार नहीं मिला होता, बहुत संभव है हिन्दी समाज से स्वीकृति मिलने में थोड़ी और देर होती क्योंकि इस उपन्यास के प्रकाशन के बाद इस पर प्रकाशित आरंभिक समीक्षाएं लेखक के प्रतिकूल थीं। एक तरफ 'कहानी' के तत्कालीन संपादक श्रीपत राय ने इसे 'अब का महाग्रंथ' के साथ 'अतिशय उबाने वाली कुंरूचिपूर्ण और कुरचित' कृति ही नहीं घोषित किया था, बल्कि यह भी भविष्यवाणी की थी कि यह अपठित रह जायेगी, तो दूसरी तरफ कथा आलोचक नेमिचन्द्र जैन ने इस उपन्यास पर 'असन्तुष्ट, क्षुब्ध व्यक्ति की बेशुमार शिकायतों और खीज भरे आक्षेपों का अंतहीन सिलसिला' का लेबल चस्पां कर दिया था। आज पांच दशकों बाद यह स्पष्ट हो गया है कि यह उपन्यास न केवल पाठकों के बीच लोकप्रिय है, बल्कि बहुपठित भी। प्रेमचन्द के 'गोदान', रेणु के 'मैला आँचल' के बाद यह तीसरा आधुनिक हिन्दी साहित्य का कालजयी उपन्यास है जिसका लगातार पुनर्मूल्यांकन हो रहा है। डॉ. चन्द्रप्रकाश मिश्र ने भी इस उपन्यास का पुनर्मूल्यांकन अपनी शोध आलोचनात्क कृति से 'साक्षात्कार राग दरबारी' में किया है।

'राग दरबारी' शैक्षणिक विप्लव को चित्रित करने वाला महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें कस्बानुमा गाँव शिवपालगंज के विकृत रूप का चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस गाँव में एक कॉलेज है—'छंगामल इण्टरमीडिएट कॉलेज; इस कॉलेज के माध्यम से रचनाकार ने सातवें दशक में उत्तर भारत के हिन्दी क्षेत्र में आई विकृतियों का वर्णन किया।' यह भी कहा जा सकता है कि आठवें और नवें दशकों में शैक्षणिक परिसरों में जो विद्रूपताएं पैदा हुई थी, छंगामल इण्टर कॉलेज उनका मौसम-सूचक यंत्र या वादनुमा

है। 'राग दरबारी के प्रकाशन के समय उसमें चित्रित जो यथार्थ अतिरंजित जान पड़ता था वह नवें दशक में आते-आते बिल्कुल सामान्य और परिचित हो गया। वर्तमान परिवेश में' तो 'राग दरबारी' शैक्षणिक विप्लव की महागाथा के रूप में चित्रित हो गया है। महानगर से दूर ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यालयों में तो आज भी 'राग दरबारी' में चित्रित परिवेश जीवन्त दिखाई पड़ता है।

'राग दरबारी' में शिक्षा संस्थानों और वर्तमान शिक्षा प्रणाली की विसंगतियों की व्यापक रूप में अभिव्यक्ति हुई है। शिक्षा-पद्धति का आज तक कोई सुनिश्चित मानदंड नहीं बन सका है और न उसमें प्रयोग के स्तर पर किए गए परिवर्तन क्रांतिकारी सिद्ध हो सके हैं। आज न्यायालयों को कमजोर वर्ग के विद्यार्थियों को प्रवेश देने के लिए हिदायतें देनी पड़ रही है और विरोध में निजी स्कूल भी ताल ठोक कर खड़े हो गए हैं। उपन्यासकार आरंभ में ही कहता है—'वर्तमान शिक्षा-पद्धति रास्ते में पड़ी हुई कुतिया है, जिसे कोई भी लात मार सकता है।' शिक्षा प्रणाली की अनुपयुक्ता, राजनीति, गुटबाजी और छल प्रपंचों के कारण शिक्षण संस्थानों का स्तर लगातार गिर रहा है। रचनाकार ने 'शिवपालगंज' के इन्टरमीडियट विद्यालय के माध्यम से प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय की शिक्षा पद्धति का व्यंजक लेखा जोखा किया है। शिक्षा विभाग का डायरेक्टर जब हिमायती शिक्षकों से कहे—'तुम कहते हो कि वहाँ पर सिर्फ गुटबन्दी है, लड़कों की पढ़ाई ठीक से नहीं होती, हिसाब-किताब गड़बड़ है, इम्तिहान में नकल करायी जाती है, प्रिंसिपल तुम लोगों से दुर्व्यवहार करता है तो भईयाजी, यह भी कोई बात हुई ? यह सब तो सब कॉलेजों में होता है।' आज इसी गुटबन्दी का बोलबाल है। अप्पन के शब्दों में—'मुझे तो लगता है दादा सारे मुल्क में यह शिवपालगंज ही फैला हुआ है।'

उपन्यास में अध्यापकों की रुचि अध्यापन और छात्रों के व्यक्तित्व निर्माण में नहीं है जितनी अपने व्यवसाय को चमकाने में है। मास्टर मोतीराम, जो छंगामल इन्टर कॉलेज में विज्ञान के अध्यापक हैं, बी.एस.सी. पास हैं, किन्तु वे छात्रों को अपेक्षित घनत्व बताने की बजाय अपनी आटा चक्की का इतिहास बताने में ज्यादा रुचि लेते हैं। छात्रों के प्रश्नों और जिज्ञासाओं को सुनने की बजाय उनकी रुचि चक्की की 'भक्-भक्' आवाज सुनने में है। वर्तमान में ग्रामीण समाज के सरकारी स्कूलों की स्थिति इससे बेहतर नहीं है, जहाँ अध्यापक वर्ग छात्रों की जिज्ञासा भावना को ही नहीं समाप्त करते अपितु उनके ज्ञान को तोतारंटत विद्या का रूप दे रहे हैं जिससे विद्यार्थी परीक्षा तक ही सीमित हो गया है।

खन्ना मास्टर प्रतिदिन कॉलेज में प्रिंसिपल के विरुद्ध षडयंत्र रचने, गाली-गलौज करने तथा गुटबन्दी करने में ही व्यस्त पाए जाते हैं। वे सिर्फ पार्टीबंदी के उस्ताद हैं। अपने घर पर लड़कों को बुला-बुलाकर जुआ खिलाते हैं। वे इतिहास के मास्टर थे और अंग्रजी पढ़ा रहे थे। यहाँ तक कि वे सातवें और नौवें दर्जे को एक साथ पढ़ाने पर विवश थे। इस प्रकार उपन्यास में एक ओर स्वार्थपरायण मनोवृत्ति वाले अध्यापकों के चारित्रिक विघटन की गाथा प्रस्तुत की गई है, तो दूसरी ओर शोषणवादी, निरंकुश और उच्छृंखल प्रिंसिपल वर्ग की जो अपनी अफसर शाही नीतियों से अध्यापकों का निरंतर शोषण करता है। अध्यापकों को झूठे मुकदमों में फँसाना, आधा वेतन देकर दुगुनी रकम पर दस्तखत करा लेना, बलपूर्वक त्यागपत्र ले लेना जैसे कार्यों में प्रिंसिपल सिद्धहस्त है। निजी विद्यालयों में मैनेजर का आशीर्वाद प्राप्त कर प्रिंसिपल अध्यापकों के लिए अत्याचार और उत्पीड़न का मूर्त रूप बन जाता है। ऐसी स्थिति में न तो विद्यालय का विकास हो पाता है और न ही विद्यार्थी का भविष्य उज्ज्वल। वहाँ केवल राजनीति और गुटबन्दी होती है, शिक्षण कार्य नहीं। आज सम्पूर्ण देश के अधिकांश विद्यालयों-कॉलेजों की यही स्थिति है।

वर्तमान में छात्र वर्ग में अनुशासनहीनता और हिंसक मनोवृति बढ़ती जा रही है। फलत: परीक्षाओं में नकल का प्रचलन बढ़ता जा रहा है और रोकने पर अध्यापक को खिड़की से बाहर फेंकने की धमकी दी जाती है। वास्तव में, जो गुटबन्दी अध्यापको में थी, वही नासूर की तरह छात्रों में घर करती जा रही है। अध्यापकों का जी भी किताबों से भर गया है—''ये साली टेक्सट बुकें, समझ लीजिए, सड़े-गले फल ही हैं। लौंडो के पेट में इन्हीं को भरते रहते हैं, कोई हजम करता है, कोई कै करता है। अप्पन भी रंगनाथ से कहता है—''इस देश की शिक्षा पद्धति बिल्कुल बेकार है। बड़े-बड़े नेता यही कहते हैं, मैं उनसे सहमत हूँ। टैन्थ क्लास में बार-बार फेल होने पर कॉलेज को दोष देते हुए कहता है—''फिर तुम इस कॉलेज का हाल नहीं जानते। लुच्चों और शोहदों का अड्डा है। मास्टर पढ़ाना-लिखाना छोड़कर सिर्फ पालिटिक्स भिड़ाते हैं। यहाँ भला कोई इम्तहान में पास हो सकता है। इसी कॉलेज के मैनेजर हैं वैद्य जी, 'मास्टरों' का आना-जाना इन्हीं के हाथ में है। इस प्रकार वैद्य जी जिनका शिक्षा से कोई संबंध नहीं शिक्षण संस्थाओं के मालिक अधिक हो गए हैं। इन शिक्षण संस्थानों में कुनबापरस्ती का बोलबाला है। इसी को रचनाकार ने युग-धर्म कहा है।

उपन्यासकार ने छंगामल कॉलेज के माध्यम से परोक्षत: विश्वविद्यालय के शिक्षकों और अधिकारियों की स्थिति और शोध के स्तर को भी रेखांकित किया है। विश्वविद्यालय में प्रध्यापकों की नियुक्तियाँ सिफारिश के बल पर होती हैं, जो जितनी अधिक चापलूसी, चाटुकारिता करने में दक्ष है, वह उतनी जल्दी प्राध्यापक या प्रिंसिपल बन सकता है। ये महज भाड़े के टट्टू हैं जिनके कारण यूनिवर्सिटियों की हालत अस्तबल जैसी हो गई है। शोध योजना की आड़ में विदेश यात्रा का प्रबल आकर्षण शोध की गरिमा के पतन में सहायक सिद्ध हो रहे हैं। एक लम्बे अर्से तक बेकारी की कुंठा मिटाने के लिए शोध का आश्रय लिया जाता रहा है जिसके कारण रंगनाथ की दृष्टि में शोध कार्य जैसा गुरुतर कार्य भी 'घास खोदना' बनता जा रहा है। शोध कार्य ग्रंथालयों में नहीं, घरों में होता है। रंगनाथ भी ''दो दिन पहले शहर जाकर युनिवर्सिटी के पुस्तकालय से बहुत सी किताबें उठा लाया था और इस समय नीम पर फैली धूप की मार्फत उनका अध्ययन कर रहा था।''

''विश्वविद्यालयों के कुलपति की दशा तो और भी अधिक दयनीय है। उनकी ज़िंद्गी नरक है। सवेरे से ही अपनी मोटर लेकर हर ऐक्जीक्यूटिव वाले को सलाम लगाता है। कभी चांसलर की हाजिरी, कभी मिनिस्टर की, कभी सेक्रेटरी की। गवर्नर साल में कम से कम चार बार डाँटता है। दिन-रात काँय-काँय, चाँय-चाँय। लड़के माँ-बहिन की गाली देते हुए सामने से जुलूस लेकर निकल जाते हैं। हमेशा पिटने का अंदेशा...

वर्तमान समय में भारत के महानगरों से दूर लगभग सभी राज्यों में शैक्षणिक संस्थाओं में विप्लव राग सुनाई पड़ सकता है। यह संकट शिक्षा के स्तर में गिरावट और संस्थानों में मानवीय मूल्यों के ह्रास के कारण उत्पन्न हुआ है। उपन्यास अपने समय और समाज के सत्य से साक्षात्कार करता है। सांकेतिक रूप से ही नहीं, स्पष्ट वर्णन के स्तर पर भी शैक्षणिक विप्लव का राग है श्री लाल शुक्ल का 'राग दरबारी'।

○○○

भा.सां.सं.प. द्वारा श्री परिमल अशोक फड़के के नेतृत्व में, भरतनाटयम नृत्य समूह का 13-23 अगस्त 2019 तक नल्लूर महोत्सव और स्वतंत्रता दिवस समारोह में सांस्कृतिक प्रदर्शन देने के लिए श्रीलंका का दौरा प्रायोजित किया गया

नरेंद्र मोहन की आत्मकथा का सच

डॉ. कमलेश सचदेव

लेखक होने के नाते नरेन्द्रमोहन अवचेतन का हिस्सा बन चुकी विभाजन के साथ आई विस्थापन और कत्लोगारत की स्मृतियों को अपनी कविताओं और नाटकों में ढालते हैं, नए-नए बहानों से नए-नए रूपों में बार-बार उभरती हिंसा उन्हें सामान्य व्यक्ति से अधिक पीड़ा देती है क्योंकि वह उनके अवचेतन में बसे विभाजन की स्मृतियों को फिर-फिर जागृत कर देती है।

'आत्मकथा' शब्द 'आत्म' और 'कथा' को जोड़कर बना है। 'आत्म' जहाँ व्यक्तिपरक है वहीं 'कथा' समाजपरक। कथा के लिए श्रोता का होना अनिवार्य है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि आत्मकथा व्यक्ति का समाज में विस्तार है। जब व्यक्ति अपने जिए जीवन को अपने तक ही सीमित न रखकर समाज को उसमें सहभागी बनाना चाहता है तभी आत्मकथा लिखी जाती है। साहित्य की अन्य अनेक विधाओं की अपेक्षा आत्मकथा अधिक लोकप्रिय है। इसके अपने कारण भी हैं। कथारस से लेकर दूसरों के जीवन में झाँकने की सहज इच्छा को तृप्त करने के अतिरिक्त इतिहास, समाजशास्त्र, राजनीति तथा संस्कृति संबंधी सामग्री को अन्य कोई भी विधा इतनी प्रामाणिकता और रोचकता के साथ रिकार्ड नहीं कर सकती। इसीलिए प्रत्येक आत्मकथा मूल्यवान होती है। किसी युगपुरुष अथवा महान व्यक्ति की आत्मकथा की तो बात ही छोड़िए, नितांत साधारण स्त्री अथवा पुरुष की आत्मकथा भी अपने ढंग से अपने समय की स्थितियों, परिस्थियों और मन:स्थितियों का संश्लिष्ट दस्तावेज होती है। इसमें भी कोई शक नहीं कि कुछ आत्मकथाओं का समाजशास्त्रीय महत्व अधिक होता है तो कुछ संवेदनशील मन के भीतरी संघर्ष तथा आलोड़न-विलोड़न की झलक देने के कारण महत्वपूर्ण होती हैं। इसी के साथ-साथ यह भी नहीं भूलना चाहिए कि प्रत्येक आत्मकथा में समाज एवं व्यक्ति दोनों उपस्थित रहते ही हैं—अंतर बलाघात का ही है। इस दृष्टि से देखा जाए तो दलित लेखकों एवं महिलाओं की आत्मकथाओं की समाजशास्त्रीय मूल्यवत्ता अन्य आत्मकथाओं की अपेक्षा कहीं अधिक है और अन्य आत्मकथाओं में प्राय: व्यक्ति के आत्मसंघर्ष तथा किए-अनकिए में लिपटा हुआ समय और समाज अपने अनेक प्रसंगों सहित मौजूद रहता है।

प्रख्यात हिंदी कवि, आलोचक, नाटककार, जीवनीकार एवं अन्य विधाओं में भी रचना करने वाले डॉ. नरेन्द्रमोहन की आत्मकथा के दो खंड 'कमबख्त निंदर' और 'क्या हाल सुनावाँ' पिछले दिनों सामने आए हैं। कवि तथा नाटककार होने के कारण वे एक कल्पनाशील सृजनात्मक लेखक हैं तो दूसरी ओर आलोचक एवं प्राध्यापक होने के नाते एक तर्कशील बौद्धिक व्यक्ति हैं

सम्पर्क: डी-2068, पालम विहार, गुरूग्राम-122017, मो. 9999463163

बल्कि कहा जा सकता है कि वे सृजनात्मक आलोचक हैं और आलोचनात्मक कवि तथा नाटककार है। उन्होंने आलोचक के तौर पर कविता में विचार की भूमिका को नए ढंग से परिभाषित ही नहीं किया, स्वयं उस रंग की कविताओं की रचना भी की है। इसके अतिरिक्त लम्बी कविता को हिंदी आलोचना के केंद्र में लाकर उसका एक सौंदर्यशास्त्र भी रचा है। लम्बी कविताओं की आलोचना और रचना के क्रम में उन कविताओं के भीतर निहित नाटकीय तत्वों ने उनके अवचेतन में कहीं दबे पड़े नाटककार को जागृत कर दिया और उन्होंने कितने ही नाटक लिख डाले जो मंचित, प्रसारित और प्रशंसित भी हुए और उनमें से कुछ प्रतिबंधित भी। वे मण्टो की जीवनी और अपनी डायरी में तथ्यात्मकता के अतिरिक्त एक आलोचक की विश्लेषण-क्षमता, कवि की संवेदनशीलता और नाटककार की कल्पनात्मकता को एक साथ साधकर उन्हें उत्कृष्ट कलाकृतियों का रूप देने में सफल रहे हैं। ऐसा व्यक्ति जब आत्मकथा लिखता है तो पाठक उससे आत्मकथा की मूल शर्त ईमानदारी के अतिरिक्त अपने दौर के तटस्थ विवेचन और एक विशेष अर्थ में सौंदर्यबोध की भी अपेक्षा करता है।

नरेन्द्रमोहन ने आत्मकथा के पहले और दूसरे खंड की भूमिकाओं में स्पष्ट कर दिया है कि वे आत्मकथा में ईमानदारी को सबसे जरूरी मानते हैं। 'कमबख्त निंदर' की भूमिका में वे दो प्रकार की ईमानदारी को विशेष रूप से रेखांकित करते हैं—एक तो अपने प्रति निर्मम होना और दूसरे खुद को ऊँचा या बड़ा दिखलाना के लिए दूसरों को न गिराना। वे कहते हैं—''यह बात मुझे हमेशा गलत लगी है कि दूसरों को गिराकर या छोटा बनाकर खुद को बड़ा या ऊँचा दिखाने या जतलाने की कोशिश हो। इस तरह की सोच वाले, पूर्वाग्रहों से लदे-फदे, आत्मरतिग्रस्त और बड़बोले आदमी से आत्मकथा की उम्मीद नहीं की जा सकती। दूसरों के प्रति पूर्वाग्रह न रखने के साथ-साथ अपने प्रति निर्मम होने की आवश्यकता को वे इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—''अपने हाथों अपना चित्रण बड़ी रपटीली राह है। एक पल आप दम्भ में इतराते शिखर पर हैं तो दूसरे पल फिसलकर सीधे 'लोअर डेप्थ' को नापने लगेंगे, कहना मुश्किल है। इसीलिए अपने प्रति निर्मम होने, खुद की चीर-फाड़ करने और अपने को अपनी ही नजरों में खुला छोड़ने की जरूरत है। दूसरे खण्ड की भूमिका में तो उन्होंने मानतेन के शब्दों को यथावत उद्धृत करते हुए स्वयं को अपने सरल, स्वाभीाविक और साधारण रूप में सहज, निष्प्रयास ढंग से प्रस्तुत करने का संकल्प लिया है। भूमिका के अंत में वे पाठकों से सीधे-सीधे कहते हैं—''इस कृति में गोता लगाएँ और बताएँ कि सच के प्रति अटूट संलग्नता और गहरी ईमानदारी के बिना क्या आत्मकथा जैसी रचना सम्भव है?'' इस प्रकार इस आत्मकथा की दो कसौटियाँ तो तय हो ही जाती हैं—दूसरों के प्रति लेखक का पूर्वाग्रहरहित रवैया और अपने आत्म की बेलाग अभिव्यक्ति। तीसरी कसौटी इसकी पठनीयता और भाषा-शैली को लेकर हो सकती है।

आत्मकथा के पहले खण्ड 'कमबख्त निंदर' में हम लेखक के जन्म से लेकर उसके एक लेखक के तौर पर स्थापित हो जाने तक का घटनाक्रम देखते हैं। देशकाल की दृष्टि से यह स्वतंत्रता आंदोलन, हिंदू-मुस्लिम दंगों और देश-विभाजन के साथ आई स्वतंत्रता और उसके बाद सन 1975 में लगाए गए आपातकाल का दौर था। अविभाजित पंजाब के लाहौर शहर में जिस दिन लेखक का जन्म हुआ उस दिन कर्फ्यू लगा हुआ था। इस खण्ड की शुरुआत अपने जन्म के साथ और अंत आपातकाल के दमन-चक्र के साथ करते हुए लेखक ने इसे दो आपातकालों के बीच लिखी गई जीवन-कथा कहा है। आत्मकथा अपनी शुरुआत से ही पाठक को गिरफ्त में ले लेती है और अंत तक यह गिरफ्त बनी रहती है। इसका श्रेय लेखक के कथा कहने के अंदाज को दिया जाना चाहिए जिसके तहत वह गर्भस्थ शिशु के तौर पर माहौल के तनाव को महसूस करता दिखाई देता है। इस अध्याय में उसने एक फैंटेसी का सृजन किया है जिसमें वह गर्भ में ही अपने माता-पिता की बातें सुन रहा है, कर्फ्यू के कारण प्रसव के लिए दाई का प्रबंध न हो पाने पर दाई को लाने के लिए खतरा उठाकर घर से निकले पिता की मानसिकता को समझ पा रहा है और माँ की पीड़ा को भी अनुभव कर रहा है। इस अध्याय में ही लेखक ने अपने जीवन और मानसिकता के निर्माण के तमाम बिंदु सूत्रबद्ध कर दिए हैं। कर्फ्यू, अंधेरा और दहशत भरी जन्म घड़ी, बेबसी से उपजा पिता का क्रोध और उन दिनों फैली मारकाट लेखक के अवचेतन का अमिट भाग बन गए हैं। शायद इसी के कारण बचपन में वह नींद में चलने की बीमारी का शिकार हो गया था। लेखक के व्यक्तित्व की हठधर्मिता के बीच मुंडन संस्कार के समय चोटी न रखवाने को लेकर पिता के क्रोध की भी परवाह न करने के प्रसंग में देखे जा सकते हैं जो आगे चलकर नौकरी और लेखन के संदर्भ में फलते-फूलते दिखाई देती हैं। इसी अध्याय में लेखक ने अपने प्रतिरूप निंदर की परिकल्पना की है जिसे हम उसके सुपर ईगो के तौर पर देख सकते हैं। वास्तव में 'निंदर तू कहाँ है' शीर्षक से लिखा गया यह अध्याय आत्मकथा के प्रारम्भ में ही उस सौंदर्यबोध से साक्षात्कार

करवाता है जिसकी अपेक्षा सृजनात्मक लेखक से की जाती है। यह अपने आप में एक कहानी की तरह रोचक और कलात्मक है।

नरेन्द्रमोहन ने ईमान्दारी की प्रतिज्ञा को आत्मकथा के दोनों खण्डों में निष्ठापूर्वक निभाया है। एक पंजाबी ब्राह्मण परिवार, जो आर्थिक तौर पर अभावों में ही घिरा रहता है, में जन्मा-पला बच्चा लम्बी बीमारी के कारण पाँचवीं कक्षा में ही पढ़ाई छूट जाने के बावजूद पाँच साल बाद सीधे मैट्रिक की परीक्षा पास करता है और उसके बाद चाहे जैसे भी पढ़ना पड़ा हो, उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा। पहले खण्ड (कमबख्त निंदर) में किशोर होता लेखक अपने परिवार से गहरे जुड़ा हुआ है फिर भी स्कूल छूट जाने के कारण अकेलेपन और आवरगी के दौर से गुजरता है जिसमें उसे पुस्तकें साथ और सहारा देती हैं। वह अपने बचपन की उन गलतियों को भी खुलकर बताता है जिसके बारे में प्राय: लोग बात नहीं करते। पड़ोसी के घर से पैसे चुरा लेना और घर में कोयला लाकर देने के लिए मिले पैसों में से कुछ अपने पास रखकर छोटे भाई के साथ 'जय हनुमान' फिल्म देखने जाना ऐसे ही प्रसंग हैं। उस दौर में किशोर उम्र के लडके-लड़कियाँ जिस प्रकार का रोमांस किया करते थे उसकी एक झलक 'तुम मुझे भूल भी जाओ' में रोचक बन पड़ी है। लाहौर में उनके पड़ोस में रहने वाली निंदिता उर्फ नन्हो विभाजन के बाद फिर उसे अम्बाला में मिलती है और एक अव्यक्त प्रेम उनके बीच उपजता है जिसे किसी मंजिल तक पहुँचाने का कोई प्रयास दोनों ही नहीं करते। आगे चलकर यह संबंध आजीवन बना रहता है लेकिन कुछ खुलता और कुछ छिपता सा।

लेखक अपने परिवार से बड़ी मजबूती से जुड़ा हुआ है। बचपन में वह भाईयों और माँ के ज्यादा निकट रहा। पिता के क्रोध से वह आतंकित रहा लेकिन अपनी ईमानदारी की प्रतिज्ञा के तहत उनका चित्रण करते समय वह उनकी परिस्थितियों को उनके व्यवहार से जोड़कर देखता है और उन्हें लगभग निर्दोष सिद्ध करता है—इस एक अपवाद के साथ-कॉलेज में पढ़ने की उम्र में जब वह पिता को माँ पर हाथ उठाते देखता है तो उनका हाथ रोक देता है। इस घटना को उसने इस तरह बयान किया है—''एक बार जब मैं बी. ए. में था तो उन्हें माँ पर हाथ उठाते देख मैंने तत्काल उनकी हाथ झटक दिया था। बाऊजी सकते में आ गए। वे सोच नहीं सकते थे कि कोई उनका हाथ रोक सकता है। गुस्से में मैंने इतना भर कहा, 'आज के बाद कभी नहीं,' और उस दिन के बाद बाऊजी ने माँ के प्रति कभी वैसा व्यवहार नहीं किया। पिता का खौफ पूरे घर पर जारी था लेकिन उससे लेखक के अति संवेदनशील मन को इस कदर घुटन महसूस हुई कि एक दिन अचानक वह गूँगा हो गया। पिता के खौफ की घुटन गूँगेपन की घुटन में बदल गई। उसके बाद पिता ने डॉक्टर की सलाह से उसका इतना ख्याल रखा कि लोक के शब्दों में—''बाऊजी की और मेरी हँसी में एक नया रिश्ता बनने लगा। गूँगेपन से उबरने के बाद भी हकलाहट तो बना ही रही जिसे उसने बोलने का एक विशेष लहजा अपनाकर पीछे धकेल दिया। इसके बावजूद लेखक अपने पिता के प्रति कभी कटु नहीं होता और उनके वात्सल्य को तमाम अभावों के बीच भी महसूस कर पाता है। वह याद रखता है कि पिता ने ही उसे स्कूल की पाँचवीं कक्षा पास किए बिना ही खुद पढ़ा-पढ़ाकर मैट्रिक करवा दिया था और उसी की बुनियाद पर उसने इतनी शिक्षा प्राप्त की कि विश्वविद्यालय में वरिष्ठतम स्तर पर अध्यापन कर पाया। उसे पिता का ज्ञान, देशप्रेम और अपने समय के साथ उनका जुड़ाव सदा ही प्रभावित करता रहा है।

उसका गृहस्थ जीवन मध्यवर्गीय परिवारों में आने वाली सामान्य समस्याओं सहित खुशहाल रहा है। प्रेम करने वाली और सभी जिम्मेदारियों को हँसकर निभा ले जाने वाली पत्नी और तीन संतानों के साथ एक भरा-पूरा जीवन जीने के बाद वह अपनी अंतिम साँस तक लिखते रहना चाहता है। 'कमबख्त निंदर' में हम उसके दाम्पत्य जीवन के प्रेम, रोमांस और आपसी समझदारी के अनेक छिटपुट चित्र छितरे हुए पाते हैं लेकिन दूसरे खण्ड 'क्या हाल सुनावाँ' लेखक की अपनी बीमारी और पत्नी की अस्वस्थता का हाल बताता है जिसमें शरीरिक पीड़ा के बावजूद पति-पत्नी एक दूसरे का हौसला बनते दिखाई देते हैं। इस खण्ड में ही अनेक रोगों से ग्रस्त, पीड़ा झेलती पत्नी की मृत्यु का प्रसंग भी आता है। 'खुशबू का वजूद और चुभते प्रश्न' शीर्षक के तहत लिखा गया यह अध्याय गद्य में लिखित शोकगीत ही प्रतीत होता है जो जीवनसाथी के न रहने की वेदना को सहज ही पाठक तक सम्प्रेषित कर देता है। अपने अकेलेपन को वह इन शब्दों में व्यक्त करता है—''अनुराधा के चले जाने पर मुझे महसूस हुआ कि मेरे विरोधाभासों को, मेरे झूठ और सच को, मेरे छिपे-अनछिपे तनावों को प्यार से सहेजने वाली, मेरे भीतर झाँककर मुझे शक्ति देने वाली चली गई। उन क्षणों में मैंने खुद को निपट अकेला महसूस किया और बाद में अकेलेपन की ऐसी बर्फीली परत मेरे भीतर बनती गई जो आज तक पिघल नहीं सकी है।

ज़िंदग़ी के सफर में मिला परिवार, मित्र, पत्नी, संतान, सहकर्मी सभी की चर्चा के भीतर से एक मध्यवर्गीय परिवेश उभरता है। माता-पिता, भाइयों, पत्नी एवं संतान, के चित्रण में विश्वसनीयता और तटस्थता का एक समुचित सहभाव दिखाई देता है। यूँ तो लेखक को चुनना ही होता है कि वह किन प्रसंगों को और किस संदर्भ में प्रस्तुत करेगा लेकिन परिवार के चित्रण में कहीं ऐसा महसूस नहीं होता कि अतिरिक्त राग अथवा द्वेष से काम लिया गया हो। नौकरी लगने से पहले माता-पिता और भाइयों के साथ बीते जीवन का चित्रण बहुत रोचक होने के साथ-साथ आत्मीयता का ऐसा स्पर्श लिए हुए है जो पाठक को भी छूता है। दूसरी ओर परिवार से इतर लोगों के साथ अपने संबंधों का चित्रण करते हुए और प्रसंगानुसान उनकी स्मृतियों से गुजरते हुए वह तटस्थता का परिचय तो देता है और इसके माध्यम से लेखन-जगत तथा विश्वविद्यालय के विभागीय वातावरण में व्याप्त आपाधापी और ईर्ष्या-द्वेष के सटीक चित्र भी प्रस्तुत करता है लेकिन कहीं-कहीं ऐसा अवश्य प्रतीत होता है कि बात करते-करते कहीं कुछ अनकहा और अधूरा छोड़ दिया गया है।

लेखन जगत से विष्णु प्रभाकर, इंद्रनाथ मदान, देवेंद्र सत्यार्थी, गिरिजाकुमार माथुर, रमेश कुंतलमेघ, राजी सेठ, लक्ष्मी कण्णन, कुमार विकल, स्वदेश दीपक, यश गुलाटी, महीप सिंह, राजेंद्र यादव, रवींद्र कालिया, बलदेव वंशी, सुरेश सेठ, जगदीश चतुर्वेदी, विनय, रमेश बक्षी, सौमित्रमोहन-मणिका मोहिनी, डॉ. सादिक, डॉ. गुरचरण सिंह, गगन गिल, बदीउज्जमाँ आदि का उल्लेख हुआ है। प्रसंगानुसार भारत के और पाकिस्तान के हिंदीतर भाषाओं के लेखकों का भी जिक्र आता रहा है। इतने लोगों से लेखकीय सभानधर्मिता के कारण मेलजोल और दोस्ती होने के बावजूद इंद्रनाथ मदान, विष्णु प्रभाकर, देवेंद्र इस्सर और गिरिजाकुमार माथुर के अतिरिक्त किसी का भी कोई प्रभाव छोड़ने वाला चित्रण नहीं हो पाया है। लेखक ने कुमार विकल, मणिका मोहिनी-सौमित्र मोहन, रमेश बक्षी और स्वदेश दीपक के जीवन के बिखराव के कुछ सूत्र इधर-उधर दिए हैं लेकिन वह उनकी त्रासदियों के बारे में पाठकों को कोई सूचना नहीं देता। शायद वह मानकर चलता है कि पाठक इस सबसे परिचित ही होंगे लेकिन मेरे समेत अधिकांश पाठक इन साहित्यकारों के निजी जीवन के बारे में न के बराबर ही जानते होंगे। इसीलिए इन सबके विषय में आत्मकथा में आए उल्लेख अधूरे प्रतीत होते हैं—उनके दर्द को संक्षेप में ही सही, एक परिप्रेक्ष्य देने की जरूरत महसूस होती है।

लुधियाना, जालंधर, रोपड़ और हिसार में लगभग सात वर्ष तक अध्यापन करने के बाद सन 1966 के अंतिम दिन दिल्ली विश्वविद्यालय के खालसा कॉलेज में नियुक्ति के बाद सन 2000 में दिल्ली विश्वविद्यालय से ही सेवानिवृत्त हुए लेखक ने अपने प्राध्यापकीय जीवन का लम्बा अरसा दिल्ली में बिताया है। लेखक ने कुछ प्रसंगों में खालसा कॉलोज के सहकर्मियों जैसे हरमिंद सिंह, हरिभजन सिंह, महीप सिंह, प्रमिला, कृपाशंकर सिंह, जनार्दन द्विवेदी, वीणा अग्रवाल आदि का चलता-फिरता सा उल्लेख किया है। इसमें महीप सिंह को कुछ अधिक स्थान मिला है लेकिन सहकर्मी के तौर पर नहीं, एक ऐसे मित्र के तौर पर जिसके साथ मित्रता निभाने को लेखक ने पत्रिका (संचेतना) के सम्पादन से अधिक तरजीह दी। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के साथ पहली भेंट का दो पंक्तियों का लेकिन आचार्य द्विवेदी के चरित्र तथा लेखक की अभिव्यक्ति-सक्षमता को सामने लाता चित्र लेखक ने इस प्रकार अंकित किया है—''एक बार जब उन (डॉ. मेघ) के घर गया तो संयोग से आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी वहाँ थे। डॉ. मेघ ने मुझे मिलवाया। आचार्य द्विवेदी ने खिलखिलाती नजर से मुझे देखा। डॉ. द्विवेदी की वह छवि आज भी मेरे मन में अटकी हुई है।''

सन 1988 में खालसा कॉलेज से विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में रीडर के तौर पर आने पर जहाँ उसे एक 'रुतबा सा महसूस' होता है वहीं वह विभाग की भीतरी उठापटक को निकट से देख पाता है। साहित्य पढ़ाने वाले विद्वानों को 'कुलबुलाते कीड़ों की धमाचौकड़ी जैसी राजनीति' में लिप्त देखकर उसका 'माथा फोड़ लेने को मन करता।' डॉ. नगेंद्र के सेवानिवृत्त हो जाने के बाद विभाग पर से उनका दबदबा हट जाने के कारण एक टुच्ची किस्म की आपाधापी ने सिर उठा लिया था जिसमें लेखक ने ''अच्छे-खासे, जन-चेतना से लैस, परिमल गोष्ठियों में नहाए-धोए अध्यापकों को भी...गिरी हुई और टुच्ची हरकतें करते, चरित्र-हनन का खेल खेलते, कीचड़ में लोट-पोट होते देखा''। यहाँ वह अकादमिक क्षेत्र और कला क्षेत्र में परस्पर सहयोग के स्थान पर एक दूसरे का विरोध देखता है जो अगली पीढ़ी की प्रतिभा को प्रोत्साहन देने की बजाय उसे कुंद कर देने का कार्य कर रहा है। विभाग को 'लोअर डेप्थ' में ले जाने वाली उठापटक में लेखक घुटता रहा हो या दुखी होता रहा हो लेकिन वह इसे सुधारने के लिए कुछ भी नहीं कर पाया। उसकी ईमानदारी ही है कि वह खुलकर कहता है—''कई बार जी में आया जान बचाकर यहाँ से भागूँ? मगर कहाँ, यह समझ में न आता। मैं

भी कहाँ कुछ कर पाया? कसमसाता रहा मगर पड़ा रहा वहाँ। कुछ नया करने या उसे बदलने का साहस कहाँ दिखा पाया?''

यह एक ऐसे व्यक्ति की आत्मकथा है जिसने साहित्य को अपना कार्यक्षेत्र बनाया और उसी को मन, वचन और कर्म से जिया। बचपन में लम्बी बीमारी के कारण स्कूल छूट जाना एक ऐसा हादसा था जिसने उसे अकेलेपन को भरने के लिए कुछ भी लिखने और पुस्तकें पढ़ने का रास्ता उपलब्ध करवाया और अपने मन के भीतर उतरकर भावनाओं का अवगाहन करने का भरपूर अवकाश दिया। यही बीज आगे चलकर उसके द्वारा रचित विपुल साहित्य के रूप में फलीभूत हुआ। अपनी इस आत्मकथा में वह अपने जीवन में घटित प्रसंगों, जीवन यात्रा में मिलने वाले साथियों की बातें तो करता है लेकिन सब कुछ उसके अपने रचनाकार व्यक्तित्व की आँखों से गुजरते हुए और अधिकतर उसके रचना मानस को प्रभावित करने के संदर्भ में प्रस्तुत हुआ है। ज़िंदगी जीने और एक पड़ाव पर आकर एक परिपक्व मन के साथ उसे पुनः जीते हुए स्वयं को और अपने समय को दोनों में यही अंतर है। इसी अंतर के कारण लेखक स्वयं को जन्म लेते भी देख लेता है और अपने स्व के दो भाग कर अपनी रचना-प्रक्रिया की झलक भी प्रस्तुत कर देता है। दरअसल यह एक लेखक की खुद को तलाशने की कहानी है जो जीवन की भागदौड़ से निवृत्त होकर एक बार फिर स्वयं को जीवन जीते और लेखक बनते देख रहा है। उसने ज़िंदगी के पहले बारह वर्ष-ठीक जन्मघड़ी से लेकर देश के विभाजन तक-परिवेश में तनाव और मारकाट को प्रत्यक्ष देखा है जिसके अक्स उसके मन पर इतने गहरे खुद गए हैं कि कहीं भी हिंसा और तनाव की खबर उसके भीतर बचपन में देखे कत्ल और अग्निकाण्ड के उन्हीं दृश्यों का फिर से उभार देती है। वह स्वतंत्रता के बाद देश में रह-रहकर होने वाले साम्प्रदायिक दंगो में उन दृश्यों की पुनरावृत्ति होते पाता है और यह तनाव उससे एक के बाद एक तीन लम्बी कविताएँ 'एक अग्निकाण्ड जगहें बदलता', 'एक अदद सपने के लिए' और 'खरगोश-चित्र और नीला घोड़ा' लिखवा लेता है। विभाजन-पूर्व पंजाब का शहर लाहौर-उसकी जन्मभूमि-उससे छूट गया था, वैसे ही जैसे उधर से इधर आने वाले और इधर से उधर जाने वाले एक करोड़ से अधिक लोगों को अपना घर छोड़ना पड़ा था। वहाँ के दोस्त, गलियाँ, मास्टर, नदी-उसे लगातार हॉण्ट करते रहते हैं। वह उन दिनों की रक्तरंजित स्मृतियों से छुटकारा भी पाना चाहता है और उस शहर में लौटना भी चाहता है। लेखक के अपने शब्दों में-''लाहौर कभी हवा में खुशबू की तरह, कभी लम्बे बालों वाले जिन्न की तरह मेरा पीछा करता रहा। लाहौर में होने वाली वर्ल्ड पंजाबी कांफ्रेंस (29 जनवरी 2004) में भाग लेने का मौका मिलने पर वह सत्तावन साल बाद फिर से अपने शहर जाने का रोमांच जीने के लिए सेमिनार के कार्यक्रमों के अलावा उन गलियों में भी जाता है जहाँ उसने बचपन बिताया था। गलियों और मकानों की शक्ल बदल जाने के कारण वह अपना घर नहीं ढूँढ पाता लेकिन वहीं कहीं उसे उसे एक ऐसा परिवार मिल जाता है जो विभाजन के दौरान देश के इस हिस्से (झाँसी, उत्तर प्रदेश) से वहाँ गया था। विभाजन की विडम्बना और विस्थापन का दर्द और तीखा हो उठता है। उसे वहाँ वह छलछलाती हुई रावी नदी भी नहीं मिलती जिसे वह अपनी आँखों में बसाए था। पाकिस्तानी पंजाबी लेखक इम्तियाज बताता है-''रावी अब गँदले-सड़े पानी का नाला हो गया है'' और लेखक को लगता है-''मेरे अंदर एक नदी मर रही है।

आत्मकथा के दोनों खण्डों से गुजरते हुए लेखक के रचना मानस की पहचान देने वाले कुछ बिंदु हाथ लगते हैं। पहला तो देश-विभाजन के प्रभाव के तौर पर ही देखा जा सकताहै। विभाजन के साथ आई हिंसा और विस्थापन के दर्द और खौफ ने नरेन्द्रमोहन को विभाजन का गहन अध्ययन करने पर मजबूर करने के साथ-साथ उनसे विभाजन पर लिखी गई कहानियों की पुस्तकें सम्पादित करवा लीं, नाटक ('नो मैंस लैण्ड' और 'मिस्टर जिन्ना') और अनेक कविताएं लिखवा लीं और दक्षिण एशिया उपमहाद्वीप में विभाजन की विभीषिका पर सबसे इंटेंस कहानियाँ लिखने वाले सआदत हसन मण्टो के इतने करीब ले आया कि उसके नाटकों और कहानियों के सम्पादन के अतिरिक्त 'मण्टो जिंदा है' शीर्षक के तहत उसकी जीवनी लिखवा डाली। आज नरेन्द्रमोहन देश-विभाजन पर लिखने वाले शीर्ष साहित्यकारों में से एक हैं।

उनके रचना मानस का एक सिरा पिता के क्रोध के आतंक में गुजरे बचपन से भी जुड़ता है। जहाँ विभाजन की पीड़ा ने उन्हें इतिहास के गहन अध्ययन और साहित्य सृजन की ओर प्रेरित किया वहीं पिता के अनियंत्रित क्रोध के परिवार और लेखक के मन पर छाए आतंक और सहम की सचेत प्रतिक्रिया ने उन्हें नसों को तिड़का देने वाले तनाव में भी क्रोधित और आक्रामक नहीं होने दिया। वे 'कमबख्त निंदर' में एक स्थान पर कहते हैं-''आज सोचता हूँ तो लगता है कि उत्तेजना और आक्रोश को जड़ों से काटने की मेरी प्रवृत्ति और विचार पर मेरा अधिक बल देना मूल रूप में पिता के प्रति मेरी प्रतिक्रिया का साहित्यक रूप

ही है। कविता में हौलनाक स्थितियों से रूबरू होने और आतंक के कई मंजर उकेरने के बावजूद वे पाठक को स्थितियों के बीच ले जाकर उस तनाव के सामने तो खड़ा कर देते हैं लेकिन कोई प्रत्यक्ष विद्रोह या बड़बोला दावा न तो वे स्वयं करते हैं और न ही उनकी रचनाओं के पात्र। बड़बोली भंगिमा अपनाए बिना दृढ़ प्रतिरोध उनके लगभग सभी नाटकों में देखा जा सकता है। लम्बी कविता और विचार कविता की रचना और आलोचना को इस कोण से देखना नरेन्द्रमोहन को बेहतर जानना हो सकता है। यूँ भी उनके यहाँ लगभग हर झकझोर देने वाली स्थिति कविता में ढली देखी जा सकती है। इसका प्रमाण आत्मकथा के दोनों खण्ड़ों में तकरीबन हर प्रसंग के साथ जुड़ी काव्य-पंक्तियाँ देती हैं।

हर संवेदनशील व्यक्ति अपने आसपास फैली विसंगतियों से क्षुब्ध होता है और उन पर अपने ढंग से प्रतिक्रिया भी करता है। लेखक के पास अपनी बात कहने या प्रतिक्रिया करने का एक ही तरीका है—उसे अपनी रचना में ढालना। लेखक होने के नाते नरेन्द्रमोहन अवचेतन का हिस्सा बन चुकी विभाजन के साथ आई विस्थापन और कत्लोगारत की स्मृतियों को अपनी कविताओं और नाटकों में ढालते हैं, नए-नए बहानों से नए-नए रूपों में बार-बार उभरती हिंसा उन्हें सामान्य व्यक्ति से अधिक पीड़ा देती है क्योंकि वह उनके अवचेतन में बसे विभाजन की स्मृतियों को फिर-फिर जागृत कर देती है। इसीलिए सन 1975 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी द्वारा लगाई गई इमर्जेंसी के दौरान अकाल तख्त का ध्वस्त होना, इसके परिणामस्वरूप सिख सुरक्षाकर्मियों द्वारा श्रीमती इंदिरा गाँधी की हत्या और उसके बाद देश भर में हुए सिखविरोधी दंगे, बाबरी मस्जिद को तोड़ा जाना और उसकी प्रतिक्रिया में देश के शहरों में हिंदू-मुस्लिम दंगे, गोधरा कांड और उसके बाद होने वाले खौफनाक दंगे-सभी लेखक को विक्षुब्ध करते हैं। ऐसी स्थिति में वह यहाँ तक सोचता है—''माफिया गिरोहों के साथ मिलकर, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूपों में उनके पीछे रहकर, इस या उस सरकार ने घिनौनी वारदातों और बर्बर दंगो को जिस तरह उकसाया, वह एक खतरनाक संकेत है। ऐसे में पोथी पढ़ते रहने और लिखते रहने से क्या होगा? किसी का लहू गिर रहा हो और मैं कागज काले करता रहूँ, जिंदा रहने का यह क्या ढब है?'' लेकिन वह यह भी जनता है कि लेखक के लिए ''एकमात्र रास्ता शब्द का ही है। शब्द और साहित्य की ताकत के प्रति भरोसा पैदा किए बिना लेखक अपनी भूमिका का निर्वाह नहीं कर सकता। यह समझ किसी सार्थक कृति की रचना की ओर प्रवृत्त कर सकती है लेकिन एक व्यक्ति के तौर पर, समाज की एक इकाई और देश के एक नागरिक के तौर पर उसकी छटपटाहट निरंतर जारी रहती है—''इन हादसों को मैं टाल क्यों नहीं पाता? मेरे न चाहते हुए भी वे हो ही जाते हैं और मैं झुलसा सा महसूस करता हूँ।

दोनों खण्डों में व्यक्ति, परिवार, देश में घटित घटनाएँ, हिंदी लेखकजन, दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग का माहौल, लेखन-प्रक्रिया और आत्मविश्लेषण मौजूद है लेकिन 'कमबख्त निंदर' एक नवजात शिशु के मन पर अंकित होती अच्छी-बुरी घटनाओं, उसके शारीरिक और मानसिक विकास तथा एक खास किस्म के व्यक्ति के रूप में ढलकर जीवन में स्थिर हो जाने का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। इस खण्ड में घटनाएँ और प्रसंग ज्यादातर परिवार को केंद्र में रखते हैं। बचपन और किशोर अवस्था की स्मृतियाँ बहुत सघन होती हैं और इसीलिए उनके चित्रण में भी सघनता और तीव्रता देखी जा सकती है। नरेन्द्रमोहन ने ज़िंदगी के उस दौर में समाज और देश में जड़ों को हिला देने वाले परिवर्तनों को देखा ही नहीं बल्कि झेला है और आर्थिक अभावों को भी जिया है। देश-विभाजन के साथ आने वाले विस्थापन के साथ-साथ पिता को आर्थिक संकट के कारण कई बार विस्थापित होते देखा है। आम तौर पर दोस्तों के साथ जिए जाने वाले कैशोर्य को अपनी लम्बी और अबूझ बीमारी के कारण अकेलेपन में भटकते हुए बिताया है। इसी सब के बीच पढ़ाई, नौकरी, थोड़ा रोमांस और गृहस्थी तथा लेखन जगत में प्रवेश एवं स्वीकृति इस खण्ड की तेजी से चलती हुई घटनाओं के सिलसिले में पिरोई हुई हैं जो पाठक को बाँधती हैं। लेखक का चिंतन और सृजन की प्रक्रिया भी इसी में गुंथी हुई चलती रहती हैं। पुस्तक की चमत्कारी शक्ति को उसने किशोरावस्था में ही तब अनुभव कर लिया था जब स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानंद की पुस्तकें पढ़ीं। उन पुस्तकों के प्रभाव का चित्रण वह इस प्रकार करता है—''एक-एक शब्द से शक्ति महसूस कर रहा हूँ। मेरे भीतर से मेरा प्रतिरूप मुझे जैसे अपनी बाँहों में भर लेता है और मैं पहाड़ पर पहला कदम रखता हूँ और धीरे-धीरे मजबूत कदमों से चोटी पर पहुँच जाता हूँ। वहाँ से देखता हूँ अपना आपा पहले से कहीं ज्यादा निखरा हुआ, खिला हुआ, त्वचा से चेतना की गहराइयों तक और आत्म से आकाश तक। गजब का अनुभव है यह—पुस्तक को पढ़ने का अनुभव पुस्तक से परे—कभी भीतरी कंदराओं में धंसता हूँ, वहाँ तोड़-फोड़ मचाता, कभी बाहरी चुनौतियों का सामना करने का हौसला मचल उठता है। लेखक ने पूरी आत्मकथा में जगह-जगह रूककर आत्मविश्लेषण

किया है जो उसके भीतर के भय, दब्बूपन, आत्मधिक्कार को ईमानदारी से सामने लाता है और साहित्य-रचना के माध्यम से इस सबसे जूझने की प्रक्रिया को भी प्रस्तुत करता है। वह कहता है—''लाहौर से बिछुड़ने की पीड़ा का एक लौह-गोला मेरे भीतर की अटका हुआ है। वह गोला मुझे चैन नहीं लेने देता। उसी से बँधी हुई चुप्पी की एक सिल है जिसे खिसकाता रहता हूँ यहाँ से वहाँ, मगर जिसे उखाड़कर फेंक नहीं सकता। वह मेरे वजूद का हिस्सा बन चुकी है। उसको फेंकने का मतलब है खुद को फेंकना। हाँ, उसे रेतता रहता हूँ, शब्दों द्वारा गुंजाता रहता हूँ। चुप्पी की उस सिल में से शब्द आज भी तैरते हुए आते हैं। मेरे शब्दों में मौन की अंतर्ध्वनियाँ इन दिनों भी चुपके से घुलने लगती हैं और मैं उनके अंत:संबंधों को समझने की कोशिश करता हुआ लिखता रहता हूँ।

दूसरे खण्ड (क्या हाल सुनावाँ) में यह सिलसिला गहराता दिखाई देता है। बचपन बीत चुका है और आजीविका का प्रश्न भी हल हो चुका है। अस्तित्व के लिए किया जाने वाला संघर्ष अब लेखन की खातिर होने वाले आत्मसंघर्ष में बदल चुका है। इस खण्ड में भी माता-पिता और भाई मौजूद हैं लेकिन वे एक दूरी पर खड़े हैं। प्राथमिकता पर लेखक का अपना परिवार भी नहीं बल्कि देशकाल में होने वाले हादसे और उनसे उपजने वाले प्रश्नों से होने वाला उद्वेलन है जो रचनाओं में ढलता जाता है। लेखक अपने परिवेश में होने वाले हादसों के कारण अपने भीतर उठते प्रश्नों से टकराता है और उनके उत्तर पाने के लिए कभी वर्तमान से तो कभी इतिहास से और कभी अतीत और वर्तमान से एक साथ रूबरू होता है। उसके लगभग सभी नाटक इसी प्रक्रिया का परिणाम हैं। 'कहै कबीर सुनो भई साधो' और 'मिस्टर जिन्ना' को कट्टरपंथियों और सरकार का कोपभाजन भी बनना पड़ा। यह शब्द में निहित शक्ति का ही प्रमाण है। इसीलिए नरेन्द्रमोहन अपने लेखक होने से संतुष्ट हैं। लेखक के रुतबे को वे सबसे बड़ा मानते हैं—''जो शब्द की अपार शक्ति के साथ खिलौने की तरह खेलता हो, उसे जोड़ता-झलकाता हो, उसके लिए सत्ता की शक्ति (वह कितनी भी निरंकुश क्यों न हो) के मायने ही क्या हैं? सत्ता के मुकाबले में शब्द की शक्ति को खड़ा करने वाले लेखक के रुतबे को मैं दुनिया के बड़े से बड़े रुतबे से बड़ा मानता हूँ। लम्बी कविता, विचार कविता और समकालीन आलोचना सबंधी चर्चा वे 'कमबख्त निंदर' में करते हैं लेकिन दूसरा खण्ड मुझे सचमुच एक लेखक की आत्मकथा प्रतीत हुआ। लेखक का अपना निजी जीवन, देश-दुनिया के हादसे और उसके भीतर उपजती तथा रूप ग्रहण करती कृतियाँ इस खण्ड में एक दूसरे में संश्लिष्ट रूप से जुड़े हुए हैं।

आत्मकथा के दोनों खण्डों के अंतिम अध्याय विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पहले खण्ड के अंतिम अध्याय को लेखक ने शीर्षक दिया है—'कमबख्त निंदर' और दूसरे खण्ड का अंतिम अध्याय है 'उल्का जैसा हो मेरा जाना'। निंदर दोनों खण्डों में बार-बार आता है। दरअसल वह कहीं गया ही नहीं है क्योंकि वही तो लेखक के व्यक्तित्व का वास्तविक रूप है जो उसे जन्म के साथ मिला था और वक्त के साथ-साथ उसका वह मासूम अंश किसी कदर दबता गया और एक दुनियादार शख्स में रूपांतरित हो गया। हम सभी दुनियादार हो जाते हैं और अपने उस मासूम अंश को चेतना के किसी तहखाने में रखकर भूल जाते हैं। लेखक का वह अंश बार-बार उसके समक्ष आ खड़ा होता है—उसे अगले और बेहतर सृजन की चुनौती देता हुआ, उसके पाखण्ड को उघाड़ता हुआ। नरेन्द्रमोहन वही होते जो कोई भी एक सामान्य पारिवारिक व्यक्ति होता है यदि उनके भीतर बैठा निंदर अभिव्यक्ति के लिए जिद न ठाने रहता। लेखक कहता है—''उसकी जिद यानी धुन के सामने मेरी तरकीबें छोटी और हलकी पड़ जाती हैं। दुनिया भर में मैं अपना झण्डा चाहे कितना ऊँचा फहरा लूँ, मैं देखता हूँ सच की डोर वही थामे है। लेखक अपने इस प्रतिरूप से प्यार भी करता है और उससे घबराता भी है क्योंकि वह उसे जोखिम के कामों की ओर धकेलता रहता है। लेखक को खीझ होती है—''निंदर यह क्यों नहीं समझता कि वैसा साहस और जोखिम उठाने का माद्दा मुझमें नहीं है जैसा वह मुझमें देखना चाहता है। ऐसे में वह कमबख्त निंदर क्यों मुझे पहाड़ की चोटी की नोक पर ले जाने की जिद करता है जबकि मुझे ऊँचाई से डर लगता है। मनोविज्ञान से शब्द उधार लेकर कहा जा सकता है कि निंदर नरेन्द्रमोहन की सुपर ईगो का मूर्त रूप है भले ही यह समानता अधिक दूर तक नहीं चल पाएगी। नरेन्द्रमोहन यथार्थ के साथ जीता हुआ उसकी सीमाओं में घिरा हुआ व्यक्ति है और निंदर स्वयं उसकी दृष्टि में अपना आदर्श रूप है। अपने लेखन में वह उसी को झलकते हुए पाता है—''निंदर आखिरी लम्हों में मेरे साथ होगा कि नहीं, मुझे नहीं मालूम। हाँ, मेरे बाद वह कमबख्त रहेगा तो मैं भी उसके साथ एक अंश तक रहूँगा ही, मेरी रचनाएँ भी रहेंगी क्योंकि एक वही तो है उनमें साँस लेता हुआ।

○○○

पश्चिमी इतिहासकारों के दृष्टि-दोष का परिणाम

अखिलेश आर्येन्दु

पुराणों के मत भारतीय समाज पर अपना प्रभाव डाल रहे थे। जैन व बौद्धों के मतों का भी प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ रहा था। माना यह भी जाता है कि जैनियों के द्वारा रचित पुराणों की रचना हो चुकी थी। इसी तरह बुद्ध के धम्मपद और उनके उपदेशों को उनके शिष्यों द्वारा संग्रहित किए गए ग्रंथ- त्रिपिटक, विनय पटक, सुत्तपिटक और अभिधम्मपिटक जो पालि भाषा में थे का प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ रहा था।

सम्पर्क: सम्पर्क-ए-11, त्यागी विहार, नांगलोई, दिल्ली-110041
8178710334ध्9868235056

आर्य और द्रविड़ को लेकर ईसाई पादरियों द्वारा जाति, भाषा, सभ्यता, संस्कृति, क्षेत्र और धर्म के आधार पर काल्पनिक विभेद को विश्व इतिहास में सत्य साबित करने के लिए पिछले दो सौ वर्षो के अन्तराल में एक षडयंत्र के तहत अभियान चलाया गया। भारत में ब्रिटिश सत्ता जब तक कायम रही तब तक भारतीय समाज को कई स्तरों पर ईसाई पादरियों ने फूट डालो और राज्य करो नीति के तहत विभाजित करने के कुत्सित प्रयास किए। जिसका साथ ब्रिटिश सत्ता और विदेशी इतिहासकारों ने दिया जिसमें काफी हद तक वे सफल भी रहे। उदाहरण के लिए द्रविड़ शब्द की कल्पना 1856 में काल्डवेल नामक ईसाई पादरी ने ''कम्पेरेटिव फिलोलॉजी ऑफ दा ट्रॉबिडन्स ओर साऊथ इंडियन लैंग्वेजिज'' नामक पुस्तक में किया। इस पुस्तक से पहली बार द्रविड़ शब्द गढ़कर, इस शरारत का सूत्रपात किया गया। बाद में यह शब्द दक्षिण की भाषा, जाति और वहाँ के लोगों के लिए प्रचलित हो गया, जो बाद में रूढ़ हो गया। जब की एक अन्य विदेशी विद्वान और भाषा शास्त्री जार्ज ग्रीयरसन ने इसे (द्रविड़ शब्द) को संस्कृत शब्द 'द्रमिल' या 'दमिल' का बिगड़ा रूप बताया है और केवल तामिल के लिए प्रयुक्त होना बताया है। पादरियों का षडयंत्र जारी था। षडयंत्र के तहत एक नई जाति 'द्रविड़' भी खड़ी की गई। इतिहास का यह दिलचस्प घटनाक्रम यहीं नहीं रुका बल्कि जब काल्पनिक भाषा और जाति पादरियों द्वारा गढ़ लिये गये तो इसे सिद्ध करने के लिए कुछ विदेशी विद्वानों, इतिहासकारों और भाषा शास्त्रियों को इसकी पुष्टि के लिए खड़ा किया गया, लेकिन कुछ ऐसे भाषाशास्त्री भी थे जो इस षडयंत्र को समझे और इसका गहन विश्लेषण किया। उन विश्लेषणों में इस षड़यंत्र का विरोध ही नहीं किया गया बल्कि इसे मिथ्या भी सिद्ध किया गया। सर जार्ज कैम्पबेल जो कि एक नृवैज्ञानिक थे ने अपने विश्लेषण में कहा, ''नृवंशशास्त्र के आधार पर उत्तर और दक्षिण के समाज में कोई विशेष भेद नहीं है।...द्रविड़ नाम की कोई जाति नहीं है। निस्सन्देह दक्षिण भारत के लोग शारीरिक गठन, रीति-रिवाज और प्रचार-व्यवहार में केवल एक आर्यसमाज है।'' आर्य और द्रविड़, मूलनिवासी और विदेशी आक्रांता जैसी काल्पनिक बातें इतिहास में पढ़ाई

जाती रही हैं और आज भी नई पीढ़ी को पढ़ाया जा रहा है। इसी तरह मार्क्सवादी इतिहासकारों ने अंग्रेजी इतिहास-दृष्टि को अपनी दृष्टि बनाया और उसे प्रमाणिक सिद्ध करने की पुरजोर कोशिशें कीं, जिसमें वे सफल रहे। यही कारण है, आज की नई पीढ़ी अपने इतिहास, संस्कृति, सभ्यता, भाषा और धर्म को लेकर भ्रमित और कुंठित है।

तत्कालीन भारत की स्थिति

अखण्ड भारत में अंग्रेजों के आने के पूर्व आर्यावर्त की धरती पर फ्रांसीसी, डच, मंगोल, तुर्क, अरबी मुसलमान, इरानी, इराकी आदि जैसे अनेक जातियाँ भारत की धरती पर राज्य कर चुकी थीं। अनेक मुसलमान वंश, पारसी वंश और विदेशी तुर्कों के वंश के बादशाह राज्य कर चुके थे। ईसाई और मुसलमानों के उदय के पूर्व आर्यावर्त की धरती पर वैदिक धर्म को मानने वाले आर्यों के अनेक वंश सकल धरा पर राज्य कर चुके थे। कुछ पुराणों की रचना हो चुकी थी और कुछ लिखे जा रहे थे। जैन, बौद्ध के सम्प्रदायों के अतिरिक्त हिन्दुओं के कुछ सम्प्रदायों-शाक्त, वैष्णव, शैव आदि सम्प्रदाय

पुराणों के मत भारतीय समाज पर अपना प्रभाव डाल रहे थे। जैन व बौद्धों के मतों का भी प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ रहा था। माना यह भी जाता है कि जैनियों के द्वारा रचित पुराण ों की रचना हो चुकी थी। इसी तरह बुद्ध के धम्मपद और उनके उपदेशों को उनके शिष्यों द्वारा संग्रहित किए गए ग्रंथ-त्रिपिटक, विनय पटक, सुत्तपिटक और अभिधम्मपिटक जो पालि भाषा में थे का प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ रहा था। जिसका प्रभाव सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, भाषाई और राजनीतिक क्षत्रों में गहराई से पड़ रहा था। कहा जाता है, जैन और बौद्ध ग्रंथों के प्रभाव से हिंदू समाज को बचाने के लिए हिंदू दर्शन के झंडाबरदारों ने पुराणों की रचना की। समाज में प्रचलित वैदिक गुण-कर्म-स्वभाव पर आधारित वर्ण-व्यवस्था धीरे-धीरे जाति-व्यवस्था में परिवर्तित हो रही थी। पौराणिक-सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का प्रभाव भारतीयों पर कई रूपों में पड़ रहा था। वेदों का पठन-पाठन बन्द हो चुका था और पुराणों पर आधारित कर्मकाण्ड जो अंधविश्वास, पाखण्ड, कुरीतियों और अमानवीय प्रथाओं से पूरित थे से हिन्दू समाज दिगभ्रमित और रूढ़िवाद में फंस चुका था। इतिहास में जो पढ़ाया जाता है वह संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में लिखे विविध प्रकार के ग्रंथों में वर्णित इतिहास या कल्पना के आधार पर है। अंग्रेज इतिहासकार और मार्क्सवादी इतिहासकारों ने एक दुराग्रह और नीति के आधार पर जो इतिहास लिखा वह इतिहास के रूप में अंग्रेजी कुनीति का दस्तावेज अधिक है। यही कारण है कि जब हम तथाकथित इतिहास पढ़ते हैं तो लगता है, भारतीय समाज, भारतीय संस्कृति, सभ्यता, धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में अत्यंत पिछड़े हुए थे जिसे अंग्रेजों ने सशक्त बनाने के कार्य किए। इसी क्रम में यह भी पढ़ाया जाता है कि भारत के मूल निवासी द्रविण या शूद्र थे उन्हें आर्यों ने परास्त करके यहाँ के प्रत्येक क्षेत्र में अपना वर्चस्व कायम किया और उनके साथ गुलामों जैसा व्यवहार किया। इसी तरह ईसाई इतिहासकार पादरी जो दुराग्रह और स्वार्थ के वशीभूत थे ने वेदों के सम्बन्ध में जो प्रचारित-प्रसारित किए, वह भी अत्यंत भ्रामक, प्रवंचनापूर्ण और सत्य से इतर है। इसी तरह, भाषा के स्तर पर भी अंग्रेज इतिहासकारों ने दिगभ्रमित किया। अंग्रेज इतिहासकारों ने भारतीय भाषाओं को मुख्यत: दो भाषाओं-आर्य और द्रविण भाषाओं में विभक्त किया। दक्षिण की मुख्य भाषाओं-तेलुगू, कन्नड़, मलयालम और तमिल हैं। सामूहिक रूप से इन्हीं को द्रविण भाषा के अन्तर्गत रखा गया है। राजनीतिक स्वार्थ के वसीभूत होकर इतिहासकारों और लेखकों ने जोर-शोर से प्रचारित-प्रसारित किया कि संस्कृत जो आर्यों की भाषा है से द्रविण भाषा का कोई सम्बन्ध नहीं है। अंग्रेजों ने भारतीयों को 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति के तहत तथाकथित द्रविण भाषाओं को आर्यों की भाषाओं से पूरी तरह भिन्न सिद्ध करने करने के लिए झूठे तर्क और प्रमाण देने के कुत्सित प्रयास किए, जिसे भारतीय मार्क्सवादी इतिहासकारों ने बिना किसी विवेचना या विश्लेषण को जस का तस स्वीकार किया और अंग्रेजी इतिहास को ही प्रमाणिक मान लिया। जब कि भारतीय और विदेशी भाषा शास्त्रियों ने अपने विश्लेषण के बाद यह पाया कि संस्कृत के 75 प्रतिशत शब्द बंगला और तेलुगू में हैं और 90 प्रतिशत शब्द मलयालम में हैं। इसी तरह कन्नड़ में 80 प्रतिशत और तमिल में 50 प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं। जहाँ तक सांस्कृतिक और सामाजिक समानता का प्रश्न है, यह भी सर्वेक्षणों से वर्षों पूर्व हल कर लिया गया।

ध्यान देने की बात यह है कि उत्तर और दक्षिण के अधिकांश त्योहारों, पर्वों, उत्सवों, संस्कारों, कर्मकाण्डों और जीवन शैली में काफी समानता है। इसके अतिरिक्त स्वभाव, विचार, मान्यताओं और धारणाओं में किसी न किसी रूप में समानता

दिखाई पड़ती है–वह चाहे धार्मिक हो या आध्यात्मिक, दार्शनिक हो या भौतिक।

मैंने भाषा, संस्कृति, सभ्यता, धर्म, अध्यात्म और कला पर विवेचनात्मक अध्ययन किया और पाया है कि उत्तर–दक्षिण या पूर्व–पश्चिम भारत के प्रत्येक वर्ग, जाति, सम्प्रदाय और समूह में अनेक बातों की गजब की समानता है। आर्य और द्रविण या ब्राह्मण और दलित का जातिगत भेदभाव सामाजिक रूप से आज जिस रूप में है, वह पिछले दो हजार वर्षों में अज्ञानता और अशिक्षा के कारण बढ़ता गया जिसका लाभ मुसलमान और ब्रिटिश शासन में शासकों ने मनमाने ढंग से उठाया। मनुस्मृति और अन्य स्मृतियों में मिलावट या प्रक्षेप पिछले दो हजार वर्षों में किये गए। उन प्रक्षेपों को लेकर ही मनुस्मृति और अन्य वैदिक ग्रंथों के विरोध में राजनीति के सूरमा अपनी रोटियाँ सेकते रहते हैं, जबकि महर्षि मनु के वचनों में जिस वर्ण–व्यवस्था और उसके कार्य–व्यवहार का वर्णन किये गए हैं वे सर्वथा मानवीय, मानव मूल्य परक और सर्वहितकारी हैं। इस सत्य और न्याय परक वर्णन को निष्पक्ष और तर्क के साथ स्वाध्याय करने और चिन्तन करने की आवश्यकता है। सवर्ण–असवर्ण की बात ही पूरी तरह गलत और भ्रम है। सवर्ण का अर्थ न तो द्विज जाति परक है और न तो असवर्ण का अर्थ द्विज जाति इतर जाति ही। ये सारे शब्द भारतीय समाज के परतन्त्रता में हिंदू समाज को विघटित करने के मद्देनजर प्रचलित किए गए। आश्चर्य इस बात की भी होती है कि आज का पढ़ा लिखा वर्ग भी इस अज्ञानता को स्वीकृति देता द्रष्टव्य होता है। संस्कृत भाषा का शब्द 'सवर्ण' का अर्थ उसी वर्ण का होता है। इसके अनुसार ब्राह्मण ब्राह्मण का सवर्ण होता है और दलित दलित का। इसी तरह असवर्ण का अर्थ जो उस वर्ण का न हो न कि द्विज इतर जाति या वर्ण।

पश्चिमी इतिहासकारों द्वारा इतिहास की पुस्तकों में जो आर्य–द्रविण या ब्राह्मण–शूद्र को मनमाने ढंग से विश्लेषण किया उसका परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों के जाने के बाद पिछले सत्तर वर्षों में कांग्रेसी शासन में पले–बढ़े वामपंथी इतिहासकारों ने पश्चिमी इतिहासकारों की प्रत्येक बात को आँख मूंदकर मान ही नहीं लिया बल्कि उसके लिए अपने निरर्थक तर्क भी गढ़ लिए। आज सत्तर वर्ष के अन्तराल में इतिहास की पुस्तकों में लिखे भारत के मूल निवासी और तथाकथित आक्रणकारी आर्यों की कहानियों को नई पीढ़ी पढ़कर यह समझती है कि दलित वर्ग ही भारत का मूल निवासी है और बाकी उच्च कही जाने वाली जातियां आक्रमणकारी आर्यों की सन्तानें हैं। पश्चिमी ईसाई इतिहासकारों के इतिहास के इस भयंकर षडयंत्र को समझने की आवश्यकता है जिससे सत्य और मिथ्या को समझा जा सके और पश्चिमी षडयंत्र को आगे बढ़ने से रोका जा सके।

○○○

भा.सां.सं.प. द्वारा बेलग्रेड में 4–6 अगस्त 2019 में महात्मा गांधी की 150वीं वर्षगांठ के अवसर पर सांस्कृतिक प्रदर्शन देने के लिए श्री सत्यजीत चेरुबाला के नेतृत्व में भारतनाटयम नृत्य समूह को प्रायोजित किया गया

मैथिलीशरण गुप्त के राम काव्य में सांस्कृतिक चेतना

गुरमीत सिंह

राष्ट्रीयता के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि भारतेंदु के राष्ट्रीय गीतों की अन्य धाराएं भले ही गुप्तजी में प्राप्त न हो पाती हों पर विचारमंथन और पीड़ा भाव की दृष्टि से वह उनकी परम्परा के ही कवि सिद्ध होते हैं। जिस प्रकार उनकी वैष्णव भावना किसी संप्रदायवाद का सहारा लेकर नहीं खड़ी होती उसी प्रकार उनकी राष्ट्रीय चेतना को भी संकीर्णमतवाद की लकीरें विभक्त नहीं कर पातीं।

सम्पर्क: अस्सिटेंट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़, मोबाइल-09815801908

राम, तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है;
कोई कवि बन जाय, सहज सम्भाव्य है।[1]-मैथिलीशरणगुप्त

'रामायण' और 'महाभारत' ऐसे ग्रंथ हैं जो भारतीय जन-जीवन को निरंतर उत्प्राणित ही नहीं करते रहे, बल्कि काव्यरचना की प्रेरणा भी देते रहे हैं। इन्हें भारतीय संस्कृति की आधारशिला कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं है। एक का संबंध भारतीय जननायक मर्यादा पुरुषोत्तम राम से है तो दूसरे का प्रेम-लीला प्रवीण कृष्ण से। भारतीय वाङ्मय इन दोनों के जीवन वृत्तों से प्रभावित है। यदि भारतीय साहित्य से इन दोनों से संबंधित रचनाओं को हटा दिया जाए, तो वह शरीर से प्राण अलग करने के समान होगा। प्राचीन, मध्य और आधुनिक काल में राम-कृष्ण का जीवन चरित्र साहित्यकारों का प्रमुख वर्ण्य विषय रहा है। संस्कृत में रामायण पर आधारित रघुवंशम, रावणवध, जानकीहरण, रामचरित, जानकीपरिणय आदि प्रमुख महाकाव्य हैं एवं प्रतिमा, अभिषेक, महावीरचरित, उत्तर-रामचरित, बालरामायण, आदि नाटक हैं जिनका आधार राम चरित्र कथा है। इस प्रकार प्रत्येक युग व प्रत्येक भाषा में रामकथा का विशद रूप देखने को मिलता है।

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा अन्य देशी भाषाओं में भी रामकाव्य परम्परा का प्रचुर साहित्य रचा गया है। तमिल में कम्ब, तेलुगू में रंग, बंगला में कृत्तिवासी, असमिया में माधव कंदलि और हिंदी में रामचरितमानस एवं रामचन्द्रिका आदि प्रसिद्ध हैं। आधुनिक युग में लिखे गए हिंदी के रामकाव्य की भी विशाल परम्परा है। आधुनिक हिंदी रामकाव्य में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक पुनरुत्थान की नवीन परिकल्पना है। अत: समस्त भारतीय वाङ्मय में वाल्मीकि से लेकर आधुनिक काल तक रामकाव्य की अटूट परम्परा दृष्टिगत होती है।[2]

आधुनिक नवीन सांस्कृतिक संकल्पनाओं की व्याख्या करने और उसके अनुकूल प्रभाव उत्पन्न करने के लिए राम एवं कृष्ण के चरित्र को काव्य विषय बनाया गया। राष्ट्रीयता एक उच्च विराट और व्यापक भावधारा है जो किसी भी राष्ट्र में रहने वाले सजग व्यक्ति के मन में हुआ करती है। यह भावना उसे संस्कारों से प्राप्त होती है। यह संस्कार परम्परा से विकसित अथवा पोषित

होते हैं। कालान्तर में यह संस्कार ही हमारी राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के अभिन्न अंग बन जाते हैं।

द्विवेदी युग के प्रमुख राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य का मूल स्वर राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना रहा है।आधुनिक युग में हमारे देश में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना न केवल विकसित हुई अपितु उसने एक महान जनशक्ति का रूप धारण करके स्वतंत्रता आंदोलन को बल दिया, जिसका मंगलमय परिणाम स्वाधीनता प्राप्ति के रूप में सामने आया। इस युग की राष्ट्रीयता के अंतर्गत तीन प्रमुख तत्व उपलब्ध होते हैं।

1. देश के प्रति प्रेम और आदर की भावना।

2. राष्ट्रीयता का सांस्कृतिक रूप अर्थात् भारत के प्राचीन गौरव की पुन:स्थापना का प्रयास।

3. विदेशी शासन तथा वर्तमान अद्योपतन, विशेषत: सामाजिक अद्योपतन के प्रति घृणा। इसके अतिरिक्त एकता और समानता, निर्भीकता और स्वतंत्रता के साथ पारम्परिक प्रेम संगठन, सेवा और सहयोग की भावना चेतना के पोषक तत्व हैं।

राष्ट्रीयता परम्परा से मनीषियों के चिन्तन का परिणाम है। यही कारण है कि भारतीय राष्ट्रीयता आक्रमण या विस्तारवादी नीति का समर्थन नहीं करती। 'सर्वेभवन्तुसुखिन: सर्वेसन्तुनिरामय' को आदर्श मानते हुए अपनी समृद्धि का विस्तार करना चाहती है। इस संदर्भ में गुप्तजी का सृजन अन्य सभी समसामयिक कवियों की तुलना में युगबोध के दायित्व को अधिक संभावनाओं से उजागर करता है। 'पंचवटी' में लक्ष्मण के मुख से इन्हीं भावों का उद्घाटन करते हुए उन्होंने लिखा है कि विघ्न बाधाओं को हम स्वत: आमंत्रित नहीं करते, किंतु वे आ ही जाएं तो उनसे डरते एवं घबराते नहीं हैं।

विघ्न बाधाओं को हम स्वयं बुलाने जाते हैं,
फिर भी यदि वे आ जावें तो कभी नही घबराते हैं।3

निश्चय ही इस प्रकार की पंक्तियों में परम्परा के साथ आधुनिक युग के हमारे आधारभूत सिद्धांतों का परिचय मिलता है। अस्तु उन्होंने सांस्कृतिक चेतना को उद्घाटित करने के लिए प्राचीन कथानकों का आधार ग्रहण किया। प्राचीन के भीतर नवीन को प्रस्तुत करना गुप्तजी की प्रतिभा का सबसे विशद् गुण था। इसी शक्ति से उन्होंने युग की प्रत्येक नवीन चेतना को काव्यात्मक अभिव्यक्ति से निखारा है।

राष्ट्रीयता के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि भारतेंदु के राष्ट्रीय गीतों की अन्य धाराएं भले ही गुप्तजी में प्राप्त न हो पाती हों पर विचारमंथन और पीड़ा भाव कि दृष्टि से वह उनकी परम्परा के ही कवि सिद्ध होतें हैं। जिस प्रकार उनकी वैष्णव भावना किसी संप्रदायवाद का सहारा लेकर नहीं खड़ी होती उसी प्रकार उनकी राष्ट्रीय चेतना को भी संकीर्णमतवाद की लकीरें विभक्त नहीं कर पातीं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि राष्ट्रीय चेतना वस्तुत: एक राष्ट्रीयता है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद इस राष्ट्रीय चेतना की आवश्यकता कम नहीं हुई है। इसलिए गुप्तजी के रामकाव्य में उद्घाटित राष्ट्रीयता जितनी महत्वपूर्ण स्वतंत्रता से पूर्व थी उतनी ही प्रासंगिक आज भी है। वाल्मिकी ने उस काव्यपरम्परा को जन्म दिया था जो देवोपासक न होकर मानवोपासक और मानवतावादी थी। रामकाव्य की इसी परम्परा का मानवतावादी तेज मैथिलीशरणगुप्त के 'पंचवटी' और 'साकेत' जैसे काव्य में स्फुटित हुआ। इन्हीं मूल्यों को लेकर काव्य के पारम्परिक ढांचे को उन्होंने नवीन उदेद्श्य के अनुसार परिष्कृत किया और आधुनिक संवेदना के द्वार पर लाकर खड़ा कर दिया।

द्विवेदीयुग में देशप्रेम की भावना का क्रमश: विकास हुआ। परिणामस्वरूप मातृभूमि के प्रतिप्रेम और श्रद्धा की भावना भारत देश और उसकी जनता के देवकरण की प्रकृति आदि अनेक भावों की अभिव्यक्ति हुई है। गुप्त जी ने पारिवारिक वातावरण में भी राष्ट्र जैसे गूढ़ विषय को उद्घाटित किया है। लक्ष्मण उर्मिला के प्रेमालाप में भी मातृभूमि के प्रति प्रेम का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं-

भूमि के कोटर, गुहा, गिरि, गर्त भी,
शून्यता नभ की सलिल आवर्त भी,
प्रेयसी किसके सहज संसर्ग से,
दिखते हैं प्राणियों को स्वर्ग से।4

यहाँ स्पष्ट है कि स्वर्ग से दिखने वाले सभी दृश्य भारत भूमि के हैं। यह बात और है कि वे प्रेयसी के संसर्ग से और भी मोहक लगते हैं। इसी प्रसंग में वे रामराज्य की कल्पना करते हैं, दूसरे भाग में भारत के स्वतंत्र होने की चाह व संदेश इसमें निहित है। हमारे लोग, हमारे देश का भार खुद संभाले यह निश्चय ही हर्ष का विषय होगा। इसी आशय को रूपायित करने हेतु उर्मिला

द्वारा अभिषेक संबंधी चित्र बनाने की मौलिक कल्पना गुप्त जी ने की है-

''कल प्रिये, निज आर्य का अभिषेक है,
सबक ही आनंद का अतिरेक है''

***

चित्र क्या तुमने बनाया है अहा?
हर्ष से सौमित्र से समाग्र कहा-

***

चित्र भी था और विचित्र भी,
रह गये चित्रस्थ से सौमित्र भी।5

यहाँ राष्ट्रीय संदर्भ में यह भाव उद्घाटित हुआ है कि राष्ट्र को स्वतंत्र करवाते समय लक्ष्य के निकट पहुँचकर कई बार जो व्यवधान उपस्थित हुए उनकी सहज अभिव्यक्ति होती है।

''चिबुक रचना में उमंग नहीं रुकी,
रंग फैला लेखनी आगे झुकी।

एक पीत-तरंग रेखा जा वही
और वह अभिषेक घट पर जा रही।6

इसी प्रकार राम के परिवार से सम्बद्ध एक उदाहरण और दृष्टव्य है जिसमें राष्ट्रीय भावना के सूक्ष्म तत्व निहित हैं। 'साकेत' में वर्णित सुमित्रा के स्वत्व एवं अधिकारविषयक भाव केवल कौशल्या के कथन का खण्डन ही नहीं करते वरन आधुनिक युग में राष्ट्रीय चेतना से पूर्ण गरम दल के विचार कों का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। कौशल्या के मुँह से क्षमायाचना की बात सुनकर सुमित्रा द्वारा कही गयी ये पंक्तियाँ हमें अंग्रजों से अपने अधिकार पाने की ओर अधिक सचेत करती हैं।

पाकर वंशोचित शिक्षा, मांगेगी हम क्यों भिक्षा?
प्राप्य याचना वर्जित है, आप भूजों से अर्जित है।

हम, पर भाग नहीं लेंगी, अपना त्याग नहीं देंगी।
वीर न अपना देते हैं, न वे और का लेते हैं।7

गुप्तजी यद्यपि गांधी नीति के पोषक हैं, परन्तु दूसरे राष्ट्रीय नेताओं का प्रभाव भी उन पर कमोवेश पड़ा ही है। पारिवारिक संबंध के अतिरिक्त राज्य के माध्यम से भी उन्होंने समसामयिक राष्ट्र की समस्या को उद्घाटित किया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि साकेतकार की राष्ट्रीय चेतना अत्यंत मुखरित हो उठती है। प्राचीन कथा प्रसंग के साथ-साथ कवि ने अपने युग के राजद्रोह को भी दिखाया है।

''राज्य में दायित्व का ही भार,
सब प्रजा का वह व्यवस्थागार।

वह प्रलोभन हो किसी के हेतु
तो उचित है क्रांतिका ही केतु।

दूर हो मता, विषमता मोह,
आज मेरा धर्मराजद्रोह।8

अंग्रेजों की शासन-नीति एवं दमनचक्र के कारण जो बात खुलकर नहीं कही जा सकती थी, कवि ने पौराणिक कथा के माध्यम से सहज ही कह दी। बार-बार राजद्रोह की उक्ति को दोहराना समसामयिक चेतना का प्रसार-प्रचार करना ही था। इसी प्रकार निम्नलिखित पंक्तियों में अनैतिक शासन की बात कहकर कवि राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के उद्देश्य की पूर्ति करता है।

अनुज उस राजत्व का हो अंत,
हन्त! जिस पर कैकेयी के दंत।9

यहाँ उस राज्य का अंत जिस पर कैकेयी के दंत है, का आशय निश्चय ही भारत में अंग्रेजी राज्य के अंत से है। यहाँ पारस्परिक कथा में कवि ने आधुनिकता का समावेश किया है। इसी प्रकार गुप्तजी ने सामाजिक संदर्भ में भी राष्ट्र के प्रति अपनी भावाभिव्यक्ति की है। 'साकेत' के राम पूर्ववर्ती मान्यताओं और धारणाओं को दूर कर स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि मैं यहाँ आर्य जाति की खोई हुई प्रतिष्ठा दिलाने एवं अनार्यो द्वारा शोषित जनों को मुक्त कराने आया हूँ। परतंत्र भारत के लिए ये उद्गार स्वतंत्रता का आह्वान कराते प्रतीत होते हैं।

मैं आया उनके हेतु कि जो तपित हैं,
जो विवश हैं, विकल, बलहीन, दीनशापित हैं।

हो जाएँ अभय वे जिन्हें कि भयभासित है,
जो कौणपकुल से मूक-सदृश शासित हैं।10

यहाँ कवि ने निश्चय ही रामकथा के माध्यम से क्रांति का संदेश दिया है। इसी तथ्य को और भी अधिक स्पष्ट करते हुए वर्षो से शासित भारत के विषय में 'साकेत' के माध्यम से कवि सचेत

करता है कि रात्रि का विघटन होगा और प्रभात निश्चय ही हमारा स्वागत करेगी।

''बरसों बीत गई पर अब भी है साकेतपुरी में रात,
तदपि रात चाहे जितनी हो, उसके पीछे एक प्रभात।11

अन्त में राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत युद्ध विषयक उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं, जिससे मातृभूमि के प्रति अपना सर्वस्व होम कर देने की भावना प्रबल है।

''मुझे आत्मरक्षा के पहले,
हे स्वदेश-रक्षा कर्त्तव्य।

कहते-कहते उस पर प्रभु ने
छोड़ी विशिखशिखा निज नव्य।12

'साकेत' के राम ने युद्ध से जो सिद्ध किया, उसमें बहुत कुछ परंपरा का भाव ही निहित है किन्तु उसी भाव के समानांतर राष्ट्र-प्रेम की प्रेरणा आधुनिकता का बोध कराती है।

''यह जय कार किया मुनियों ने दस्युराज यों ध्वस्त हुआ,
आर्य सभ्यता हुई प्रतिष्ठित आर्यधर्म आश्वस्त हुआ।13

गुप्तजी की राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना निस्संदेह प्रशंसनीय है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार साकेत वासियों की रण-सज्जा का वर्ण न राष्ट्रीय सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ा सशक्त है। ''कवि को यह असह्य हो उठा कि राम पर विपत्तियों के पहाड़ टूट पड़े, सीता को नीच कौणय चुरा ले जाए, लक्ष्मण शक्ति आहत होकर निष्प्राण हो जाए और उनके प्रिय भाई एवं उनकी प्रजाजन निष्क्रिय और निश्चित बैठे रहे। उनके सम्मुख वह संस्कृति की मर्यादा का प्रश्न बन गया है। सीता के सम्मान पर आक्रमण, देश की संस्कृति पर आक्रमण था, अत: इस स्थल पर कवि का राष्ट्रीय उत्साह मुखर हो उठा है। कवि की राष्ट्र-भावना इस अवसर पर व्यापक रूप में अभिव्यक्त हुई है।

इसी प्रकार धर्म, संस्कृति का एक प्रबल तत्व अवश्य है, किन्तु राष्ट्रनिष्ठा के आगे उसका स्थान गौण ही माना जाएगा। धार्मिक संस्कृति की तुलना में राष्ट्रीय संस्कृति अधिक व्यापक और श्रेयस्कर है। इस प्रसंग की व्यंजना का लक्ष्य, आज के युग में वर्ग-विशेष की संकुचित और अस्वाभविक प्रकृति को भी माना जा सकता है। जो भारत में जन्मे, वहाँ के अन्न-जल में पोषित होकर भी विदेशी मूलस्थानों के गुणगान में प्रवृत्त रहता है। लेकिन गुप्तजी ने राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना को रामकाव्य में इतना प्रभावी बना दिया है कि रघुपरिवार ही नहीं, अयोध्या का जन-जन राष्ट्र-गौरव की रक्षा के लिए तत्पर हो जाता है। महिलाएँ पुरुषों के साथ रण भूमि में जाने का आग्रह करती है। पत्नियाँ पतियों को युद्ध भूमि के लिए सहर्ष विदाई देती हुई आश्वस्त करती हैं कि उनके संरक्षण में उनके पुत्र भी अपने पिता का अनुगमन करेंगे।

'साकेत' का सम्पूर्ण द्वादश सर्ग राष्ट्र की स्वाधीनता, गौरव व गरिमा के लिए एक सशक्त उद्‌बोधन है। गुप्तजी ने राम-रावण विग्रह के माध्यम से भारतीय राष्ट्रीयता के उद्‌बोधन एवं जागरण का सुन्दर अवसर यहाँ सफलतापूर्वक निर्मित किया है।

कवि ने भारत के प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास के विचार-पटल पर नारीपात्रों की सृष्टि की है। उनकी सांस्कृतिक नारी उदात्त भावनाओं से युक्त है। उसमें अपने 'स्व' के प्रति पूर्ण सम्मान की भावना सन्निहित है। वे स्वभाव के कोमल हैं, किन्तु उनकी कोमलता परिस्थिति के अनुरूप कठोर होना भी जानती है।

लक्ष्मण युद्ध में रत हैं। अत: उर्मिला भी समय पड़ने पर युद्ध के लिए प्रस्थान करने को तत्पर हो जाती है। 'साकेत' मे गुप्तजी का उद्‌देश्य, उपेक्षित उर्मिला के चरित्र को गौरवान्वित करना था। इसलिए उनके अधिकांश विचारों की वाहक वही बनी है। मातृभूमि के प्रति अपना दायित्वपूर्ण करने के लिए उर्मिला का सटीक कथन है-

''मातृभूमि का मान ध्यान में रहे तुम्हारे,
लक्षलक्ष भी एकलक्ष रक्खो तुम सारे।15

उर्मिल से संबद्ध समस्त क्रियाकलाप पर ध्यान न दें तो परंपरागत संस्कृति के इस पहलु का खंडन होता है। जिस पर समस्त मानवीय भावनाएँ आधारित हैं। जब रावण जैसा शूरवीर कुल और भ्राता के मरण से विचलित होकर मूर्च्छित हो गया तब उर्मिला जैसी विरह विदग्धा पति के मरणासन्न होने पर सक्रिय हो उठी, यह भाव-बोध सहज ग्राह्य नहीं होता। जिस विश्वास को लेकर सतियाँ देहोत्सर्ग करती हैं, उसी विश्वास को लेकर उर्मिला वीरोल्लास दिखाई गई इसके प्रत्युत्तर में यह कहा जा सकता है कि गुप्तजी पर आधुनिक नारी-भावना का प्रभाव था। भावोद्वेलन की यह नवीन भावनाशील की उपज है, मनोवैज्ञानिक स्वभाव नहीं और इसी संदर्भ में लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर राम का स्वरूप भी परंपरा से हटकर कवि ने आधुनिक भावभूमि पर अंकित किया है। वे 'भाई का बदला भाई' कह कर युद्ध में सरोष प्रवृत्त हो जाते है।

इस प्रकार रामावतार से संबद्ध धार्मिक सांस्कृतिक चेतना के साथ स्वदेश रक्षा के उद्देश्य के संयोजन को सार्थकता प्रदान करने के लिए अन्य कृतियों के अतिरिक्त 'लीला' काव्य में भी गुप्तजी ने यह मान्यता स्थापित की है कि राक्षसों अथवा दैत्यों का मूलक्षेत्र भारत से बाहर लंका का है। भारत भूमि पर वे आक्रांताओं के रूप में ही आए हैं। उनके लिए यह भूमि 'उपनिवेश' है। इस तथ्य की पुष्टि 'कराल' और 'अराल' नामक दो राक्षसों के संवादों से होती है। 'अराल' भारत के प्रतिश्रद्धा पूर्ण भाव रखता है।

रख कर भी मन में महाबैर!
रक्खा है जब से यहाँ पैर,
मै हुआ और का और आप
मन मुग्ध हुआ इस ठोर आप।16

स्वदेश-प्रेम की भावना से भारत के गौरव की अभिव्यक्ति के लिए गुप्तजी ने एक परोक्ष उपाय अपनाया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुप्तजी के रामकाव्य में राष्ट्रीय भावना एवं राष्ट्रीय भावना एवं राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना संकेतिक तत्वों और तथ्यों के साथ उद्घाटित हुई है। यह भावना राष्ट्र कवि के अनुकूल ही है। राष्ट्रीय भावना की संतुलित अभिव्यक्ति रामायण की मूल कथा के साथ-साथ करना राष्ट्र कवि गुप्त के लिए ही संभव था।

संदर्भग्रंथसूची

1 डॉ. परमलालगुप्त, हिंदी के आधुनिक रामकाव्य का अनुशीलन, पृ.1

2 डॉ. परमलालगुप्त, हिंदी के आधुनिक रामकाव्य का अनुशीलन, पृ.2

3 मैथिलीशरणगुप्त, पंचवटी, पृ.30

4 मैथिलीशरणगुप्त, साकेत, पृ.23

5 वही, पृ.25

6 वही, पृ.29

7 वही, पृ.76

8 वही, पृ.140

9 वही, पृ.141

10 वही, पृ.166

11 वही, पृ.268

12 मैथिलीशरणगुप्त, प्रदक्षिणा, पृ.13

13 मैथिलीशरणगुप्त, साकेत, पृ.278

14 डॉ. नगेन्द्र, साकेतरू एकअध्ययन, पृ. 85

15 मैथिलीशरणगुप्त, साकेत, पृ.314

16 मैथिलीशरणगुप्त, लीला, पृ.39

○○○

'गगनांचल अमेरिका-कनाडा विशेषांक' लोकार्पण, अगस्त 2019, न्यूयॉर्क

अमरकान्त की कहानियों का रचनात्मक सरोकार

डॉ. अजय कुमार यादव

अमरकान्त की कहानियों का सरोकार आम आदमी की मूलभूत आवश्यकताओं और उसकी पूर्ति के लिए किये जाने वाले संघर्ष से है। आम आदमी दो जून की रोटी के लिए जी-तोड़ मेहनत करता है, फिर भी वह उसे नसीब नहीं होती है। वह अभावों के बीच से जीवन के रस को पकड़ने का प्रयास करता है और जोंक की भाँति ज़िंदगी से चिपका रहता है। अपनी ज़िंदगी को बेहतर बनाने के लिए आम आदमी के इसी संघर्ष को ही अमरकान्त ने अपनी कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है।

सम्पर्क: ए-9, टॉप फ्लोर, गली नं. 1, हरदेव नगर नियर हनुमान मंदिर, दिल्ली-110084, मो. 9999877698, ई-मेल: ajjunu@gmail.com

रचनाकार एक समाजचेता प्राणी होता है। अपने समाज और परिवेश से वह गहरे रूप में संपृक्त होता है। इसी परिवेश से वह जीवनानुभवों को ग्रहण करता है और अपने व्यक्तित्व का आयाम देकर उनकी सर्जनात्मक प्रस्तुति करता है। उसकी इस सर्जनात्मक प्रस्तुति के गहरे रचनात्मक सरोकार होते हैं। अपनी रचना के माध्यम से वह वृहत्तर मानवीय मूल्यों की स्थापना का प्रयास करता है। उसका सरोकार समाज एवं व्यवस्था की तर्कहीनता ओर विसंगति को समाप्त कर एक अधिक तार्किक और प्रगतिशील व्यवस्था की स्थापना होता है। मुक्तिबोध के अनुसार रचनाकार का सरोकार 'जो है उससे बेहतर' के निर्माण का प्रयास होता है। अमरकान्त की कहानियां भी इन्हीं गहरे रचनात्मक सरोकारों की उपज हैं।

अमरकान्त नई कहानी आन्दोलन के दौर के रचनाकार हैं। यह दौर आजादी की रूमानियत के साथ-साथ उसकी सीमाओं के उजागर होने का भी था। सत्ता केवल परिवर्तित हुई थी, चरित्र उसका कमोबेश वही बना हुआ था। सामाजिक रूप से मध्यवर्ग का तेजी से विकास हो रहा था और गाँवों से शहरों की तरफ पलायन की प्रक्रिया भी तेज हुई थी। फलस्वरूप नगरीकरण के विकास के साथ-साथ नवीन सामाजिक संबंधों के निर्माण और उससे उत्पन्न सामाजिक समस्याएँ भी दृष्टिगोचर होने लगी थीं। नई कहानी आन्दोलन में मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव आदि ने नगरीय बोध को अपनी कहानियों का आधार बनाया। स्त्री-पुरुष संबंध, कुंठा, संत्रस, अलगाव और संबंधों के विघटन एवं उनकी निरर्थकता को प्रमुखता से चित्रित किया। दूसरी तरफ अमरकान्त, मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, रेणु आदि कहानीकारों ने ग्रामीण बोध और निम्न मध्यवर्ग को अपनी कहानियों का आधार बनाया।

अमरकान्त मुख्यत: निम्न मध्यवर्ग के कहानीकार हैं। उनका रचनात्मक सरोकार इसी निम्न मध्य वर्ग की आशा-आकांक्षा, इच्छा-अनिच्छा, आशा-निराशा और ज़िंदगी को जोंक की तरह चिपटाये रखने के लिए किये जाने वाले प्रतिदिन के संघर्ष से है। उनका सरोकार उस निम्न मध्यवर्गीय सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था से भी है जिसकी अमानवीयता से हत्यारे जन्म लेते हैं। अमरकान्त अपनी कहानियों के माध्यम से निम्न मध्यवर्गीय

समाज की ज़िंदग़ी की तह तक जाकर उनके यथार्थ को चित्रित करने का प्रयास करते हैं। 'हत्यारे', 'दोपहर का भोजन', 'ज़िंदग़ी और जोंक', 'इण्टरव्यू', 'डिटी कलक्टरी', 'मूस' आदि कहानियां इसकी सशक्त उदाहरण हैं। उनकी कहानियों पर विचार करते हुए डॉ. नामवर सिंह ने भी उन्हें निम्न मध्यवर्ग का कहानीकार बताते हुए कहा है, ''आज की कहानियों के पाठकों का जो बहुत बड़ा समूह तथाकथित निम्न मध्यवर्ग के परिवारों में रहता है, उनकी ज़िंदग़ी की तहों में भी बहुत कुछ पड़ा हुआ है। कितने ही प्राइवेट मजाक होते हैं, हाथ और मुँह के बीच में भी बहुत सी बातें पैदा होती रहती हैं। अमरकान्त ने अपनी कहानियाँ यहीं से उठायी हैं और इस तरह हमारी आँखों में हमारी ही ज़िंदग़ी के जाने कितने पर्दे उठ गये हैं।''

अमरकान्त की कहानियों का सरोकार आम आदमी की मूलभूत आवश्यकताओं और उसकी पूर्ति के लिए किये जाने वाले संघर्ष से है। आम आदमी दो जून की रोटी के लिए जी-तोड़ मेहनत करता है, फिर भी वह उसे नसीब नहीं होती है। वह अभावों के बीच से जीवन के रस को पकड़ने का प्रयास करता है और जोंक की भाँति ज़िंदग़ी से चिपका रहता है। अपनी ज़िंदग़ी को बेहतर बनाने के लिए आम आदमी के इसी संघर्ष को ही अमरकान्त ने अपनी कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। उनकी कहानियों की इन्हीं विशेषताओं की तरफ संकेत करते हुए डॉ. सत्यकाम ने लिखा है, ''अमरकांत की कहानियों में जीवन से जूझते और उसकी पीड़ा भोगते आम आदमी का तल्ख और मार्मिक चित्रण हुआ है। दोपहर का भोजन', 'डिप्टी कलक्टरी', 'ज़िंदग़ी और जोंक' कुछ ऐसी ही कहानियां हैं। इन कहानियों में आम साथ सरकारों और भावनाओं को अभिव्यक्ति मिली है जो भारतीय मानस के पिछड़ेपन, अंधविश्वास और पाखड को उधेड़ती चलती है।''

अमरकान्त 'अपराजेय जीवनी-शक्ति' के कहानीकार हैं। उनके पात्र स्थितियों से संघर्ष करते है और उसी संघर्ष से अपना जीवन-रस ग्रहण करते हैं। 'ज़िंदग़ी और जोंक' का रजुआ इसका सबसे अप्रतिम उदाहरण है। रजुआ पशुओं से बदतर ज़िंदग़ी जीता है। समाज की मार को हर बार मात देता हुआ वह नई ज़िंदग़ी के लिए उठ खड़ा होता है। हर प्रकार के अपमान, अभाव और जलालत के बीच भी वह खुश होने का कोई-न-कोई अवसर ढूढ़ लेता है। चाहे मुहल्ले की औरतों से भौजाई का संबंध जोड़ना या फिर पगली को अपने साथ लिवा जाना। वस्तुत: अपनी अदम्य जिजीविषा के द्वारा रजुआ सभ्य समाज और उसकी व्यवस्था पर कई प्रश्नचिहन खड़ा करता है। इसी संदर्भ में विचार करते हुए राजेन्द्र यादव ने लिखा है, ''मैं आज तक तय नहीं कर पाया कि 'ज़िंदग़ी और जोंक' जीवन के प्रति आस्था की कहानी है, या जुगुप्सा, आस्थाहीनता और डिसगस्ट की। यहाँ जिन्दा रहने को जिस पाशविक या जैविक धरातल पर उतारकर देखा गया है, वह सचमुच हदला देने वाला है।''

व्यवस्था एक पात्र के रूप में अमरकान्त की कहानियों में हमेशा उपस्थित रहती है। वे अपने पात्रों, घटनाओं और स्थितियों के माध्यम से व्यवस्था की अमानवीयता और तर्कहीनता का उद्घाटन करते हैं। 'हत्यारे', 'मकान', 'असमर्थ', 'हिलता हाथ', 'ज़िंदग़ी और जोंक' आदि कहानियों में अमरकान्त मौजूदा व्यवस्था की विसंगतियों और उसके प्रभावों का चित्रण करते हैं। यह व्यवस्था की अमानवीयता ही है जो एक तरफ रजुआ की ज़िंदग़ी के साथ जोंक की तरह चिपटी उसका खून चूस रही है वहीं दूसरी तरफ नवयुवकों को हत्यारा बना रही है जो हत्या करके अत्यन्त सुख का अनुभव करते हैं। स्वयं कहानीकार को महसूस होता है, ''मुझे कभी-कभी लगता है कि वह किसी का मुहताज न होना चाहता था और इसके लिए उसने कोशिश भी की, जिसमें वह असफल रहा। चूँकि वह मरना न चाहता था, इसलिए जोंक की तरह ज़िंदग़ी से चिपटा रहा। लेकिन लगता है, ज़िंदग़ी स्वयं जोंक-सरीखी उससे चिपटी थी और धीरे-धीरे उसके रक्त की अंतिम बूंद तक पी गई।'' कहानीकार आगे लिखता है, ''उसके मुख पर मौत की भीषण छाया नाच रही थी और वह ज़िंदग़ी से जोंक की तरह चिपटा था - लेकिन जोंक वह था या ज़िंदग़ी? वह ज़िंदग़ी का खून चूस रहा था या ज़िंदग़ी उसका? - मैं तय न कर पाया।''

वस्तुत: यह व्यवस्था ही है जो आम आदमी की ज़िंदग़ी के साथ जोंक की भाँति चिपटकर उसका खून चूस रही है। अमरकान्त का सरोकार इस व्यवस्था के चरित्र को उजागर कर बेहतर जीवन स्थितियों के निर्माण का है जिसमें न कोई रजुआ बने और न ही हत्यारा।

अमरकान्त के 'हत्यारे' और प्रेमचन्द की 'कफन' में अद्भुत समानता है। दोनों ही कहानियां हमारे समाज और व्यवस्था की तीक्ष्ण आलोचना हैं। हमारी समाज व्यवस्था की संवेदनहीनता और अमानवीयता ने सभी मूल्यों एवं संस्कारों को निरर्थक बना दिया है। इसीलिए घीसू, माधव और हत्यारों का जन्म होता है। बहू को प्रसव पीड़ा में देखते हुए भी घीसू और माधव उसके पास इस डर से नहीं जाते हैं कि आलू दूसरा खा जायेगा और उसकी मृत्यु के बाद कफन के लिए मिले पैसों से खाना खाकर

और शराब पीकर तृपित का अनुभव करते हैं। उसी प्रकार हत्यारे अपनी उच्छृंखल वासना की पूर्ति के लिए निर्धन औरत का उपभोग करते हैं और मूल्य न चुकाकर निर्दोष युवक की हत्या कर आनन्द का अनुभव करते हैं। हत्यारे के ये युवक निर्बलों को सताने में और अपनी सांस्कृतिक रिक्तता की आपूर्ति के लिए बड़ी-बड़ी डीगें हांकने, तमाम मूल्यों का मजाक बनाने में जिस दारूण सुख का अनुभव करते हैं। वह इसी समाज व्यवस्था की तर्कहीनता और अमानवीयता की उपज है। वस्तुतः ''इसी जंगल के जीव हैं 'हत्यारे'। हत्यारों की गैर-जिम्मेदारी और मूल्यांधता इस तर्कहीन और असंगत समाज की परिणति है।'' हत्या करके जब वे युवक भागते हैं तो बिजली की रोशनी में आने पर अमरकांत ने लिखा है, ''जब बिजली का खंभा आया तो रोशनी में उनके पसीने से लथपथ ताकतवर शरीर बहुत सुंदर दिखाई देने लगे।'' यहाँ रोशनी में उनके शरीर की सुंदरता उनकी घृणित कायरता और व्यवस्था की मूल्यांधता को उजागर करती है। ज्ञातव्य है कि ये हत्यारे किसी व्यक्ति विशेष के हत्यारे नहीं हैं, बल्कि वे संपूर्ण मानवीय विवेक, निर्णय क्षमता और जीवन-मूल्यों के हत्यारे हैं। और विडंबना यह है कि हमारी वर्तमान व्यवस्था ही इन हत्यारों की जननी और पोषक है।

अमरकान्त कस्बाई व्यवस्था के उस चरित्र का भी उद्घाटन करते हैं जिसमें निर्धन और ग्रामीण व्यक्ति को अपने अस्तित्व और पहचान को बनाये रखने के लिए सतत् संघर्ष करना पड़ता है। परन्तु बावजूद इसके रामपुर का गोपाल और बिहार एवं नेपाल की सीमा के किसी गाँव से आये दिलबहादुर जैसे लोग अपनी पहचान को खोकर रजुआ और बहादुर बनने पर मजबूर होते हैं। ''गोपाल के रजुआ बनने की यह कथा उस हर निर्धन ग्रामीण की कथा है जो सुख की खोज में गाँव से भागकर शहर आता है। इस स्वप्निल सुख के लिए सबसे पहले उसे अपने नाम की ही तिलांजलि देनी होती है। धीरे-धीरे महानगर उसके मनुष्य होने के भाव को टुकड़ों-टुकड़ों में निगलता जाता है। वह एक बड़ी मशीन या यंत्र का एक मामूली-सा पुर्जा बनकर रह जाता है।''

'नौकर' के जन्तू, 'बहादुर' के बहादुर, 'ज़िंदग़ी और जोंक' के रजुआ आदि के माध्यम से अमरकान्त ने नौकर को लेकर मध्यवर्गीय ओछेपन और उस टुच्ची मनोवृत्ति को रेखांकित किया है जिसमें नौकरों को मनुष्य होने का दर्जा भी नहीं दिया जाता है। उन पर सभी लोग अपना असीमित अधिकार समझते हैं। अपनी पहचान को खोकर वे वस्तुतः 'नौकर' के जन्तू की तरह सचमुच ही जन्तु का जीवन जीने पर मजबूर होते हैं। गाहे-बगाहे उनकी ईमानदारी और सत्यनिष्ठा पर संदेह किया जाता है और केवल संदेह के बिना पर ही उनकी निर्ममता से पिटाई की जाती है। 'ज़िंदग़ी और जोंक' का रजुआ और 'बहादुर' का बहादुर इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। मनुवादी और ब्राह्मणवादी समाज में नौकरों के प्रति मध्यवर्गीय मानसिकता का सबसे सटीक परिचायक शिवनाथ बाबू का यह कथन है, ''इस बार तो साड़ी घर में ही मिल गई पर कोई बात नहीं। चमार-सियार डाँट-डपट पाते ही रहते हैं।... चलिए साहब, नीच और नीबू दबाने से ही रस निकलता है।''

'असमर्थ हिलता हाथ' में जाति प्रथा की जड़ता और पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की स्थिति के साथ-साथ इस बात का भी चित्रण किया गया है कि पितृसत्तात्मक सत्ता किस प्रकार एक स्त्री को ही दूसरी स्त्री की स्वतंत्रता के हरण के लिए अस्त्र की तरह इस्तेमाल करती है। जिस जाति व्यवस्था के कारण लक्ष्मी को उसका प्यार नहीं मिल पाया उसी जाति व्यस्था का इस्तेमाल करके वह मीना के प्यार को उससे छीनती है, ''लक्ष्मी को संपन्न ससुराल मिली और उसके पति भी निहायत सीधे थे, परंतु उसके हृदय का रस सूख गया था। उसका सुख छिन गया था, इसलिए ज़िंदग़ी भर वह उसका बदला दूसरों से लेती रही। साहस के अभाव में उसने जाति और धर्म के सामने घुटने टेक दिये थे और शादी के बाद वह इसी धर्म और जाति का सहारा लेकर दूसरों की भावनाओं को कुचलती रही।'' 'त्यागपत्र' की मृणाल की तरह मीना भी चिड़िया की तरह आजाद होना चाहती है, ''जब फागुन के आरंभ में लक्ष्मी की हालत गंभीर हो गई, तो एक दिन ऐसी ही सुबह नींद खुलने पर मीना के दिमाग में यह विचार कौंध गया कि माँ की मृत्यु के बाद वह चिड़िया की तरह आजाद हो जाएगी।'' परन्तु इस पितृवादी-जातिवादी व्यवस्था से न तो मृणाल अजाद हो सकी और न मीना ही।

आर्थिक अभाव से उत्पन्न निम्न मध्यवर्गीय दयनीयता, असफलता और असहायता को सशक्त ढंग से चित्रित करने वाली कहानी है 'दोपहर का भोजन'। परिवार के मुखिया मुंशी चन्द्रिका प्रसाद की डेढ़ महीने पूर्व मकान-किराया-निमंत्रण विभाग की क्लर्की से छंटनी हुई। परिणामस्वरूप परिवार घोर आर्थिक अभाव से गुजर रहा है और भुखमरी की ओर अग्रसर है। ऐसे में पूरे परिवार को जोड़ रखने के लिए सिद्धेश्वरी प्रत्येक सदस्य से झूठ बोलती है। उसका झूठ पूरे परिवार को चलाने के लिए तनी हुई रस्सी पर चलने वाले कलाकार के लिए आवश्यक संतुलन का कार्य करता है। और आर्थिक दयनीयता एवं बेचारगी को प्रकट करता है। अंत में अपनी परिस्थिति और संकट को बयां करने

वाले आँसू को छलकने से वह नहीं राक पाती है। ''उसने पहला ग्रास मुंह में रखा और तब न मालूम कहाँ से उसकी आँखों से टप-टप आँसू चूने लगे।''

अमरकान्त की दृष्टि रोज कमाने और खाने वाले आम आदमी से कभी नहीं हटती। 'मूस', 'छिपकली', 'मौत का नगर', आदि कहानियों में यही आम आदमी उनकी चिंता के केंद्र में है। अमरकान्त यह देखते हैं कि प्राकृतिक आपदा या मानव जनित सांप्रदायिक दंगों के समय आम आदमी ही सबसे ज्यादा प्रभावित होता है। उसके 'मकान','मौत का नगर' बन जाते हैं। 'मौत का नगर' में उन्होंने दिखाया है कि सांप्रदायिक दंगों के समय जहाँ सभी भय और आतंक के माहौल में जीते है वहीं सबसे ज्यादा गरीब आदमी ही मारा जाता है। दाढ़ीवाला व्यक्ति राम से कहता है, ''सब गरीब मारे जाते हैं। रोज कमाने-खानेवाला हूँ। तीन दिन से घर में कुछ नहीं बना।... अपने तो भूखा रह सकता है आदमी, पर बच्चों को भूखा नहीं देखा जाता, जी। आज न आता तो क्या करता?''

'डिप्टी-कलक्टरी' में एक अलग स्तर एक आम भारतीय परिवार की आशा और आकांक्षा को देखा गया है। यहाँ पर जीवन की परीक्षा में भाग लता है पुत्र परन्तु उसके तनाव को प्रतिपल झेलता है पिता। वस्तुतः शकलदीप बाबू उन औसत भारतीय परिवारों के अभिभावकों के प्रतिनिधि हैं जो अपने बच्चों की पढ़ाई-लिखाई को एक निवेश मानते हैं और उनसे यह अपेक्षा लगाये रखते हैं कि उनके परिवार की आर्थिक स्थिति का उद्धार होगा। इस स्थिति में वह बराबर आशा और निराशा के झूले पर झूलते रहते हैं। फिर भी उनके भीतर कहीं-न-कहीं वह पिता जिन्दा रहता है जिसके लिए अपनी स्थिति के उद्धार से ज्यादा महत्वपूर्ण अपने पुत्र की जीवन रक्षा होती है, ''शकलदीप बाबू एकदम डर गए और उन्होंने काँपते हृदय से अपना बायां कान नारायण के मुख के बिल्कुल नजदीक कर दिया। और उस समय उनकी खुशी का ठिकाना न रहा, जब उन्होंने अपने लड़के की साँस को नियमित रूप से चलते पाया।''

अमरकान्त का सरोकार निम्न मध्यवर्गीय जनता की संवेदना से ही नहीं जुड़ता वरन् वह उनकी बात उन्हीं की रोजमर्रा की भाषा, महावरों, लोकोक्तियों, प्रतीकों और बिम्बों में करते है। उन्होंने व्यंग्यात्मक शैली में जहाँ व्यवस्था के चरित्र का उद्घाटन किया है वहीं निम्न मध्यवर्गीय जनता के यथार्थ का भी। मूस का परिचय देते हुए उन्होंने लिखा है, ''मूस का जीवन उस मरियल बैल की तरह था, जो चुपचाप हल में जुतता है, चुपचाप मार सहता है और चुपचाप नांद में भूसा खाता है। उसको देखकर यह कहना मुश्किल था कि उसकी कोई इच्छा या अनिच्छा भी है। ... वह काफी मुँह-दूबर था और जरूरत पड़ने पर ही बोलता। मुँह-चोर भी परले नंबर का था।'' इसी तरह निम्न वर्गीय समाज की भाषा का एक उदाहरण परबतिया के चीखने-चिल्लाने में मिलता है। परबतिया चीखते हुए कहती है, ''करइत है, करइत! यह कहने को ही सीधा है, इसके दिल में गज-भर का छुरा है, मौका मिलते ही मारकर धाम में फेंक दे।''

अमरकान्त की कहानियाँ निम्न और निम्न मध्यवर्गीय समाज की सामाजिक और आर्थिक वास्तविकता को उजागर करती हैं। उनके प्रति हमें सचेत करती हैं। समाज की दुखती रगों पर अंगुली रखकर उनकी कहानियां न केवल हमारे स्पंदन को झंकृत करती हैं बल्कि सोचने के लिए बाध्य करती हैं। अपने रचनात्मक सरोकार में उनकी कहानियां एक ऐसे बृहत्तर परिवेश के निर्माण की स्थापना करती हैं जिसमें 'मीना' आजाद हो, किसी गोपाल को रजुआ बनने पर बाध्य न होना पड़े, सबको सहजता से दोपहर का भोजन उपलब्ध हो, हत्यारों का जन्म न हो और ज़िंदग़ी जोंक न बन जाये।

संदर्भ

सिंह, नामवर. (2006). कहानी: नयी कहानी. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ 38-39.

डॉ. सत्यकाम. (2002). नई कहानी: नए सवाल.पटना: अनुपम प्रकाशन, पृष्ठ 45.

यादव, राजेन्द्र. (1981). औरों के बहाने. अक्षर प्रकाशन, पृष्ठ-78.

अमरकान्त. (2010) प्रतिनिधि कहानियाँ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ65.

वही, पृष्ठ 66.

त्रिपाठी, विश्वनाथ. (1998) कुछ कहानियाँ : कुछ विचार. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 25.

अमरकांन्त. (2010).प्रतिनिधि कहानियाँ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-113.

डॉ. सत्यकाम. (2002).नई कहानी: नए सवाल. पटना: अनुपम प्रकाशन, पृष्ठ 49.

अरमकान्त. (2010).प्रतिनिधि कहानियाँ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 49.

○○○

साठोत्तर नाटकों में वर्ग-वैषम्य एवं व्यक्ति तथा समाज का द्वन्द्व

डॉ. मंजुला दास

आज संसार में प्रतिभा और योग्यता को अपेक्षित महत्त्व नहीं दिया जाता क्योंकि यदि व्यक्ति में प्रतिभा हो किन्तु सामाजिक दृष्टि से व्यवहार-पक्ष में वह शून्य हो तो कर्मक्षेत्र में वह सफल नहीं हो सकता। रिश्वत लेना आज व्यक्ति की नियति बन गई है। इसके लिए चापलूसी की सीमा तक गिर जाना उसका स्वभाव हो गया है।

सम्पर्क: प्राचार्य आवास, सत्यवती कॉलेज, अशोक विहार फेज-III, दिल्ली-110052

अन्य गद्य-विद्याओं की तुलना में नाटक अधिक सजीव होता है, क्योंकि उसमें दृश्यात्मकता की अन्विति के साथ-साथ व्यंग्य का पैना स्पर्श भी रहता है। कहानी, उपन्यास आदि की अपेक्षा नाटक समसामयिक जीवन के अधिक समीप होता है। नाट्यस्रष्टा जीवन के किसी भी अंश अथवा काल-खंड का चित्रण स्वतन्त्र भाव से कर सकता है, परन्तु घटना-चयन में सूक्ष्मता का ध्यान रखना तथा प्रभावपूर्ण पकड़ रखना आवश्यक है, जिससे रचना में अविश्वसनीयता न आने पाए और उसमें रागात्मकता स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहे। डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार, ''जीवन की वास्तविकता हमारे नाटक का आधार होना चाहिए, पर जिस वास्तविकता में कोई आकर्षण नहीं है, वह हमें रुचिकर नहीं हो सकती। जब रंगमंच पर जीवन का चित्रण करना होता है तब हमें जीवन की ऐसी घटनाएँ तो चाहिए हीं जो हृदय की सहानुभूति प्राप्त कर सकें या हमारी रागात्मक प्रवृत्ति में कुछ चेतना ला सकें।

आधुनिक जीवन यथार्थवादी और अतिशय यांत्रिक है। इसी की प्रतिक्रियास्वरूप जहाँ बाह्य स्तर पर कहीं हमें परिवर्तित जीवन-मूल्यों के मध्य विद्रोह और प्रतिशोध की अग्नि में सुलगता सामान्य मनुष्य मिल जाता है तो वहीं आन्तरिक स्तर पर विसंगत परम्पराओं का बोझ ढोता, अपने अस्तित्व को अक्षुण्ण रखने के लिए कुलबुलाता और मनोवैज्ञानिक टूटन झेलता हुआ मनुष्य भी इसी युग की देन है।

वस्तुत: आज नाटककार का दायित्व यदि राजनीति के क्षेत्र में भ्रष्टाचार के प्रति संकेत करना है तो उसके अनेक सामाजिक दायित्व भी हैं। इस सन्दर्भ में वर्गभेद एवं वर्ण-वैषम्य से उपजी सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति, व्यक्ति तथा समाज के पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या इत्यादि को प्रस्तुत युग के नाटकों में मुख्य स्थान मिला है। त्रासद तत्त्व की अभिव्यक्ति इस सन्दर्भ में जहाँ भी हुई है, उसका विवेचन किया जा रहा है-

व्यक्ति मूलत: एकाकी है। समाज का स्वरूप कभी उसे आक्रामक प्रतीत होता है, कभी अपनत्व से परिपूर्ण। समाज

विभिन्न जातियों-उपजातियों में विभक्त है- वैदिक काल से अब तक हम इस साँचे से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाए हैं। उच्च जाति और निम्न जाति विषयक यह विष धीरे-धीरे समाज में अपना प्रभाव फैला रहा है। आज समाज में उच्च जातियों का सम्मान है तथा निम्न वर्ण का शोषण किया जा रहा है। (डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल कृत 'सत्यवादी हरिश्चंद्र' में देखें।)

जीतन: यह काम वही कर सकता है, जिसमें आत्मगौरव हो, आत्मज्ञान हो और आत्मविश्वास हो।

वृद्ध: ई का चीज है भइया?

जीतन: इसके लिए भीतर आग चाहिए। मैं पता लगा रहा हूँ, वह आग सिर्फ़ ऊँची जाति के लोगों में है। नीचे के लोगों में वह आग हजारों साल पहले कुचलकर बुझा-दी गयी है। समझे? कि और समझाऊँ?

इस प्रकार के विचारों के लिए केवल उच्च जाति के व्यक्ति ही नहीं, निम्न जाति के व्यक्ति भी दोषी हैं क्योंकि वे अपने प्रत्येक अपमान को भाग्य का दोष कहकर सिर पर ओढ़ते रहते हैं, विद्रोह करने का प्रयत्न नहीं करते। अत्याचार की अति होने पर भी ग्रामीण प्राय: भयवश भाग्य को अथवा सताए गए व्यक्ति को ही दोष देने लगते हैं। उनमें इतना साहस नहीं होता कि ये वास्तविकता को सबके समक्ष रखें, यह साहस तो कोई-कोई कर पाता है। 'काला मुँह' नाटक में केसर का यह संवाद वस्तुस्थिति के इसी पक्ष को व्यक्त करता है:

''काला मुँह उसका नहीं (केशी का) हम सबका हुआ है राजुला भाभी। मेरा तुम्हारा, गोबर का, बैजू ठेकेदार और सिरीधर मुंशी का, रेंजर, पटवारी और प्रधान का और न जाने किस-किसका। व्यवस्था का, जात-पाँत का, बामन-ठाकुर का, शिल्पकार-हरिजन का। उन उजले मुँह वालों का ...जो काले कारनामे करते हैं।''

इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर चुनाव में विजय-प्राप्ति के लिए सिरीधर मुंशी जब ग्रामीण जनता को गाँधीजी और हरिजन के नाम पर भटकाने का प्रयत्न करता है तो सचेत युवक होने के कारण केसर ग्रामीणों को फटकारता है कि वे इस प्रकार की लोरियाँ सुनने में अपना समय क्यों नष्ट कर रहे हैं। भेड़-भेड़िए के इस खेल को उन्हें समझना पड़ेगा क्योंकि निम्न और उच्च जातियों में समानता लाने के लिए एक पुल बनना बहुत आवश्यक है, जिसके लिए कोई साहस नहीं कर पाता। 'एक और द्रोणाचार्य' में भी ऐतिहासिक आधार लेकर यह प्रदर्शित किया गया है कि यदि कोई व्यक्ति ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय वंश में उत्पन्न नहीं हुआ तो वह योग्यता और प्रतिभा होते हुए भी शस्त्र-शास्त्र-विद्या ग्रहण नहीं कर सकता। शिक्षक तक इस व्यवस्था के हाथों बिक जाता है और एकलव्य जैसे शिष्य उभरने के पूर्व ही कुचल दिए जाते हैं। शिक्षक का अहं एक विद्यार्थी के भविष्य को नष्ट कर देता है:

अर्जुन: आपने एक महान् प्रतिभा को उभरने से पहले ही कुचल दिया।

द्रोणाचार्य: हाँ, कुचल दिया। उसने मेरे अहंकार को चुनौती क्यों दी?

अर्जुन: कैसी चुनौती?

द्रोणाचार्य: वह सिद्ध करना चाहता था कि वह मेरी सहायता के बिना भी महान् धनुर्धर बन सकता है (विराम) कल इतिहास मेरा अपूर्णता पर हँसता...

अर्जुन: इतिहास तो कल भी हँसेगा आप पर। जब भी प्रतिभा को जाति और व्यवस्था के नाम पर कुचला जाएगा तो लोग आपको ही याद करेंगे। इतिहास आपको कभी क्षमा नहीं करेगा?

इसमें सन्देह नहीं कि एकलव्य के जीवन में घटित होने वाली यह त्रासद घटना इतिहास के माथे पर एक कलंक है। समाज में ऐसी त्रासदियाँ जब भी घटित होती हैं, आने वाली पीढ़ियाँ उनसे युगों तक संत्रस्त रहती हैं।

वर्ग-वैषम्य के अतिरिक्त जीवन और समाज के विविध चित्र हमें साठोत्तर नाटक में उपलब्ध होते हैं। व्यक्ति कितना समर्थ है तथा समाज कहाँ उसका सहायक अथवा बाधक बनकर उसके समझ उभरता है इसे इन नाटकों में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। आज व्यक्ति की धुरी का उच्छेदन अथवा उसके जीवन-मूल्यों की हत्या तो हम कर रहे हैं, किन्तु सृजन-क्षमता हममें सही परिप्रेक्ष्य में विकसित नहीं हुई है। प्रत्येक विनाश के पश्चात् निर्माण भी आवश्यक है क्योंकि यदि व्यक्ति में निर्माण की शक्ति नहीं है तो किसी के विनाश का अधिकार भी उसे नहीं है। 'अब्दुल्ला दीवाना' नाटक में निर्देशक के अनुसार, ''यदि मैं अतिरंजित बात नहीं कर रहा तो स्वीकार करना होगा कि आज

हमारे समूचे जीवन को राजनीति के चारों ओर असहाय घूमना पड़ रहा है। अनिश्चय और असुरक्षा हमारे अकिंचन स्वरूप को और भी खंडित कर देती है। यदि हम इसके खिलाफ़ कुछ कहते भी हैं तो प्रतीत होता है कि उस विरोध का असर और महत्ता कुत्ते के भौंकने के स्वर से भी कम है।''

स्पष्ट है कि सामाजिक जीवन की विडम्बनाओं और खोखलेपन का अनुभव जहाँ भोक्ता पात्रों को होता है, वहाँ नाटककारों को भी वही अनुभव संवेदनात्मक गहराई से होता है और निर्देशकों की भी प्रतिक्रिया वैसी ही होती है। इससे इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि त्रासद स्थितियों का अनुभव सभी सामाजिकों को समान स्तर पर होना चाहिए, अन्यथा इसे नाटककार की असफलता मानना होगा जिन्दगी की शुरुआत ही अव्यवस्था से होती है। ऐसी स्थिति में आगे आने वाले वर्षों में जो बेतरतीब अनुभव होते हैं और मन को संतप्त कर देने वाले सन्दर्भों क जो अनवरत परम्परा जड़ जमा लेती है, उससे मुक्त होना न तो साधरण मानव के बस की बात है और न ही नाटककार ऐसी स्थितियों की उपेक्षा करके नाट्यविधन में सफलता प्राप्त कर सकता है।

आज संसार में प्रतिभा और योग्यता को अपेक्षित महत्त्व नहीं दिया जाता क्योंकि यदि व्यक्ति में प्रतिभा हो किन्तु सामाजिक दृष्टि से व्यवहार-पक्ष में वह शून्य हो तो कर्मक्षेत्र में वह सफल नहीं हो सकता। रिश्वत लेना आज व्यक्ति की नियति बन गई है। इसके लिए चापलूसी की सीमा तक गिर जाना उसका स्वभाव हो गया है। आज के जीवन में नकलीपन और जी-हुजूरी कितनी अधिक है, इसे निम्नलिखित संवाद द्वारा समझा जा सकता है:

पेशकार: सोचा, सलाम कर आऊँ। बहुत दिन से सलाम नहीं किया था। सलाम न करो तो हाथ-पैरों में जंग लगने लगती है। दिमाग़ बिल्कुल ठस्स हो जाता है। सलाम करने से खून में खामी रहती है।

लक्ष्मीनारायण लाल कृत 'राम की लड़ाई' नाटक में भी पुलिस पर आक्षेप किया गया है तथा उसे लंकाकाण्ड के राक्षसों के समान आतंककारी माना गया है। राजनीति और समाज के परिप्रेक्ष्य में यदि आज के मानव-जीवन का अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट हो जाएगा कि भारतीय नागरिक वर्षों से शून्य में भटक रहा है, मोहभंग की स्थिति में है तथा प्रत्येक ओर से केवल अनिश्चय ही उसे ग्रसने को आ रहा है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना द्वारा लिखित 'बकरी', 'लड़ाई' तथा 'अब ग़रीबी हटाओ' नाटकों की विषयवस्तु का आधार निम्नवर्ग की शोषित मन:स्थिति तथा दयनीय दशा है। निम्नवर्ग की दुर्दशा के मूल में हैं- साधन-सम्पन्न नेता, अफ़सर, धनाढ्य वर्ग और पुलिस-विभाग। इस चक्रव्यूह से घिरी त्रासद स्थितियों को नाटककार किस प्रकार आशापूर्ण मोड़ तक ले जाता है- यह दर्शनीय है। 'अब ग़रीबी हटाओ' नाटक का शीर्षक व्यापक मानवीय नियति से जुड़ा हुआ है। इस नाटक पर व्यवस्था के विरोध का आरोप लगाना निराधार होगा क्योंकि इसमें जनसामान्य की भावनाओं का पोषण ही प्रमुख है। आज जनता की इच्छाएँ और घुटन प्राय: यथावत् हैं। सुरक्षा के नाम पर उन्हें यातना अधिक मिल रही है। व्यक्तिगत जीवन ही नहीं, समाज और प्रशासन भी आज अव्यवस्था का शिकार है। सरकारी कार्यालयों की यह दशा हो गई है कि वहाँ रिश्वत अथवा ऊपरी आय ही सब-कुछ है। रिश्वत मिलते ही वे कठिन-से-कठिन कार्य को पूरा करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। सभी व्यक्तियों के चेहरे पर मुखौटे लगे हुए हैं तथा बुरी और अच्छी आत्माओं का संघर्ष चल रहा है। यह एक विडम्बनापूर्ण त्रासदी ही है कि व्यक्ति आन्तरिक रूप से कुछ और सोचता है जबकि उसकी बाह्य क्रियाएँ कुछ और ही प्रकट करती हैं। प्रशासन में बात सामान्य-सी हो गई है कि साक्षात्कार केवल काग़जी प्रदर्शन है। किस व्यक्ति को रखना है, यह पहले से ही निश्चित रहता है-

मिश्रा: यह भी कोई पूछने की बात है? बड़े बाबू जिन्दा है। मतलब कि उनकी साली का सिलेक्शन हो चुका। संसार की तथाकथित नैतिकता प्रत्येक स्वतन्त्र विचारवान् व्यक्ति पर आक्रमण करती है किन्तु व्यक्ति का निर्माण तो अपने अन्दर से होता है, किसी बाह्य तत्त्व द्वारा कुछ कह या कर देने से व्यक्ति कुछ काल के लिए परिवर्तित अथवा स्तब्ध अवश्य हो सकता है पर उसका व्यक्तित्व मूलत: वही रहता है। निष्कर्षत: यह स्पष्ट है कि व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध निरन्तर परिवर्तनशील हैं। इसीलिए 'रोशनी एक नदी है' नाटक की भूमिका में लक्ष्मीकान्त वर्मा ने आज की सामाजिक व्यवस्था के विषय में अनेक प्रश्न उठाए हैं। जीवन की विसंगतियों के मध्य नाटक को सही अर्थ देने पर उन्होंने इन शब्दों में विचार किया है: प्राय: नाटक की कथावस्तु या तो अपराध रहा है, या इतिहास, या अतिनाटकीयता के आधार पर अतिरंजित पक्ष। ड्राइंगरूम में नाटक सड़ता है, इतिहास में वह केवल 'ममी' के रूप में सुरक्षित रह सकता है और अतिनाटकीयता में वह भदेस हो जाता है।

○○○

यथार्थ के ओजस्वी अनुगायक : भवानी प्रसाद मिश्र

राजेंद्र परदेसी

वास्तव में भवानी प्रसाद मिश्र की काव्यचेतना व्यक्तिपरक बहुत कम है, समष्टिपरक अधिक है। परिणामतः उनकी काव्यात्मकाभिव्यक्ति अधिकाधिक सामाजिक आवेगों को स्वरित कर सकी है। इनकी कविता में सर्वत्र मानवतावादी स्वर की अनुगूंज और जीवन के सौंदर्य का उजास है और है सामाजिक संदर्भ में एक अभिनव मानवीय रागात्मकता शब्द संस्कार के प्रति सजगता संकुल मानव की मानसिक जटिलता जीवन की तल्खी और सपाटबयानी-ये सभी प्रवृत्तियाँ जनमानस पर व्यापक प्रभाव डालती है।

सम्पर्क: 44-शिव विहार, फरीदी नगर, लखनऊ-226015,
मो: 9415045584

लोकप्रिय साहित्यकार वही होता है, जो अपने आपको भीड़ का एक हिस्सा मानता है, जो सदैव शाश्वत मूल्यों के अभिरक्षण के लिए जीवन की लड़ाई लड़ता है। ऐसा रचनाधर्मी मानवता की अवमानना सह नहीं सकता। वह तो तुरंत अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर देता है। वह परिणाम की भी परवाह नहीं करता। भवानी प्रसाद मिश्र ऐसे ही साहित्य सृजेता थे। वह तो स्वयं मानवीय गुणों से संपन्न व्यक्ति थे तथा मानव मूल्यों के प्रति विश्वासी और पक्षधर थे। उनका सृजन इसी आस्था के स्वर मुखरित करता है।

स्वभाव से गांधीवादी, सोच से प्रगतिवादी भवानी प्रसाद मिश्र का लेखन रवींद्रनाथ ठाकुर तथा अंग्रेजी कवि वड्सवर्थ से अधिक प्रभावित लक्षित होता है। अज्ञेय के 'द्वितीय सप्तक' के कवि होने के कारण उन्हें प्रयोगवादी कवि के रूप में भी जाना गया। किन्तु उनका व्यक्तिगत जीवन दर्शन प्रयोगवादी साहित्य की प्रवृत्तियों का अनुगामी नहीं, अपितु उसके विपरीत दिखता है। इस संदर्भ में वह स्वयं कहते हैं-वे दर्शन में अद्वैत को, वादों में गांधीवादी को और टैक्नीक में सहज लक्ष्य को ही स्वीकार करते हैं। इनका साहित्य व्यक्तिपरक कम समष्टिपरक अधिक है। उनके साहित्य में उनका व्यक्तित्व स्पष्ट झलकता है।

भवानी प्रसाद मिश्र का जन्म मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जनपद के टिगरिया ग्राम में 29 मार्च 1913 को हुआ था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा सोहागपुर, होशंगाबाद, नरसिंहपुर और जबलपुर में हुई। सन् 1934-35 में इन्होंने हिंदी, अंग्रेजी तथा संस्कृत विषय लेकर बी.ए. किया। महात्मा गांधी के विचारों से प्रभावित होकर भवानी प्रसाद मिश्र ने उनके विचारों के अनुरूप नयी पीढ़ी को शिक्षा देने के लिए एक विद्यालय भी खोला। अंग्रेजों को इनकी गतिविधियाँ सरकार विरोधी लगी और इन्हें सन् 1942 में गिरफ्तार कर जेल भेज दिया। वह सन् 1945 में जेल से छूटकर आये तो महिलाश्रम वर्धा मे अध्यापन कार्य करने लगे। जहाँ लगभग पांच वर्ष तक अध्यापक के पद पर कार्यरत रहे।

भवानी प्रसाद मिश्र का लेखन सन् 1930 से ही प्रारंभ हो गया था। प्रारंभ में इनकी कुछ कविताएँ ईश्वरी प्रसाद वर्मा के

संपादन में निकलने वाली पत्रिका 'हिंदुपंच' में प्रकाशित हुई थी। उस समय वह हाईस्कूल के विद्यार्थी थे। सन् 1932-33 में भवानी प्रसाद मिश्र, माखनलाल चतुर्वेदी के संपर्क में आये, जिन्होंने इनकी कविताएँ अपने संपादन में प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'कर्मवीर' में नियमित प्रकाशित कीं। प्रेमचंद ने भी उनकी अनेक रचनाएँ अपनी पत्रिका 'हंस' में प्रकाशित की थी। इसी के साथ इनका लेखन और प्रकाशन नियमित हो गया।

भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं में आभिजात्य भाषा-शैली का प्रयोग नहीं है। आम पाठक भी उनकी सरल-सहज कविता को हृदयगम कर उसका रसास्वदन कर सकता है। उनके अंदर नैसर्गिक प्रतिभा थी। वह कवि जीवन के आरंभ से ही अंचल विशेष से जुड़ रहे हैं। जिसका वर्णन उनकी कविताओं में बड़े आकर्षक रूप में प्रस्तुत हुआ है। उन्होंने बड़ी उल्लासमय, निष्ठा और लगन से प्रकृति संबंधित कविताएँ लिखी है। सतपुड़ा के जंगल, वे हँसे और माया बसंत, पहिला पानी, चांदनी चंदन छिड़कती है, उनकी चर्चित कविताएँ हैं, धरती और माटी के रंग से रची-बसी है, उदाहरणार्थ-

झाड़, ऊँचे और नीचे
चुप खड़े हैं, आँख मींचे
घास चुप है, काश चुप है
बन सके तो धंसों इसमें
धंस न पाती हवा जिसमें

भवानी प्रसाद मिश्र स्वतंत्रता आंदोलन के जुझारू सिपाही थे। उन्होंने गुलाम और आजाद भारत को अपनी खुली आँखों से देखा था। आम भारतीयों की तरह उन्होंने भी स्वतंत्र भारत का सपना देखा था। स्वप्न भंग होने पर पीड़ा होना स्वाभाविक है। इसी कारण संकुल मानव की मानसिक जटिलता, जीवन की तल्खी और सपाटबयानी इनकी कविताओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। भाषा के स्तर पर शब्दों की क्लिष्टता और गूढ़ता का जाल बुनकर वह विशेष पाठक की तलाश नहीं करते। आम जन की भाषा में आम भावनाओं के उद्वेगों को रूपायित करते हैं।

उनकी कविता 'गीत फरोश' में युग का यथार्थ मर्मस्पर्शी व्यंग्य और विवशता के साथ मुखरित हुआ है-

जी हां हुजूर मैं गीत बेचता हूँ
मैं हर तरह से गीत बेचता हूँ
मैं सभी किसिम के गीत बेचता हूँ

जी पहले कुछ दिन शर्म लगती थी मुझको
पर पीछे कुछ अकल जगी मुझको
जी, लोगों ने तो बेच दिया ईमान
जी, आप न हों सुनकर ज्यादा हैरान
मैं सोच समझकर आखिर
अपने गीत बेचता हूँ

इन दिनों क्या दुहरा है कवि धंधा
हैं दोनों चीजे व्यस्त कलम और कंधा

मैं नये पुराने सभी तरह के गीत बेचता हूँ

भवानी प्रसाद मिश्र के आदर्श कवि माखनलाल चतुर्वेदी भी रहे। उनकी सीख को वह सदैव स्मरण रखते थे। उनका कहना था कि ''तुम्हारा आसान लिखना छूट न जाए। इसकी सावधानी रखना। किन्तु यह भी ध्यान रखना कि आसान लिखना ध्येय नहीं है। ध्येय है लिखना, मन की बात, भीतर की बात, भीतर से भीतर की बात और इस तरह की वह न तो सूक्ष्मबद्ध लगे न भाष्य, जो मन में समा सके, उसे वाणी तक लाओ। किन्तु भाषणबाजी मत करो, कलम को जीभ मत बनने दो।'' देश में आये उदारीकरण और भूमंडलीकरण ने गांवों की स्वरोजगार परक व्यवस्था को ध्वंस कर दिया है। गांव के किसानों की दीन-हीन दशा को चित्रित करते हुए वह चतुर्वेदी जी की सीख को नहीं भूलते, दृष्टव्य हैं, उनकी कुछ काव्य पंक्तियाँ-

गांव, इसमें झोपड़ी है, घर नहीं है
झोपड़ी के फटनियां है, डर नहीं है।
धूल उड़ती हैं, धुएं से दम घुटा है
मानवों के हाथ से मानव लुटा है।

आज़ादी के बाद देश में विकास की गति तो बढ़ी, लेकिन भयावह भ्रष्टाचार के कारण कुछ ही लोग इससे लाभान्वित हुए। शेष लोगों के जीवन-सार में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। समाज की विषमताएं कडुवाहटें, समाज का नग्न यथार्थ, विशेषकर ग्रामीण अंचल में आज भी कुछ नहीं बदला। वहाँ का विकास भी केवल कागजी है। गांव के अभागे और दरिद्र किशोरों की दु:खद स्मृतियाँ भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में नहीं, रोम-रोम में झलकती हैं-

तंग गलियों में कहीं बच्चे खड़े हैं
लाल हैं पर भाग पत्थर से लड़े हैं
धूल के हीरे नहीं, अब धूल हैं ये
फूल जंगल के नहीं, अब भूल हैं ये।

साठ के दशक में जब भवानी प्रसाद मिश्र के समकालीन रमाकांत श्रीवास्तव कानपुर से प्रकाशित श्रम एवं श्रमिकों को समर्पित सुचर्चित मासिक पत्रिका 'श्रमजीवी' का संपादन कर रहे थे, तो पुनर्निमाणाधीन देश और समय की मांग के अनुसार उन्होंने श्रम और श्रमिकों की महिमा-गरिमा के स्थापनार्थ कविताएँ स्वयं लिखी और तत्कालीन नये एवं पुराने रचनाकारों से ऐसी ही रचनाएँ लिखवाकर सपारिश्रमिक 'श्रमजीवी' में प्रकाशित की। एक आंदोलन चल पड़ा। इसे 'श्रमवाद' के नाम से अभिहित किया जाना चाहिए।

भवानी प्रसाद मिश्र ने भी ऐसी कविताएं लिखी, जो 'श्रमजीवी' में प्रकाशित होने के अलावा अन्य पत्र-पत्रिकाओं (आभिजात्य प्रयोगवादी नहीं) में छपीं। उस पुनर्निर्माण के युग को श्रम का अर्पण अनिवार्य था। जमीनी यथार्थ के ओजस्वी अनुगायक भवानी प्रसाद मिश्र की ऐसी कई कविताओं में 'भाई कुदाली चलाते चलो' बहुत ही लोकोत्साहित सिद्ध हुई। भारत सरकार के प्रकाश विभाग ने भी ऐसी कविताओं का एक संग्रह दिसंबर 1960 में प्रकाशित किया, जिसका नामकरण ही 'भाई कुदाली चलाते रहो' किया। कविता की कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत है-

भाई, कुदाली चलाते चलो
माटी का सोना बनाते चलो
खड़ा सामने दुख का परवत अड़ा
कुदाली का अपनी है लोहा कड़ा
झपाझप-झपाझप कुदाली चलें
ये परबत कटे और धरती पले
जहाँ जो लगे, तो लगाते चलो
माटी को सोना बनाते चलो
दायें जमाओ, बायें जमाओ
अपने पसीने की रोटी कमाओ
जालिम के मन में बनो डर समाओ
जुल्म की जड़ों को हिलाते चलो
माटी को सोना बनाते चलो।

उपर्युक्त संग्रह में भवानी प्रसाद मिश्र के अलावा रमाकांत श्रीवास्तव, प्रभाकर माचवे, हरिकृष्ण प्रेमी, ओम प्रभाकर तथा चंद्रशेखर मिश्र की श्रमवादी कविताएँ संग्रहीत की गयी थी।

वास्तव में भवानी प्रसाद मिश्र की काव्यचेतना व्यक्तिपरक बहुत कम है, समष्टिपरक अधिक है। परिणामतः उनकी काव्यात्मकाभिव्यक्ति अधिकाधिक सामाजिक आवेगों को स्वरित कर सकी है। इनकी कविता में सर्वत्र मानवतावादी स्वर की अनुगूंज और जीवन के सौंदर्य का उजास है और है सामाजिक संदर्भ में एक अभिनव मानवीय रागात्मकता शब्द संस्कार के प्रति सजगता संकुल मानव की मानसिक जटिलता जीवन की तल्खी और सपाटबयानी-ये सभी प्रवृत्तियाँ जनमानस पर व्यापक प्रभाव डालती है। उनके प्रमुख कविता संग्रह है-गीत फरोश, चकित है दुख, गांधी पंचशती, बुनी हुई रस्सी, खुशबू के शिलालेख, त्रिकाल संध्या, व्यक्तिगत, परिवर्तन जिए, तुम आते हो, इंदनमम, शरीर कविता, फसलें और फूल, मान-सरोवर दिन, संप्रति, अंधेरी कविताएं, तूस की आग, कालजयी, अनाम और नीली रेखा आदि।

भवानी प्रसाद मिश्र ने बच्चों के लिए 'तुको के खेल', संस्करण 'जिन्होंने मुझे रचा' और निबंध संग्रह 'कुछ नीति कुछ राजनीति' की भी रचना की। उन्होंने चित्रपट के लिए संवाद लिखे और मद्रास के ए.वी.एम. में संवाद निर्देशन भी किया। चित्रपट क्षेत्र से मोहभंग हुआ तो वह मद्रास से मुंबई आ गये और वहाँ आकाशवाणी के प्रोड्यूसर बन गये। फिर आकाशवाणी के दिल्ली केंद्र आ गये। महात्मा गांधी से प्रभावित होने के कारण वह जीवन के 33वें वर्ष से खादी पहनने लगे थे।

भवानी प्रसाद मिश्र को 'बुनी हुई रस्सी' कविता संग्रह पर सन् 1972 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। सन् 1981-82 में वह उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के 'संस्थान सम्मान' से सम्मानित किए गये। मध्य प्रदेश सरकार ने उन्हें सन् 1983 में 'शिखर सम्मान' से अलंकृत किया था।

भवानी प्रसाद मिश्र तेजस्वी व्यक्तित्व के धनी थे। वह गहन चिंतन, विनम्रता, सौजन्य और कर्म-साधना से परिपूर्ण थे। उनके व्यक्तित्व में मिठास भरी सहजता थी। हिंदी जगत को उन्होंने अपने सृजन से समृद्धि प्रदान की और अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के प्रकाश से उसे प्रदीप्त किया। 20 फरवरी 1985 को वह चिरनिद्रा में लीन हो गए।

ooo

हिमांशु जोशी से साक्षात्कार

आरती स्मित

प्रख्यात कथाकार और पत्रकार स्वर्गीय श्री हिमांशु जोशी का यह अंतिम साक्षात्कार है जो डॉ. आरती स्मित ने 'गगनांचल' के लिए विशेष रूप से लिया था।

यह साक्षात्कार जब लिया गया, जोशी जी बहुत अस्वस्थ थे किन्तु पत्रिका के नाम ने उन्हें साक्षात्कार देने के लिए उत्सुक कर दिया।

गगनांचल की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि

-संपादक

आरती : माना जाता है कि व्यक्तित्व गठन पर परिवार की जीवन-शैली और संस्कारों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। आप इस धारण से सहमत हैं?

हिमांशु : बिलकुल सहमत हूँ। मेरे पिता स्वतंत्रता सेनानी थे। मुझे इस बात का गर्व है। मेरे बचपन की कुछ यादों, जैसे कि पिता की जेलयात्राएँ और परिवार की यंत्रणाएँ आज भी ताजा हैं।

आरती : आपने छुटपन में ही गुलामी और आजादी का वह वातावरण देखा-भोगा। इसीलिए समाज की पीड़ा के प्रति इतने संवेदनशील हैं?

हिमांशु : शायद, कह नहीं सकता।

आरती : आपका जन्म उत्तराखंड के जोसयूड़ा गाँव में हुआ, फिर बचपन भी वहीं बीता होगा या कहीं और?

हिमांशु : हाँ, जन्म जोसयूड़ा में हुआ जो गांवनुमा कस्बा था, मगर बचपन गाँव से अधिक खेतीखान में बीता।

आरती : आरंभिक शिक्षा भी वहीं खेतीखान में हुई होगी?

हिमांशु : मिडिल तक की पढ़ाई खेतीखान में पूरी की, फिर आगे की पढ़ाई के लिए 1948 में नैनीताल आ गया। इंटरमीडिएट उस समय कॉलेज में हुआ करती थी।

आरती : आपका बचपन स्वतंत्रता आंदोलन देखते-सुनते बीता और तेरह वर्ष की किशोरावस्था में आप नैनीताल आ गए। पहली बार घर से दूर रहना, वह भी ऐसे समय में, जब देश ने आजादी का झंडा तो लहरा दिया, मगर आंतरिक स्थिति चरमरा रही थी। बापू की हत्या भी उसी वर्ष हुई थी, जिसके कारण देश में तनाव की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। इन विसंगतियों को भले ही दिल्ली अधिक झेल रही थी, मगर इनका कुछ प्रभाव तो वहाँ भी पड़ा ही होगा?

सम्पर्क: द्वारा गोराचंद कोले, प्रथम तल, गली नं. 5, काली मंदिर वाली गली, गणेश नगर, पांडव नगर कॉम्पलेक्स, दिल्ली-110092

हिमांशु : हाँ, निश्चित तौर पर। मगर, मैं ये सब गहराई से समझ पाने के लिए छोटा था। गाँव से आया था। नैनीताल ने बहुत कुछ दिया है मुझे। कब यह अजनबी शहर मेरा अपना हो गया, पता ही नहीं चला। मेरे घर की स्थिति इतनी भी अच्छी नहीं थी कि पिताजी मुझे हॉस्टल रखकर पढ़ाते। हालाँकि उन्होंने मना नहीं किया, मगर मेरी खातिर खेत या जमीन गिरवी में रखी जाए, मुझे मंजूर नहीं था, सो पढ़ाई का कुछ खर्च निकालने के लिए ट्यूशन भी करता था। इन चुनौतियों से मेरा हौंसला पस्त नहीं हुआ, मगर आगे पढ़ पाने का सपना सपना ही रह गया। 1951 में पिताजी की मृत्यु के बाद बड़ी मुश्किल से दो वर्ष और रहा, डिग्री कोर्स तक, फिर दिल्ली आ गया।

आरती : पहाड़ के शांत और हरे-भरे वातावरण से निकलकर कोलाहल के नगर दिल्ली आ जाना, अटपटा नहीं लगा आपको?

हिमांशु : नहीं। यह मेरा अपना निर्णय था। मैं जानता था कि ज़िंदगी को पहाड़ पर रहकर व्यापक फलक नहीं मिल सकता। क्या था वहाँ रोजगार के नाम पर?? वहाँ भी संघर्ष ही कर रहा था। एक दिन दृढ़ निश्चय किया और बैठ गया दिल्ली आनवाली गाड़ी में। साथ में संपत्ति के नाम पर कुछ भी नहीं। सिर्फ हौंसला था मेरे पास। क्या करूँगा, क्या नहीं, तय नहीं था। मगर मैंने हमेशा चुनौतियों को स्वीकारा है और विश्वास के साथ जीता है।

आरती : फिर तो शुरूआती दिन बड़े कष्ट भरे होंगे?

हिमांशु : हाँ, थे। मगर मैंने कभी परवाह नहीं की। मैंने छोटे-बड़े काम किए, ईमानदारी की रोटी कमाई और मजदूरों के संग कुछ दिन समय भी गुजारे। बहुत कुछ किया। दुकानों पर भी काम किया। मुसीबतों से घबराकर भागा नहीं, न ही इसका ख्याल आया।

आरती : कुछ दिनों पहले आपका बहुचर्चित उपन्यास 'तुम्हारे लिए' पढ़ रही थी। एकबारगी लगा कि इसकी कहानी कहीं न कहीं आपके जीवन से जुड़ी है। नायक विराग में आप दिखते रहे। वे ही परिस्थियाँ भी, जो आपके किशोर जीवन का हिस्सा रहीं, सब कुछ इस उपन्यास में जीवंत है।

हिमांशु : यह उपन्यास मेरे दिल के करीब है। सच है कि इसे लिखते हुए मेरे समय का नैनीताल मेरे अंदर जीवंत हो उठा, मगर ये मेरी आपबीती नहीं। यह सवाल तुम ही नहीं, तुमसे पहले कई पाठक कर चुके हैं। अब मैं इसके कथानक को कोरी कल्पना तो नहीं कह सकता। यथार्थ के साथ उसका ताना-बाना बुना जाता है, तभी साहित्य की संरचना होती है।

इस उपन्यास को लेकर मेरे पास सैंकड़ो ऐसे खत आए जिनमें पाठकों ने इसे अपनी कहानी मानी है और स्वीकारा है कि ऐसे उनके साथ घटित हुआ है। कुछ ने तो इसे दसियों-बीसियों बार पढ़ा है और एक ने तो ढाई सौ बार। अब बताओ। वैसे साहित्य की सार्थकता भी यही है कि पाठक उसमें खुद को देखने लगे।

आरती : इसे पढ़ते हुए लगा, नैनीताल से बड़ा गहरा लगाव रहा है आपका...

हिमांशु : नैनीताल की स्मृतियाँ मुझे ऊर्जा देती हैं। जैसे बताया था, 1948 के जुलाई महीने में आया था मैं। इंटर में एक टेस्ट देना था। उसे पास करने के बाद दाखिला मिल गया। छोटा था, मगर फिर भी लगा कि पहली मंजिल पार कर ली है। इसी पर मेरा भविष्य टिका था। नैनीताल को भूल ही नहीं सकता। वह मेरा सर्वप्रिय स्थल रहा।

आरती : नैनीताल मेरे लिए भी स्वप्न नगरी-सा है। कई बार जा चुकी हूँ, मगर हर बार कुछ नया रूप दिखता है उसका। उस समय नैनीताल का वातावरण कैसा रहा होगा? मतलब आज के जैसा ही या कुछ अलग।

हिमांशु : आज से हटकर। तब एक दूसरा ही नैनीताल था। उस वक्त इतनी भीड़ और शोर-शराबा नहीं था, न ही पर्यटन स्थल के रूप में यहाँ इतना व्यापारीकरण हुआ था। आज तो बाहर के लोगों ने ही दुकानों, होटलों और तमाम व्याापारिक चीजों का अड्डा बना दिया है। तब अंग्रेजों के गए एक साल भी नहीं बीता था। सुंदर-सुंदर बड़े बंगलों के मालिक वे ही थे। अंग्रेजी स्कूलों में उनके ही बच्चे पढ़ते थे। पहाड़ और झील का अपना आकर्षण तो था ही, रात को जब बत्तियाँ जल उठतीं तो उनकी रोशनी में वह सचमुच स्वप्न नगरी लगता। मैंने इस उपन्यास के चौदहवें संस्करण की भूमिका में इन बातों का जिक्र भी किया है। तुम देखना।

आरती : दिल्ली ने क्या दिया आपको तब?

हिमांशु : मैं दिल्ली खाली जेब अपनी मर्जी से आया था। मेरे पास कुछ सपने थे, हौंसला था, दृढ़ संकल्प और साहस था। दिल्ली ने मेरे सपने साकार किए इसी के बल पर मैंने अपनी जगह बनाई। 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में लंबे समय तक रहा, फिर 'वागर्थ' से भी जुड़ा। हर जगह ईमानदारी से अपना दायित्व निभाया। साहित्य सृजन कर पाया। यह यहीं इसी शहर में किया। इस जगह ने मुझे पहचान और सम्मान दिया है। मैं दिल्ली का ऋणी हूँ। उम्र का अधिकांश हिस्सा तो यही बिताया मैंने। यह सही है कि नैनीताल ने मुझे भरा है। बहुत कुछ दिया है, मगर अब वह नैनीताल रहा कहाँ? उससे आज भी प्रेम है, अब भी जाता हूँ तो यादें उन जगहों की ओर खींचती हैं।

आरती : नैनीताल से जुड़ी कोई स्मृति?

हिमांशु : जीवन के कोमलतम पल नैनीताल में बीते। पूरी किशोरावस्था। पाँच वर्ष रहा वहाँ वसंत-पतझड़ कब आया-गया, पता नहीं। गुरखा लाइंस, मल्ली ताल, तल्ली ताल, माल रोड, कॉस्थवेट हॉस्पिटल और कुछ-कुछ जगहों की यादें बनी हुई हैं। जाता हूँ तो मन ढूँढता है पुराने नैनीताल को।

आरती : 'कगार की आग' की बात करूँ या 'अंततः एवं अन्य कहानियाँ' की, पाठक बिना पूरी पुस्तक खत्म किए चैन नहीं पाता। 'कगार की आग' पर तो धारावाहिक नाटक भी लिखा आपने। गजब! पिछले दिनों 'रथ चक्र' की वीडियो देख रही थी। आपकी कई कहानियों पर वीडियो बन चुकी है, हम जब चाहें देख सकते हैं। आपकी एक कहानी 'गठरी' किसी पत्रिका में पढ़ी मैंने, वृद्धों की वर्तमान दुरावस्था का कितना मार्मिक चित्र खींचा है आपने।

हिमांशु : साहित्य समाज का दर्पण है। अगर हम समाज के वर्तमान मुद्दों या समस्याओं से आँखें मूँदे सालों पुराने बातें करते रहें तो हम अपने रचना-कर्म के साथ न्याय नहीं कर रहे हैं, न ही पाठकों के साथ।

आरती : आप्रवासी भारतीयों की कहानियाँ का आपने जो संपादन किया, उन कहानियों से गुजराते हुए, आपकी

छवि एक सतर्क संपादक के रूप में उभरती है। यह बतौर पाठक कह रही हूँ, क्योंकि मैंने अन्य संपादित पुस्तकें भी पढ़ी हैं। इसमें विभिन्नता है, आप्रवासी भातीयों के माध्यम से समग्र विश्व में लिखी जा रही हिंदी को, साथ ही वहाँ की स्थिति-परिस्थितियों एवं कालक्रमों में घटित संवेदनशील क्षणों को पकड़ने की सजग कोशिश नजर आती है। चौदह देशों के आप्रवासी भारतीय लेखकों की कहानियों को शामिल किया है आपने। इतने व्यापक फलक पर समेटना, संजोना, रूपाकार देना इतना भी आसान नहीं रहा होगा।

हिमांशु : आसान नहीं, पर असंभव भी नहीं। विभिन्न देशों की यात्राओं के दौरान यह ख्याल आया, फिर योजना बनी और कार्य शुरू हो गया। लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिए कि हम करना क्या चाहते हैं। पाठक वर्ग को हम क्या दे रहे हैं।

आरती : आपकी कहानियाँ समासामयिक विषयों से जुड़ी होने के साथ ही अपने अंतस में संवेदना का स्रोत बसाए रहती है। शायद इसलिए कोई भी संवेदनशील पाठक इसे बार-बार पढ़ना चाहता है...मेरी तरह

हिमांशु : कोई भी रचना अपना रास्ता स्वयं बनाती है। जब कोई घटना या पल रचनाकार की संवेदना को झकझोरते हैं, रचना फूट पड़ती है, फिर वह कहानी हो या कविता। रचना का उद्देश्य यही है कि पाठक को अंतर तक छू जाए।

आरती : आम पाठक आपको बड़े कथाकार या उपन्यासकार के रूप में जानते हैं, कम ही लोगों को मालूम है कि आपने बच्चों के लिए भी लिखा और अच्छा-खासा लिखा। जहाँ तक मुझे मालूम है, आपने दो बाल उपन्यास और कहानी संग्रह के साथ ही बच्चों के लिए लोककथाओं की बड़ी दुनिया भी दी है। इस ओर कैसे रुझान हुआ?

हिमांशु : सब साथ-साथ चलता रहा। व्यस्क सृजन के साथ-साथ ही। कभी सोचकर, बहुत समय की योजना बनाकर नहीं। जब भाव उमड़े, जिसके लिए उमड़े, जिस रूप में उमड़े, लिख डाला। बच्चों के क्रियाकलाप ही कथा बुनते हैं, हम तो बस शब्द बुनते हैं और उसे एक फ्रेम में बिठाते हैं।

आरती : 'भारत रत्न : गोविंद वल्लभ पंत' पर लिखी जीवनी के लिए आपको राजभाषा विभाग, बिहार द्वारा पुरस्कृत और सम्मानित भी किया गया।

हिमांशु : पुरस्कार और सम्मान सोचकर तो कभी लिखा नहीं, मगर पंतजी के व्यक्तित्व से प्रभावित जरूर रहा। बच्चों को हमारे महापुरुषों की जीवनगाथा आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है, बस बात दिमाग में आई और लिख डाला।

आरती : कविताएँ आरंभिक दिनों में लिखीं या बाद के दिनों में?

हिमांशु : अभी बताया न! सारी विधाएँ साथ-साथ चलती रही हैं। लेकिन सबसे पहले कहानी ही लिखी थी और उसे दिखाने में संकोच करता था। वो तो जैनेन्द्र जी न टोकते तो दिखाता भी नहीं, यों ही हाथ में मोड़कर पकड़े रहता। उन्होंने पढ़ा और फिर मुझे बुलाकर दरियागंज भेज दिया कि अमुक को दे देना। मैं संकोच करता रहा, मगर उनके कहने में इतना बल था कि गया, जाकर दे आया। कहानी छपी, चर्चा में आई। फिर मेरा संकोच जाता रहा। साहित्य के द्वार खुलते चले गए। हाँ, ये अलग बात है कि राह में पत्थर बिछानेवाले जैसे आज हैं, उस समय भी हुआ करते थे, मैंने कभी किसी बाधा की परवाह नहीं की, कभी किसी खेमेबाजी में नहीं रहा। चुनौतियों का हमेशा डटकर सामना किया। जो था, जो है, सबके सामने है। अब रोग से सामना कर रहा हूँ।

आरती : आपके शुभ स्वास्थ्य की कामना अपनी और 'गगनांचल' की ओर से करती हूँ।

○○○

अपना और पराया

डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरूण'

पुलिस चली गई और चेतावनी देकर मैंने उसे भी जाने दिया! थोड़ी ही देर बाद अध्यक्ष जी कॉलेज आए और बोले—''क्या बात प्रिंसिपल साहब! आपने आज उस गुण्डे को छोड़ क्यों दिया?... वही तो 'माउजर' था, पुलिस को दे देते तो कम-से-कम जेल की चक्की तो पीसता बदमाश।

ज़िंदग़ी के खेल भी अजीब होते हैं और हम सब जाने-अनजाने ज़िंदग़ी के इन खेलों को खेलते रहते हैं।

अनिल अभी-अभी तो मेरे चरण छूकर गया है और मुझे ज़िंदग़ी के गोरखधन्धे के इस भाव में उलझाकर बेचैन कर गया है। मेरी यादों में कई साल पहले घटी इस घटना की फिल्म रही है, जिसका हीरो यह अनिल ही था, लेकिन तब उसकी प्रसिद्धि 'माउजर' नाम से थी।

मैं नगर के एक मात्र पोस्टर ग्रेजुएट कॉलेज का प्राचार्य था और पूरे नगर में मुझे बेहद 'कड़क' और अनुशासन प्रिय प्राचार्य के रूप में जाना जाता था! एक दिन कॉलेज की प्रबंध समिति के अध्यक्ष मेरे कार्यालय में आए और बोले—''सुना है 'माउजर' नाम का कोई गुण्डा अक्सर कॉलेज में आता है?''

''मेरी जानकारी में तो आज तक ऐसे किसी गुण्डे के आने की बात है नहीं! फिर भी, आप निश्चिन्त रहें, मेरे होते तो गुण्डे की हिम्मत कॉलेज में आने की है नहीं।''—मैंने पूरे आत्मविश्वास के साथ उत्तर दिया, तो वे हँसते हुए बोले—''यह तो सब जानते हैं प्रिंसीपल साहब। ...फिर भी आप जरा सावधान अवश्य रहिएगा, क्योंकि वह हर वक्त अपने पास हथियार रखता है और 'माउजर' के नाम से सब डरते हैं।''

अध्यक्ष जी चले गए और बात आई-गई हो गई।

कुछ दिन बीते होंगे कि मै अपने कार्यालय में बैठा था, तभी एक छात्रा ने आकर बताया कि एक गुण्डा मैदान में कुछ छात्रों के साथ बैठा है और अश्लील फब्तियाँ कस रहा है। छात्रा को मैंने कहा कि इशारे से मुझे बताए कि गुण्डा कौन सा है।

मैं कॉलेज के मैदान में पहुँचा और जाते ही उस गुण्डे की कमीज का कॉलर पकड़ कर उसे खड़ा कर दिया! वह कुछ सोच-समझ पाता, उससे पहले ही एक जोरदार तमाचा मैंने उसकी गाल पर जड़ दिया और पूरे मैदान में घसीटते हुए उसे अपने दफ्तर में ले आया!

जाने क्या जादू हुआ कि वह गुण्डा हतप्रभ सा खिंचा चला आया, कतई प्रतिरोध नहीं कर पाया!

सम्पर्क: 74/3, न्यू नेहरू नगर, रूड़की उत्तराखंड-247667

मेरे दफ्तर में शिक्षकों और कर्मचारियों के साथ ही विद्यार्थियों की भीड़ जमा हो गई! मैंने पुलिस थाने में फोन कर दिया और पुलिस भी तुरन्त आ गई।

तभी एक जादू और हुआ।

पुलिस के आते ही उस गुण्डे ने मेरे चरण पकड़ लिए और गिड़गिड़ाते हुए बोला—''सर! मुझे माफ कर दीजिए! मैं आईन्दा कभी ऐसी गलती नहीं करूँगा, सर!...मैं अपने माँ-बाप की कसम खा कर आपको वचन देता हूँ, सर! माफ कर दीजिए! आप जो चाहें, वह सजा मुझे दे लीजिए, लेकिन पुलिस को मत सौंपिए, सर!... मेरा जीवन बरबाद हो जाएगा, सर!''

वह बुरी तरह रोते हुए वह मेरे चरणों में लेट गया! जाने कौन सी प्रेरणा मेरे भीतर जगी कि मैंने पुलिस इंस्पैक्टर से कहा—''ठीक है इंस्पैक्टर साहब! मैं इसे माफ कर रहा हूँ।... आपका शुक्रिया... मैं इसके खिलाफ कोई केस दर्ज नहीं करना चाहता।

पुलिस चली गई और चेतावनी देकर मैंने उसे भी जाने दिया! थोड़ी ही देर बाद अध्यक्ष जी कॉलेज आए और बोले—''क्या बात प्रिंसिपल साहब! आपने आज उस गुण्डे को छोड़ क्यों दिया? ... वही तो 'माउजर' था, पुलिस को दे देते तो कम-से-कम जेल की चक्की तो पीसता बदमाश।

मैंने कहा—''मुझे 'माउजर' या और किसी का कोई पता नहीं, उसने अपने माँ-बाप की कसम खा कर वादा किया कि आइन्दा कभी इस कॉलेज में झाँकेगा भी नहीं। मेरी शरण में गिड़गिड़ा रहा था, इसलिए मेरी आत्मा ने कहा कि इसे क्षमा कर दिया जाए, तो मैंने कर दिया।''

लगा कि अध्यक्ष जी को मेरा उसे क्षमा-दान दिया जाना रास नहीं आया, लेकिन वे कह कुछ नहीं पाए।

और आज, वही वर्षों पुराना 'माउजर' अनायास ही जब मुझे मिला, तो अपने और पराए की पहचान मुझे करा गया है।

एक कार्यक्रम में आज सुबह देहरादून जाना पड़ा! कार्यक्रम काफी देर तक चला और लौटते समय बेहद गर्मी के कारण मैं थकान से चूर सा हो रहा था! बस अड्डे पर आया, तो एक बस रूड़की जाने को तैयार खड़ी थी, इसलिए मैं दौड़ कर बस में चढ़ने लगा।

कण्डक्टर बोला—''साहब! बस में सीट नहीं है, खड़े होकर चलना पड़ेगा... दूसरी बस से आ जाना। मुझे लगा कि दूसरी बस के इन्तजार में कब तक इस सड़ी गर्मी में खड़ा रहना पड़े, इसका क्या भरोसा? और लोग भी तो खड़े हैं... मैं भी खड़ा होकर पहुँच जाऊँगा।''

बस चल पड़ी और कण्डक्टर सवारियों को टिकट बाँटने में मशगूल हो गया! सड़ी गर्मी और उमस से बड़ा बुरा हाल था और सवारियाँ बस में ठसाठस भरी हुई थी!... मैं पसीने से लथपथ जैसे-तैसे खड़ा था।

तभी बस में एक आवाज गूंजी—''इधर आ जाइए गुरु जी। सब की नजरें एकाएक आवाज की ओर घूम गई। तभी एक आदमी ने मेरे कंधे पर हाथ रखते हुए कहा—''देखिए, श्रीमान जी! शायद वो सज्जन आपको बुला रहे हैं?''

मैंने भी कौतूहल भरी दृष्टि से उधर देखा, एक युवक अपनी सीट से खड़ा हाकर मुझे ही बुला रहा था। मैंने उस युवक को देखा, तो कुछ क्षण अवश्य लगे, लेकिन याद आ गया कि यह तो 'माउजर' है।

मैंने संकोच से कहा—''अरे...रे! बैठे रहो, बेटा! कोई कष्ट नहीं है मुझे! तुम आराम से बैठो।'' लेकिन वह तो खड़ा ही रहा और बोला—''नहीं, नहीं, गुरु जी! आप इधर निकल आइए... आ जाइए।'' और बीच की सवारियों से कह कर उसने मुझे उस सीट पर बिठा दिया, जिसपर वह खुद बैठा हुआ था!

मैंने बैठ कर पूछा—''तुम्हारा नाम तो...?'' और वह तुरन्त बोला—''सर! मेरा नाम अनिल है...अनिल कुमार सिंह।''

मैंने उत्सुकता पूर्वक पूछा—''क्या करते हो, बेटे अनिल?''—तो अनिल ने अत्यन्त विनम्रता पूर्वक बताया—''सर! मैं एडवोकेट हूँ और देहरादून में प्रैक्टिस कर रहा हूँ। रोज रूड़की से सुबह आता हूँ और शाम को लौटता हूँ।''

अनिल की बात सुनकर मुझे बहुत खुशी हुई कि चलो, सम्मान के साथ अपना जीवन-यापन तो अनिल कर रहा है। बस चली जा रही थी और मैं चुप था!

तभी अनिल ने बेहद भावुक और कृतज्ञ होकर कहा—''सर! मैं तो जीवन भर आपका शुक्रगुजार रहूँगा, क्योंकि आपने ही मुझे नया जीवन दिया है। सर! आप नहीं जानते कि जिस दिन मैं आपके कॉलेज में गया था, तब भी मेरी जेब में हथियार था।''

मेरे मुँह से अनायास निकला—''फिर तुमने क्यों नहीं मुझ पर

हमला किया?''—अनिल बोला—''यकीन मानिए, सर! जब आपने निडर होकर मेरा कॉलर खींचते हुए मुझे उठाया और जोरदार तमाचा मारा, तो मुझे कुछ सूझा ही नहीं...सच मानिए, सर! आप जब मुझे मैदान में घसीटते हुए ला रहे थे, तो मैं भौचक्का सा खिंचता चला आया!... होश तो मुझे तब आया, जब पुलिस वहाँ आ गई थी।''

मैं चुपचाप अनिल की बात सुन रहा था। अनिल बोला—''मुझे लगा कि अगर आपने मुझे पुलिस को सौंप दिया, तो तलाशी में अवैध हथियार पकड़ा जाने पर जेल जाना पक्का है।...सच मानो, सर! भगवान को याद करके मैंने आपके चरण पकड़े और माफी माँगी।''

मैं अभी भी चुपचाप उसकी बातें सुने जा रहा था! भावुक होकर अनिल बोला—''सर! उसी दिन मैंने कसम खाई कि गुण्डागर्दी का यह रास्ता छोड़ दूँगा और तब मैंने बी.ए. तथा एल.एल.बी. किया और एडवोकेट बन गया हूँ।''

मेरी खुशी का ठिकाना नहीं था और मैंने अनिल के सिर पर आशीर्वाद देते हए अपना हाथ रख दिया, उसने मेरे चरण छू लिए! भर्राई आवाज में अनिल बोला—''सर! आप मेरे जीवन-दाता हैं। मैं तो अभी तक आपको अपना गुरु मानता आया हूँ।—मैं बोला—''लेकिन तुम तो फिर कभी मिले ही नहीं?''—अनिल बोला—''सर! मैं तो आपको पूजता हूँ, एकलव्य की तरह... लेकिन आज एक सच बताना चाहता हूँ। मुझे आपको 'पाठ' पढ़ाने के लिए कॉलेज में आपके ही अध्यक्ष ने भेजा था...मैं खुद नहीं आया था।''

अनिल मुझे घर तक छोड़ कर लौटा है और मैं अपने अध्यक्ष जी के दोगलेपन पर हतप्रभ खड़ा हूँ।

○○○

न्यूयॉर्क भारतीय कौंसलावास में 'गगनांचल' साहित्य सम्मेलन

स्मृति में कोरिया

विजया सती

भारत जितनी तो नहीं, पर कोरिया की आबादी भी सघन है। एक सुव्यवस्था और उसे बनाए रखने का भाव यहाँ भरपूर है। कोरिया एक छोटा देश है –चार से पांच घंटे में देश के ठन्डे पहाड़ी उत्तरी भाग से दक्षिणी समुद्र तट जा पहुंचते हैं। पूरे देश को समान रूप से सुन्दर बनाए रखने की कोशिश पग-पग पर जाहिर होती है।

जब हम अपने ही देश में या फिर सुदूर विदेश में पर्यटक की तरह जाते हैं, तो जैसे रंगीन विज्ञापनी पैम्फलेट्स के भुलावे में भी आते हैं। किसी भी स्थान या देश के जीवन को देखने-जानने-समझने के लिए थोड़ा लंबा अरसा तो चाहिए ही। केवल देहरी छू आना ठीक से जानना नहीं होता, शेष चाहे कुछ भी होता हो।

सच है कि पैकेज टूर के जमाने में चाहत भी सीमित होकर रह गई है, किन्तु सुखद है कि हमें दक्षिण कोरिया को पैकेज टूर की सरसरी नजर के स्थान पर भरपूर देखने और जानने का अवसर मिला! यह तब संभव हुआ जब मैं राजधानी सिओल में विदेशी भाषाओं की प्रसिद्ध हान्कुक यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरन स्टडीज के हिन्दी विभाग में एक वर्ष पढ़ाने के लिए गई।

फरवरी की खुशनुमा-सी दोपहर थी जब इंचन हवाई अड्डे से, हान्कुक विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के सहायक के साथ, लंबा रास्ता तय कर हम दक्षिण कोरिया की राजधानी सिओल शहर के लगभग केंद्र में स्थित विश्वविद्यालय परिसर पहुंचे। उन्मुक्त प्रवेश द्वार से भीतर आकर प्रोफेसर्स बिल्डिंग के पास आ उतरे। इस आठ मंजिला इमारत में – कांफ्रेंस हाल, डाइनिंग हाल, बैंक के अतिरिक्त प्रोफेसर्स के अध्ययन कक्ष भी हैं तथा सातवीं और आठवीं मंजिल पर प्रोफेसर्स आवास हैं – छात्र ने जानकारी दी। अगले एक वर्ष यही हमारा ठिकाना रहा – तमाम देशों के प्रोफेसर पड़ौसी बने – वियतनाम, ताईवान, थाईलैंड, ब्राजील, अमेरिका, जापान, कैनेडा, चीन आदि-आदि।

दोपहर में हम आवास में पहुंचे थे, कुछ व्यवस्थित हुए – फिर पहले दिन की शाम के लिए निमंत्रण था –ठंडी हवाओं के साथ सड़क-पार भर की दूरी पर स्थित भारतीय रेस्तरां – 'गंगा' में। विभागाध्यक्ष प्रोफेसर हावन कू ने पिछले भारतीय प्रोफेसर डॉ शर्मा की विदाई और हमारा स्वागत यहीं आयोजित किया था। रेस्तरां लद्दाख के रिनचेन जेम्स चलाते हैं – कोरियन पत्नी है उनकी।

ठेठ भारतीय भोजन के स्वाद का सुख – समोसा, चाय, छोले, पुलाव, परांठा और गुलाब जामुन! विभागीय सहयोगियों से

सम्पर्क: एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दू कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय कैम्पस, दिल्ली-110007

परिचय के क्षण – सिओल में पहला दिन रोचक तरीके से अंत की ओर पहुंचा।

दो कमरों का हमारा सुव्यवस्थित आवास इस मायने में खास था कि शयन कक्ष की बड़ी खिड़की घनी आबादी को पार कर, पर्वत शृंखलाओं के पीछे से उदित होते सूर्य के दर्शन कराती थी। बैठक की एक ओर बड़ी खिड़की पूरे बाजार का दृश्य सम्मुख रखती थी और बैठक के दूसरे सिरे पर बहुत ही संक्षिप्त किन्तु समग्र रसोईघर बना था, खाने की मेज भी साथ ही जमी थी।

लिफ्ट से नीचे उतर कर परिसर में स्थित कुछ पुरानी और कुछ नई इमारतों में हम कक्षा लेने जाते – बस पांच-सात मिनट की चहलकदमी करते हुए। पहली ही बात जो परिसर में मुझे बहुत भाई वह यह थी कि कोई भारी भरकम लौह द्वार विश्वविद्यालय की चौकसी नहीं करता था – गॉर्ड जरूर थे किन्तु हम कई ओनों-कोनों से विश्वविद्यालय में भीतर-बाहर आ-जा सकते थे।

सिओल में हमारी पहली घुमक्कड़ी एक पैकेज के कारण ही संभव हुई – किन्तु वह केवल भाग-दौड़ वाली उडती-उड़ती यात्रा से कितनी अलग थी! मेल पर अचानक सन्देश मिला कि हम एक खास यात्रा में आमंत्रित हैं जो विदेशियों को कोरिया से परिचित कराने के उद्देश्य से आयोजित की जा रही है। हम नए देश-परिवेश में अभी बहुत जानकार नहीं थे, ऊपर से प्रश्नाकुल भारतीय मन – इस निमंत्रण का क्या अर्थ है? क्यों? कहां? कैसे जाना है – प्रश्नों की झड़ी के बीच आयोजकों ने बताया कि विश्वविद्यालय की वेबसाईट और भारतीय दूतावास के सौजन्य से वे हम तक पहुंचे हैं, यह 'हेलो इंचन' कार्यक्रम है जिसमें दो दिन हमें कोरिया के 'इंचन' क्षेत्र से मिलवाया जाएगा। अंततः बहुत किन्तु-परन्तु के बाद हम इस यात्रा में शामिल हुए – जो हमारे कोरिया प्रवास की मधुरतम स्मृतियों में से एक है!

एक छोटे समूह के रूप में यह यात्रा जिस ऑफिस से शुरू हुई, वहां एक रोचक खेल के तहत सभी विदेशी यात्रियों को एक कोरियाई साथी से मिलवाया गया जिसने पूरी यात्रा में प्रतिपल पथ-प्रदर्शक की भूमिका बखूबी निभाई। कोरिया में अंग्रेजी सहज भाषा नहीं है – विशेष रूप से इस यात्रा में हम जिस द्वीप पर गए, वहां के जीवन में अंग्रेजी का कोई प्रवेश न था, हमने नदी किनारे बने जिस पुराने किले का इतिहास जाना उसे बताने वाली गाइड की भाषा कोरियन ही थी। हमें जिन दो पारंपरिक कोरियाई विशेषताओं से रूबरू कराया गया, उनके प्रस्तुतकर्ता अंग्रेजी जानते ही नहीं थे। ऐसे में हमारे कोरियाई साथी कितने महत्वपूर्ण हो उठे थे, अंदाज लगाया जा सकता है। यात्रा की शुरुआत में ही कोरियाई भाषा और अपनी भाषा के प्रचलित शब्दों का आदान-प्रदान रोचक था – हमने अपने साथी को सिखाया 'धन्यवाद' और 'नमस्कार' जिनके कोरियाई रूपांतर थे – 'खाम्सा हम्निदा' और 'अन्यंग हासेयो'।

बस में ही ठेठ कोरियाई नाश्ते के बाद (हमसे पूछ लिया गया था – शाकाहारी हैं या मांसाहारी) इस यात्रा में हमें सबसे पहले प्रसिद्ध कोरियाई 'राईस केक' और सुन्दर नमूनों से सज्जित रंग-बिरंगी घास की चटाई बनाना सिखाया गया। सब काम एकदम व्यावहारिक तौर पर हमारे हाथ में सामग्री देकर हमसे ही करवाए गए। जो हम सबने बनाया, वह हमें सस्नेह भेंट भी किया गया। दोपहर बाद यात्रा का महत्वपूर्ण हिस्सा शुरू हुआ – यह था इंचन द्वीप के प्रसिद्ध बौद्ध मंदिर में सबका संक्षिप्त प्रवास। यहाँ सबने भिक्षु गुरु से संवाद किया। उन्हें कोरियाई भाषा में 'सिनिम' कहते हैं – वे कोरियाई भाषा में बौद्ध मंदिर के रहन-सहन और विशेष दृष्टि को बताते रहे – जिसका अनुवाद किया जाता रहा। बौद्ध मंदिर की विशेष 'टी सेरेमनी' हुई – रात का अत्यंत सादा भोजन, कुछ संवाद और लकड़ी के फर्श पर लगे गद्दों पर जल्दी ही सोने का आग्रह! बहुत सवेरे – मंदिर में परिक्रमा, व्यायाम और ध्यान के बाद सिनिम के साथ निकटवर्ती पगडंडियों से होकर उच्च पर्वतीय अंचल की सैर – इस समय सिनिम ने सभी की जिज्ञासाओं का समाधान दिया।

कोरिया प्रवास में मुझे अक्सर यह बोध होता रहा कि इस देश के लिए विदेशी कुछ खास महत्व जरूर रखते हैं। उनके लिए यहाँ खास शटल बसें चलाई गई हैं जो लोकप्रिय पर्यटन स्थलों पर बहुत ही कम कोरियन वॉन (कोरियाई मुद्रा) के टिकट पर विदेशियों को घुमाती हैं – परम्परागत कोरियाई गाँव की सैर तो निःशुल्क ही कराती हैं, केवल अपना पासपोर्ट दिखाना है – नियत समय पर बस में सवार हो जाइए – गंतव्य पर उतरिए – नियत समय पर बस वापस घर की ओर! पूरा देश जैसे अपने प्राकृतिक, सांस्कृतिक वैभव से प्रवासी विदेशियों को अवगत कराने को उत्सुक बना रहता है। कोई त्यौहार हो, कोई मेला, कोई सार्वजनिक अवकाश – सिओल के विदेशी खूब सूचनाएं पाते हैं कि वे आएं और उसका हिस्सा बनें! सिओल में सांस्कृतिक कार्यक्रमों की भरमार रहती है – और राजधानी अपनी नृत्य-संगीत कला से विदेशियों के जीवन को भर देने को जैसे आतुर रहती है। आज के समय में जिसे 'हैंड्स ऑन'

अनुभव कहते हैं – वही दिया जाता है – उनका परिधान पहन कर देखो – उनका नृत्य सीखो – उनके वाद्य बजाओ! चांदनी रात में राजमहल देखने का अवसर हो या नववर्ष की पूर्वसंध्या – विदेशियों को निमंत्रण दिया जाता है कि वे पारम्परिक कोरियन वेशभूषा पहन कर आएं और निशुल्क प्रवेश पाएं!

सिओल से बाहर 'सुवान' नाम का स्थान सैमसंग कम्पनी में विदेशी नागरिकों का मुख्य आवास है। इनमें भारतीयों की संख्या अधिक है। कोरिया में भारतीय छात्र और अध्यापक भी पर्याप्त मात्र में हैं। भारतीय छात्र जब किसी भी छात्रवृत्ति पर कोरिया आते हैं तो सबसे पहले कोरियाई भाषा का अध्ययन करना उनके लिए अनिवार्य होता है – पढ़ाई और जीवन दोनों को सरल बनाने के लिए यह जरूरी भी है। कोरिया में अध्ययन का माध्यम कोरियन है। कोरियाई छात्र भी जब किसी विदेशी भाषा का अध्ययन करते हैं तो उस देश में जाकर भाषिक अभ्यास को दुरुस्त करना उनके पाठयक्रम का अनिवार्य हिस्सा होता है।

कोरिया में एक और बात ने मेरा ध्यान खींचा – जब कोई कोरियाई कंपनी अपने कर्मचारी को भारत भेजना चाहती है तो वह उसे सही तरीके से तैयार करती है। ऐसी दो विशेष हिन्दी कक्षाएं लेने का मौका मुझे मिला। ह्यूंदई कंपनी के लिए काम करने भारत जाने वाले दो छात्र और कोरियन बैंक की भारत में खुलने वाली शाखा में काम करने जाने को तैयार पांच महिलाएं जिन्होंने कॉलेज स्तर पर कभी हिन्दी का अध्ययन किया था, विशेष हिन्दी कक्षाओं में आए। भारतीय भाषा, परिवेश, जीवन, रहन-सहन, खान-पान – सभी कुछ तो जान लेना चाहते हैं कोरियाई भारत जाने से पहले! कंपनी भी आरंभिक तैयारी की पतवार हाथ में देकर उनकी जीवन नौका को भारतीय जनजीवन के सागर में उतार देती है – उनकी हिम्मत तथा 'गट्स' की पहचान करती है। यह सुविचारित योजना का ही हिस्सा होता है कि वे भारत पहुंचें और अपनी राह स्वयं तलाशें – घर, भोजन, भ्रमण सभी की।

भारत जितनी तो नहीं, पर कोरिया की आबादी भी सघन है। एक सुव्यवस्था और उसे बनाए रखने का भाव यहाँ भरपूर है। कोरिया एक छोटा देश है –चार से पांच घंटे में देश के ठन्डे पहाड़ी उत्तरी भाग से दक्षिणी समुद्र तट जा पहुंचते हैं। पूरे देश को समान रूप से सुन्दर बनाए रखने की कोशिश पग-पग पर जाहिर होती है।

भव्य इमारतों के बावजूद प्रकृति का संरक्षण हर कोरियाई के लिए मूल्यवान है। वाहनों की संख्या देश भर में बहुत है, किन्तु नदी किनारे सुन्दर साइकिल ट्रैक और पैदल पथ बनाए गए हैं। तमाम कोरियाई स्वास्थ्य के प्रति बहुत सजग हैं। मोटापा बहुत कम है – अधिकाँश लोग चुस्त-दुरुस्त दिखाई देते हैं। रेल में साइकिल ले जाई जा सकती हैं – यहाँ तक कि भूमिगत स्टेशनों में सीढ़ियों के साथ-साथ साइकिल चढ़ाने-उतारने की खास पट्टी भी बनी है। अपनी साइकिल न भी ले जाना चाहें तो स्थल विशेष पर किराए की साइकिल उपलब्ध होती हैं – समयानुसार चलाएं और वापस लौटा दें! छोटे-छोटे पहाड़ों पर चढ़ने वाले लोग जहां तक हो सके साइकिलों पर ही जाते हैं। पानी के सुंदर बहाव – नहर-फव्वारे-झरने मनमोहक रूप में जगह-जगह विराजमान हैं। रात को झिलमिलाती रोशनी का सौन्दर्य भी कुछ निराला रहता है। सबके ऊपर सुन्दर है – पतझड़ के बाद रंग बदलते पत्ते! सुनहरी-रक्तिम-पीत आभा देखने के लिए तमाम लोग पहुंचते हैं –'सान' – यानि पर्वतों की ओर – जिनमें प्रसिद्ध हैं नाम्सान, सोराक्सान और 'सा' यानि बौद्ध मंदिरों के प्रांगण में – जो एकांत पर्वतीय अंचलों की गोद में बसे हैं जिनमें विख्यात हैं बुल्गुक्सा और जोग्येसा।

मस्त और प्रसन्न दिखाई देने वाले, खेलकूद में लगे रहने वाले कोरियाई छात्रों से बातचीत के क्रम में यह अनुभव हुआ कि आज कोरियाई युवा कुछ हतोत्साहित भी है – कारण रोजगार के अवसर कम हो रहे हैं। पढ़ाई का खर्च बढ़ रहा है। उनका जीवन परम्परा से कुछ टूटता-सा भी दिखाई देता है। इसका बड़ा प्रमाण 'फास्ट फूड' के लिए युवा वर्ग की बढ़ती रूचि में दिखाई पड़ता है। जबकि विश्वविद्यालयों के सभी भोजनालय पारंपरिक कोरियाई भोजन ही परोसते हैं, जिसे सभी छात्र शौक से खाते नजर आते हैं। किन्तु तब भी अपने ही विश्वविद्यालय के पास यह भी देखा कि शुक्रवार शाम को – सप्ताहांत की खुशी में – लगभग भारतीय सा जो स्ट्रीट फूड कोरियाई युवा एन्जॉय करते हैं – उसके कूड़े का ढेर शनिवार-इतवार को यूं ही पड़ा रहता – सफाई कर्मी अवकाश पर रहते हैं! यह पिछली पीढ़ी की उस दृष्टि से बिलकुल भिन्न था जो इतनी सफाई पसंद है कि राह चलते चिमटी से कूड़ा उठाने तक का काम करती रहती है!

भोजन में तीनों समय चावल – कोरियाई जीवन का अभिन्न अंग है। अभी सभी कोरियाई परिवार एकल नहीं हुए हैं – विवाह से पहले अधिकतर बच्चे माता-पिता के साथ रहते हैं। आम कोरियाई शांत और मौन बने रहते हैं, बहुत गपशप करने का रिवाज कम है। भाषा की बाधा भी यहाँ सम्वादमयता को कम करती है। इसलिए जो कोरिया जाए – थोड़ी तैयारी के साथ जाए! ○○○

फ्रांसीसी संस्कृति का जीता जागता उदाहरण : पांडिचेरी

ज्योति प्रकाश खरे

विश्व प्रसिद्ध श्री अरविंद आश्रम के मुख्य भवन में श्री अरविंद और श्री मां की समाधियां हैं जो वर्तमान में देश-विदेश के हजारों अध्यात्म प्रेमियों एवं यात्रियों का दर्शन केन्द्र बनी हुई हैं। आश्रम के लगभग 2000 स्थायी आश्रमवासी हैं, जिनके साफ-सुथरे भवन मुख्य आश्रम के चारों ओर निर्मित हैं। साथ ही यहां पर कई लघु उद्योग भी हैं।

सम्पर्क: जी-9, सूर्यपुरम नंदनपुरम, झांसी (उ.प्र.)-284003, मो. 9415055655

फ्रांसीसी संस्कृति का जीता जागता उदाहरण है पांडिचेरी। पांडिचेरी हमारे देश का एक छोटा सा केन्द्र शासित प्रदेश है जिसकी राजधानी पांडिचेरी ही है। प्राचीन काल में इसे 'वेद पुरी' कहा जाता था। अर्थात् ज्ञान का शहर। वैसे आज भी यहाँ के नगर—देवता को वे पुरीश्वर कहते हैं। कहा जाता है कि अगस्त्य मुनि ने यहां आश्रम की स्थापना की थी तथा यज्ञ का आयोजन किया था। बाद में पुरुषश्री अरविन्द की समाधि की स्थापना हुई।

श्री अरविन्द आश्रम के लिए वर्तमान में पांडिचेरी संपूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। यूँ तो पांडिचेरी के इतिहास ने अतीत में उल्लेखनीय करवटें ली हैं। जिंजी के राजा ने सन् 1683 में उस समय के अज्ञात पांडिचेरी गांव को एम.फ्रांकोयेज मार्टिन के हाथ बेच दिया था और फिर यहीं से भारत में फ्रांसीसी स्थापत्यविद फ्रांसिस मार्टिन ने शहर 'पांडिचेरी' की स्थापना की। तमिल भाषा में पांडु का अर्थ 'नया' तथा 'चेरी का अर्थ शहर होता है। बाद में यही पांडुचेरी बदल कर पांडिचेरी हो गया।' पांडिचेरी पर अधिकार के लिए अंग्रेजो व फ्रांसीसियों में सर्घर्ष चलता रहा। अंततः सन् 1815 में पांडिचेरी में फ्रांसीसी शासन स्थापित हुआ। देश की स्वाधीनता के पश्चात् पहली नवम्बर 1954 को इस फ्रांसीसी बस्ती का विधिवत् भारत को हस्तांतरण हुआ और उसक ठीक दो वर्ष बाद उसी दिन यह क्षेत्र भारतीय संघ का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया।

पांडिचेरी से जुड़ा है योगीराज अरविंद व सुब्रह्मण्यम् भारती का नाम

पांडिचेरी के नाम के साथ हमारे देश के स्वाधीनता संग्राम के जिन दो महान अग्रदूतों का नाम जुड़ा है वे हैं—योगीराज अरविंद एवं तमिल के सुप्रसिद्ध कवि सुब्रह्मण्यम् भारती। अलीपुर बम काण्ड के मुख्य अभियुक्त श्री अरविंद घोष को ब्रिटिश कारागार से 1990 ई. को मुक्ति मिली और तभी उन्होंने देश की राजनीति से सन्यास लेकर अध्यात्म की खोज में निकल पड़े। चार अप्रैल सन् 1910 को वे पांडिचेरी चले आए। प्राकृतिक संपदा से भरपूर पांडिचेरी का वातावरण उन्हें योग शिक्षा तथा अध्यात्म के लिए

उपयुक्त लगा। यहीं पर उन्हें 24 नवम्बर 1926 को पूर्ण सिद्धि की प्राप्ति हुई। इसी दौरान आश्रम का निर्माण कार्य प्रारम्भ हो गया था एवं श्री अरविंद के दर्शन एवं सान्निध्य के लिए देश-विदेश के अनुयायियों का आना-जाना प्रारम्भ हो गया था। पूर्ण सिद्धि लाभ के बाद पूर्णत: यौगिक साधना में डूब जाने पर आश्रम का दायित्व फ्रांसीसी शिष्या मीरा रिजर्ड अर्थात् श्री मां पर आ पड़ा।

अध्यात्म प्रेमियों एवं यात्रियों का दर्शन केन्द्र पांडिचेरी

विश्व प्रसिद्ध श्री अरविंद आश्रम के मुख्य भवन में श्री अरविंद और श्री मां की समाधियां हैं जो वर्तमान में देश-विदेश के हजारों अध्यात्म प्रमियों एवं यात्रियों का दर्शन केन्द्र बनी हुई हैं। आश्रम के लगभग 2000 स्थायी आश्रमवासी हैं, जिनके साफ-सुथरे भवन मुख्य आश्रम के चारों ओर निर्मित हैं। साथ ही यहां पर कई लघु उद्योग भी हैं। समाधि के दर्शन हेतु प्रतिदिन द्वार सुबह 8 बजे से सांय 6 बजे तक खुला रहता है। यहाँ प्रतिदिन संध्या को फिल्म शो, खेलकूद, शिक्षा मूलक भाषण के आयोजन होते हैं। प्रवेश नि:शुल्क है।

'ओरोविल' नाम से एक विश्व नगरी का निर्माण

श्री मां ने श्री अरविंद के देह त्याग के उपरांत सन् 1952 में उन्हीं के शिक्षा-आदर्श पर आधारित श्री अरविंद अंतरराष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र की स्थापना की थी। वर्तमान में यहां देश-विदेश के सैकड़ों शिक्षार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते हैं।

पांडिचेरी में 'ओरोविल' नाम से एक विश्व नगरी का निर्माण हुआ है। ओरोविल में संसार के 126 देश के लोगों ने मिल-जुलकर एक नयी दुनिया बसायी है। सभी देशों की मिट्टी डाल कर इस विश्व नगरी की नींव डाली थी। ओरोविल का अर्थ है

—'उषा नगरी' इस विश्व नगरी की योजना का परिचय देते हुए श्री मां ने कहा था

—'ओरोविल' एक ऐसा सार्वभौम नगर बनना चाहता है जहां सब देशों के नर-नारी शांति और बढ़ते हुए सामंजस्य के साथ रह सकें। वह मत-मतान्तर, राजनीति और राष्ट्रीयता से ऊपर होगा। 'ओरोविल' का उद्देश्य है मानव एकता को सिद्ध करना।

ओरोविल में हुआ मातृ मंदिर का निर्माण

श्री महालक्ष्मी, महासरस्वती, महेश्वरी, महाकाली, इन चार देवियों के स्मरण के आधार पर ओरोविल में मातृ मंदिर का निर्माण हुआ है। मातृ मंदिर में भक्त ध्यान लगाते हैं। निकट ही पाकशाला व भोजन कक्ष है जहां दान-पद्धति पर यात्रियों को भोजन मिलता है।

आकर्षक व दर्शनीय समुद्री किनारा

पांडिचेरी में सबसे आकर्षक दर्शनीय स्थल 1.5 कि.मी. लंबा समुद्री किनारा है। यहां का वातावरण शांत है तथा यहां आराम करने, टहलने व तैरने की उचित व्यवस्था है। इस बीच का ऐतिहासिक महत्व भी है। इसकी रेत ने फ्रांस और इंग्लैण्ड के युद्ध भी देखे हैं। इस बीच पर महात्मा गांधी की एक मूर्ति लगी हुई है, इसके अलावा प्रथम विश्व युद्ध में शहीद हुए सैनिकों की याद में लगाए गए आठ स्तम्भ भी दर्शनीय हैं। यहां पर 284 मीटर ऊँचा लाइट हाउस भी बना हुआ है।

पांडिचेरी में दर्शनीय है कई स्थल

पांडिचेरी में डुप्ले-स्मारक, राजभवन उद्यान, मेडिकल कैम्पस तथा विलियानुसर मंदिर दर्शनीय है। भारत में फ्रांसीसी बस्तियों को स्थापित करने वाले भूतपूर्व गर्वनर डुप्ले की यहां पर एक खड़ी मूर्ति निर्मित है, जिसके चारों ओर पत्थर के खम्भे हैं। डुप्ले क्लाइव का प्रतिद्वन्दी था, जिसने 40 वर्ष तक निरंतरर इस नगरी पर शासन किया था। इस प्रतिमा के पीछे की ओर डुप्ले स्थल है, जिसके मध्य में पेरिस के प्रसिद्ध विजय द्वार की अनुकृति है। स्मारक के पश्चिम में हाई कोर्ट सचिवालय, सार्वजनिक पुस्तकालय एवं अन्य सरकारी इमारतें हैं।

पांडिचेरी का संग्रहालय फ्रांस की पारंपरिक कला व संस्कृति का शानदार उदाहरण है। इस संग्रहालय की वस्तुओं का संकलन प्राचीन फ्रांस की यादों को तरोताजा करता ही है साथ ही भारत व रोम के व्यापारिक संबंधों को भी उजागर करता है। इस संग्रहालय में लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व के पल्लव व चोल वंश की संस्कृति की झलक भी मिलती है।

पांडिचेरी कैसे जाएं...कैसे भ्रमण करें...

वायु मार्ग से जाने वाले यात्रियों के लिए हवाई अड्डा पांडिचेरी से लगभग 160 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। हवाई अड्डे से टैक्सी, बस या रेल द्वारा पर्यटक आसानी से पांडिचेरी पहुँच सकते हैं।

... तो मिलेंगे शीघ्र ही फ्रांसिसी स्थापत्य की जादुई नगरी पांडिचेरी में।

○○○

तीन बहनें, बनाम चार ग्रेटर-धाम

राजेश जैन

चेरापूंजी (सोहरा) की तरफ जाते हुए ऐसा लगा कि किसी मल्टी स्टोरी इमारत की ऊपरी मंजिलों पर क्रमशः चढ़ते हुए टेरेस की ओर बढ़ रहे हैं -सचमुच, जैसे, बादलों के डेरे (मेघालय) में पहुँच गए हों। यह दुनिया का सर्वाधिक बारिश वाला क्षेत्र है, फिलहाल बारिश नहीं हो रही थी, हल्की धूप थी, स्वच्छ नहाई धोई -और चप्पा चप्पा गवाही दे रहा था कि यहाँ का कण कण, भरपूर बारिश से संपन्न है।

सुनता रहा हूँ कि भारत में जो चार धामों की यात्रा कर लेता है, उसका जीवन सफल हो जाता है। धार्मिक महत्व के चार धामों की तर्ज पर शुरू में मेरे स्व-निर्णीत लेखकीय चार धाम थे- बम्बई, दिल्ली, मद्रास और कलकत्ता। चालीस की उम्र आते तक मैंने इन महानगरों की यात्रा येन केन (आफिसिअल/व्यक्तिगत) कर ली थी और अपनी संवेदनात्मक साहित्यिकता को धन्य मान बैठा था कि अनुभवों के भौगोलिक स्तर पर मैंने पूर्णता का दायित्व पूरा कर लिया है।

अब पच्चीस साल बाद महसूस हुआ कि यह अदूरदर्शितापूर्ण भ्रम था। इस बीच अमेरिका, यूरोप और एशिया भी हो आया पर जब पूर्व में कलकत्ता से आगे बंगलादेश पार करके, पूर्वोत्तर राज्यों में जाना हुआ तो लगा परंपरागत धाम (जगन्नाथ पुरी जैसे) से आगे चारों ओर 'ग्रेटर-धाम' भी हैं। जैसे नॉएडा से आगे ग्रेटर-नॉएडा, कैलाश कालोनी से आगे ग्रेटर-कैलाश वगैरह। यथा, दिल्ली से आगे उत्तर में बद्रीनाथ, कश्मीर, हिमाचल, पश्चिम में सोमनाथ, द्वारका, बाघा बार्डर, दक्षिण में कन्याकुमारी, कोचीन, त्रिवेन्द्रम और पूर्व में पूर्वोत्तर राज्य, एक तरह से ग्रेटर-धाम कहे जा सकते हैं, जो चहुँ ओर, देश की सीमाओं को छूने के बाद, अब पूरे हुए से लगते हैं।

10-17 जनवरी 16, नार्थ ईस्ट में था। पहली बार जाने का रोमांच। निमित्त प्रोफेशनल था। साउथ एशियाई गेम्स के स्टेडियमों का एनर्जी ऑडिट -गोहाटी, शिलोंग और अगरतला में। विद्युत- ऊर्जा (व्यवसायिक) के समान्तर, शब्द -ऊर्जा (साहित्यिक रुचि परक) सदैव मेरे जेहन में जीवंत रहती है- सो अवकाश मिलते ही चेरापूंजी, कामाख्यानी मंदिर और बांग्लादेश बॉर्डर की यात्रा भी कर डाली।

सात बहनों (सेवेन सिस्टर्स) कहे जाने वाले पूर्वोत्तर के सात राज्य हैं -असम, मेघालय, त्रिपुरा, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड और मणिपुर। इनमे से तीन बहनों (असम, मेघालय और त्रिपुरा) से मिलने का अवसर इस यात्रा में मिला -

सम्पर्क: 40 करिश्मा अपार्टमेंट्स, 27 इन्द्रप्रस्थ एक्सटेंशन, दिल्ली-110096, Rajesh492003@yahoo.com मो. 9717772068

बहन नंबर -1 (असम)

15-1-16

गुवाहाटी विमान तल से निकलकर सीधे शिलांग (मेघालय) जाना था। यद्यपि मुख्यत; दक्षिण एशियाई खेल गुवाहाटी में ही आयोजित होने हैं -5 फरवरी से, पर हमारा कार्यक्षेत्र शिलांग था, जहां गेम्स की 7 प्रतियोगिताएं होनी थीं -तीन स्टेडियमों में। गुवाहाटी शहर में प्रवेश करते ही ध्यान, एक सफेद आकर्षक स्मारक की ओर गया -ड्राइवर ने बताया -यह भूपेन हजारिका का समाधि स्थल है। सुनते ही चेतना में -'गंगा आये कहाँ से, गंगा जाये कहाँ रे ..' और 'धूम ..धूम ..' जैसी धुनें गूंजने लगीं।

गुवाहाटी के कामाख्या मंदिर के बारे में बहुत सुना था। जब हिमाचल में नैना देवी मंदिर देखने गए थे तो एक साथी ने जानकारी दी थी कि पौराणिक कथा के अनुसार जब शोक संतप्त क्रोधित भगवान शिव, पिता यक्ष द्वारा अपमानित होने के कारण सती हुई पार्वती का शव कंधे पर रखकर ब्रह्माण्ड में तांडव करते हुए भटक रहे थे, तब शांति हेतु भगवन विष्णु के चक्र से शव के जो 108 टुकड़े हुए थे, उनमें से यहाँ सती पार्वती के नैन गिरे थे। कहा जाता है, नीलाचल पर्वत स्थित गुवाहाटी के कामाख्या मंदिर में योनि और गर्भाशय अंग गिरे थे, इसलिए काम क्रिया दृष्टि से यह स्थान स्त्रियों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। सोचा कि लौटते हुए इस मंदिर को अवश्य कवर करेंगे।

14-1-16

जैसा सोचा था, आज शिलांग (मेघालय) से गुवाहाटी लौटते हुए कामाख्या मंदिर देखने का संयोग बन ही गया। गुवाहाटी से अगरतला (त्रिपुरा) की फ्लाइट दोपहर दो बजे थी। शिलोंग से हम सुबह छह बजे निकल गए ताकि फ्लाइट पकड़ने से पहले, दो ढाई घंटे मंदिर में भी बिता सकें। ड्राईवर ने पहले ही बता दिया था कि मंदिर में अन्दर दर्शन हो पाना मुश्किल है क्योंकि वहां सुबह छह बजे से ही पूजा करने वाले भक्तों की लाईन लग जाती है और नंबर आने में तीन चार घंटे लग ही जाते हैं। पूजा की बजाय मात्र दर्शन की इच्छा थी -सो हम पहुँच ही गए दस बजे तक, लगभग डेढ़ घंटा हमारे पास था। लाईन देखकर अन्दर प्रवेश का इरादा छोड़ दिया पर चारों ओर घूमने में कोई बाधा नहीं थी। एक कोण से अंदर की झलक भी मिल रही थी।

दक्षिण की यात्रा के समय प्रख्यात तिरुपति मंदिर में भी यही स्थिति थी। इसमें कोई शक नहीं कि श्रद्धालुओं की अपार भीड़ ही स्थल को महत्वपूर्ण बनाती है-उससे ज्यादा यह प्रवृत्ति प्रेरक होती है कि किस धार्मिक स्थान के दर्शन से, मनोकामना पूर्ण होगी। यहीं मेरा अपने आप से मतभेद था। 'मनोकामना' पूर्ति से ज्यादा उत्सुकता मेरे मन में ऐसे स्थलों से जुड़ी दन्त कथाओं को जानने में रहती है। यहाँ भी थी -आसपास की प्राकृतिक छटा का आकर्षण, बेशक, अनुपम था ही, उसको महसूस करने के लिए किसी लाइन में लगने की आवश्यकता नहीं थी। मंदिर के कार्यकर्ताओं सहित पूजा सामग्री लिए हुए कुछ भक्त जनों से भी चर्चा करके जानकारी चाही तो उन्होंने न केवल अरूचि, वरन अनभिज्ञता भी दर्शाई। -उनका सारा ध्यान पूजा विधि, सामग्री और मध्यस्थ बने कारोबारी पंडितों के कर्मकांडी निर्देशों का पालन करने पर केन्द्रित था। इतना जरूर समझ आया कि हर परिवार अपनी महिलाओं को पूजा में आगे कर रहा था।

एक दिन पहले ही इन्टरनेट से मंदिर के बारे में जो जानकारी ली थी, उसकी पुष्टि करना चाहता था, सो मंदिर की व्यवस्था के लिए सूचना केंद्र पर तैनात उद्घोषिका से ही बातचीत शुरू की पर निराशा ही हुई क्योंकि उसे सिर्फ अपने काम से सरोकार था-यानी लिख कर दी गई सूचनाओं की घोषणा करना। .मंदिर के बारे में अतीत और दंतकथाओं से कोई लेना देना नहीं था। फिर भी मैंने पूछ ही लिया- 'ये मंदिर के परिसर में कबूतरों के बीच इतने बकरे क्यों घूम रहे हैं?'

'कई भक्त इन्हें यहाँ दान स्वरूप छोड़ जाते हैं, जिनकी मनोकामना पूरी हो जाती है, वे ..'

'इनकी बलि भी होती है क्या?

'वो अलग बात है, त्यौहार पर बलि तो होती है पर मनोकामना पूरी होने पर दान दिए गए बकरों का लालन पोषण यहीं होता है, इन कबूतरों के साथ ही ..' -वह बोली, पर प्रकट था कि मेरे अवांछित प्रश्नों से वह खिन्न हो रही थी। इस मंदिर के बारे में, मुझे कहीं पढ़ा हुआ याद आ रहा था कि यह मन्त्र तंत्र की देवी का भी मंदिर है। कहते हैं, साधक स्त्रियाँ जिस पुरुष को पसंद करती थीं, उन्हें मन्त्र तंत्र से दिन में बकरा बनाकर अपने पास रख लेतीं और रात्रि में पुरुष बनाकर उनके साथ अभिसार करती थीं।

काली देवी के अन्य सात अवतारों (धूमवती, मातंगी, बगोला, तारा, कमला, भैरवी, छिन्नमस्ता, भुवनेश्वरी और त्रिपुरा सुंदरी) का भी यहाँ वास माना जाता है। कहते हैं, शाप के कारण कामदेव जब अपना पुरुषत्व खो चुके थे, तो उससे मुक्ति उन्हें यहीं प्राप्त हुई थी, इसलिए इसे प्रेम की देवी (गौडेस आफ लव) का मंदिर भी कहा जाता है। मान्यता है कि यहाँ नीलाचल पर्वत के इसी स्थान पर शिव-पार्वती ने काम - क्रीड़ा की थी।

कामाख्या देवी को 'ब्लीडिंग गौडेस '(रक्तिम -देवी) के नाम से भी जाना जाता है। आषाढ़ (जून) माह में तीन दिनों के लिए मंदिर बंद रखा जाता है, क्योंकि वे तीन दिन देवी के मासिक धर्म के रक्त-स्राव के दिन माने जाते हैं। कहते हैं, उन दिनों में पास से बहने वाली ब्रह्मपुत्र नदी का पानी लाल हो जाता है। उस जल को पवित्र मानते हुए भक्तगण उसे प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हैं।

बहन नंबर -2 (मेघालय)

11-1-16

शिलांग के स्टेडियमों में, साथ आये अपने साथियों (सचिन और अजित) के साथ प्रकाश के स्तर (लक्स लेवल) का आकलन करते हुए,बारम्बार मन में अपने पांचवें, 'प्रोद्योगिक -आध्यात्मिकता' वाले उपन्यास 'टावर ऑन द टेरेस '(नेशनल पब्लिशिंग हाउस से प्रकाश्य) का स्मरण आ रहा था, क्योंकि उसका कथानक भी राष्ट्रमंडल खेलों पर आधारित है। उसे लिखते हुए, मैं उत्सुकतावश, दिल्ली में आयोजित कॉमन वेल्थ गेम्स साक्षात् देखने गया था। पांचवां क्या, छठा उपन्यास 'सुरंग में गुफाएं' के कई अध्याय, भी संयोग से इन्हीं गेम्स की पृष्ठभूमि लिए हुए हैं। मेरी रचनात्मकता का इनसे प्रभावित होना स्वाभाविक था क्योंकि उन दिनों दिल्ली और मीडिया पूरी तरह गेम्स के समाचारों से सराबोर थे। और अब यहाँ भी, संयोग से, वातावरण, खेलों की हलचल से घिरा हुआ है।

शिलांग शहर का केंद्र है पुलिस बाजार -जिस होटल में जगह मिली,वहां कमरे में हीटिंग नहीं थी और तापमान काफी कम। रह रहकर सन'85 के इंग्लॅण्ड प्रवास की याद आ रही है। वहां भी ऐसी ही सर्दी थी - और ऐसी ही ढलान वाली सड़कें। कुछ कुछ शिमला सा भी लग रहा था। संयोग से मैंने वही जेकेट पहनी हुई थी,जो तब इंग्लैण्ड में उतरते ही खरीदी थी -और जिसने सर्दी के समंदर में डूबने से बचाव हेतु मेरे लिए 'लाइफ बोट' का काम किया था। इतना अंदाज तो था कि हिल स्टेशन और जनवरी का माह, होने के कारण शिलांग में ठण्ड होगी, लेकिन इंग्लैण्ड की तुलना में भयावह अंतर यह था कि वहां कमरे में हीटिंग थी -यहाँ नहीं है। बाहर खुले से अन्दर कमरे में आने के बाद भी राहत नहीं मिलती थी -गर्म कपड़े पहने हुए कम्बल लपेटे रहने पर ही थोड़ा सामान्य लग पा रहा था, जो असुविधाजनक था। इसी कारण, जब कोई स्थानीय व्यक्ति यह पूछता कि आपको हमारा शिलांग कैसा लगा, तो अनायास मेरे मुंह से निकल जाता-'बिलकुल इंग्लॅण्ड जैसा। सुन्दर लोगों का सुन्दर देश'

'तभी तो इसे इंडिया का स्विट्जरलैंड कहते हैं ..'-उधर से जवाब मिलता।

स्टेडियमों में लाईट जलाकर प्रकाश के स्तर को मापते हुए एकाएक ख्याल आया - ऐसा ही होता है जीवन में, जब स्रोतों से आने वाली आय या सुरक्षा कम हो तो कितना अधूरा अधूरा लगता है और सोच इसी चिंता में डूबा रहता है कि कैसे लाईटस की संख्या की तरह तमाम स्रोतों की संख्या अथवा क्षमता और भी बढाई जाये?

उन छोटी सुन्दर बच्चियों ने भी ध्यान खींचा जो मेघालय की परंपरागत पोशाक और मुस्कान धारण किये हुए, निर्माणाधीन स्टेडियमों में थैला लिए, न केवल पान और कच्ची सुपारी बेच रहीं थीं, बल्कि स्वयं खाती हुई, रचे होठों की दीप्त लालिमा भी बिखेर रहीं थीं।

13-1-16

दो दिनों, लगातार विद्युत् ऊर्जा के व्यवसायिक कामकाज के पश्चात् आज थोड़ा अवकाश मिला तो निकल पड़े चेरापूंजी की तरफ। पहला पड़ाव था -'एलिफेंट फाल', जो सदियों पुराना है -मेघालय के 'खासी' लोग इसे 'का फिशोलाई पेटेन खडव्यू '(अर्थात तीन चरणों वाला झरना) कहते थे, पर आधुनिक सभ्यता की जानकारी में आया, अंग्रेजों की खोज से। तीन चरणों में ढलता हुआ यह प्रपात, प्रकृति की कारीगरी का अदभुत नमूना है। अंग्रेजों ने इसका नामकरण -एलिफेंट प्रपात, इसलिए किया था, क्योंकि इसके बायीं ओर की चट्टान हाथी के आकार की थी। वह चट्टान 1897 में आये भूकंप में ढह गई -पर उसके अवशेष टुकड़ा टुकड़ा चट्टानों के रूप में बिखरे पड़े हैं -यानी अब वहां हाथी तो नहीं दिखता, सिर्फ उसका नाम है। तीसरे

चरण तक पहुँचने के लिए काफी गहराई तक नीचे उतरना था, मैं बीच में रूक गया क्योंकि उतरना आसान था, पर फिर वापस आने के लिए चढ़ पाना, मेरी कमर के लिए बेहद दुरूह। तब 'फाल' से,जीवन हेतु, यह सीख लेकर तसल्ली कर ली–'फाल यानी गिरना तो आसान है, ऊपर चढ़ना उतना ही मुश्किल'

आसपास तथा रास्ते में मिले जंगल में एक संभ्रांत शालीनता का आभास हो रहा था। मानो साफसुथरे पेड़ अदब और अनुशासन से जीवन जी रहे थे। पत्तों के बिखरने में भी नजाकत देखी जा सकती थी। कहीं कोई गन्दगी या ऊबड़ खाबड़ जमीन नजर नहीं आ रही थी –मानो देश में चल रहे स्वच्छता अभियान का यहाँ जंगल में पूर्ण रूप से अनुकरण हो रहा था।

सचिन ने टिप्पणी की–'यहाँ जंगल में जो ज्यादातर पेड़ हैं, उनकी पत्तियां छोटो छोटी हैं, इसलिए जल्दी मिटटी में घुल जाती हैं, फिर बरसात भी ज्यादा होने से उनके गलने और बहने में आसानी रहती है, जबकि नार्थ में पेड़ों की पत्तियां बड़ी साइज की होती हैं, उनका ढेर लग जाता है.. गलने में समय भी ज्यादा लगता है..'

'मुझे लगता है, यहाँ जंगल में भी मेनेजमेंट का वही आई एस ओ 12001, सिस्टम फॉलो किया जाता है, जो हमारे प्लांट्स में होता है, तभी सब कुछ कितना नीट और क्लीन है.'–मैंने चुटकी ली।

'वो, देखो टी गार्डन्स..'–अजित चाय बागान की झाड़ियों को शायद पहली बार देख रहा था।

रास्ते में 'धुवानसिंग पॉइंट' पर रूकना हुआ।दो पहाड़ियों को जोड़ते,घाटी के बीच केबल्स खिंचे हुए थे। पता लगा कि यहाँ एडवेंचर्स स्पोर्ट्स 'जिप लाइनिंग' होता है। केबल्स का स्लोप ऐसा है कि ट्राली में लटके लोग ग्रेविटी से झूलते हुए घाटी को इधर से उधर और उधर से इधर पार कर जाते हैं। वाकई साहस का काम था –अपनी शारीरिक सीमाओं का आदर करते हुए मैं पीछे हट गया, पर सचिन ने स्पोर्ट्स का आनंद लिया –अजित ने वीडियोग्राफी की, और मैं एक मूक दर्शक की तरह, लाइव शो देखकर आनंद लेता रहा।

चिकनी सपाट दीवार जैसी हरी भरी पहाड़ियां देखकर मेरे मन में विचार आ रहे थे –प्रकृति कितनी उम्दा कलाकार है। इन पहाड़ियों के केनवास पर बौछारों की कूची/छैनी से उसने साफ सुथरे लैंडस्केप बनाये हुए हैं। आर्ट गैलरी सा लग रहा था वातावरण, जैसे यहाँ पर्यावरण प्रतिदिन स्नान करके नियमपूर्वक धर्म ध्यान करता है, पहाड़ियों पर रोज बौछारों की फूल बुहारी झाड़ू लगाने के बाद, हवा अपने आंचल से पौंछा करती होगी ?

चेरापूंजी (सोहरा) की तरफ जाते हुए ऐसा लगा कि किसी मल्टी स्टोरी इमारत की उपरी मंजिलों पर क्रमशः चढ़ते हुए टेरेस की ओर बढ़ रहे हैं –सचमुच, जैसे, बादलों के डेरे (मेघालय) में पहुँच गए हों। यह दुनिया का सर्वाधिक बारिश वाला क्षेत्र है, फिलहाल बारिश नहीं हो रही थी, हल्की धूप थी, स्वच्छ नहाई धोई –और चप्पा चप्पा गवाही दे रहा था कि यहाँ का कण कण, भरपूर बारिश से संपन्न है।

निसंदेह बारिश का पानी बेहद कलात्मक ढंग से बहता हुआ ढलान उतरता होगा, तभी तो सर्वत्र उसके चरण चिन्हों की सुन्दर नक्काशी देखी जा सकती है। कालचक्र और कला चक्र के समन्वय का अदभुत नमूना।

और, पहुँच ही गए दुनिया की छत पर–यानी चेरापूंजी, जिसे सोहरा भी कहते हैं शायद। इक्का दुक्का मकान,वह भी अत्यधिक बारिश के कारण मैलापन लिए हुए। लगा आबादी कम है, सरकारी पोस्टिंग वाले लोग ही रह रहे होंगे। अर्थ–साइंस विभाग का विशाल ग्लोब देखकर जयंत विष्णु नार्लीकर की विज्ञानं कथाएं याद आ गई। –चारों ओर भीगी हुई रहस्यमय चुप्पी फुसफुसा रही थी। एकाएक आसपास पहाड़ियों पर कब्रों की कतारें उभरने लगीं। कुछ जर्जर जीर्ण छोटी छोटी और कुछ एकदम चमक धमक वाली विशाल। वास्तु की दृष्टि से संभवतः इस स्थान को आदिकाल से महत्वपूर्ण माना जाता रहा है, तभी तो यहाँ जीवित व्यक्तियों की तुलना में मुर्दों का ज्यादा बोलबाला है। – दुनिया की छत पर परम शांति से सो रहे मृतकों की कालोनी। सहसा लगा किसी 'भुतही' जगह पर आ गए हैं– रूहानी सन्नाटे से सराबोर। यह स्थान बादलों का तीर्थ लगा – जहाँ समुद्र से जल लाकर, मेघ शिखरों पर चढ़ाते हैं।

'इको पार्क' में थोड़ी देर विश्राम किया और दुनिया की छत पर होने का गौरव महसूस किया। 'इको पार्क' को यहाँ का 'टेरेस गार्डन 'कहा जा सकता है।

अपनी छत से पड़ौसी का मकान देखने का जो रोमांच होता है, वह भी अवसर तब आया, जब आगे जाकर नीचे घाटी में बसे पड़ौसी 'बांग्लादेश' को भौगोलिक तौर पर देखा।

'मास्मआ गुफा' प्रकृति की एक अनन्य कलाकृति है। 150 मीटर लम्बी,नाल के आकार की गुफा। एक छोर से घुसो और लगभग आधे घंटे बाद दूसरे छोर से बाहर निकलो, क्योंकि बीच में एकदम संकरा रास्ता कि केवल एक व्यक्ति ही जोड़ तोड़ करके पार हो सके। दर्शनार्थियों की भीड़ के कारण पहली ही बाधा से मैं हिम्मत हारकर लौट आया। ।

रास्ते में नजर उन पहाड़ियों पर भी गई, जहाँ कटाई का छुटपुट काम चल रहा था -निश्चित ही उपयोगी खनिज का खनन हो रहा होगा। पहाड़ की दीवार पर लगभग हर जगह एक गुफा सी, बना ली गई थी -ताकि वीराने में, बारिश आने पर मजदूरों को, आड़ मिल सके। लगा, यहाँ ग्राउंड स्तर पर ही प्राकृतिक एवं मानवीय तौर पर 'गुफा -संस्कृति' का बोलबाला है।

बहन नंबर-3 (त्रिपुरा)

15-1-16 (अगरतला -रोकिया)

संयोग है कि गौहाटी से अगरतला की फ्लाइट में पढ़ने के लिए मैंने अपने बेग से 'नया ज्ञनोदय ' का जो अंक निकाला, उसमें राजेन्द्र उपाध्याय की कवितायें थीं-'अगरतला स्टेशन', 'अगरतला में बांग्ला देशी छतरी', धूप में चमकती पटरियाँ' और 'धूप को आने दो'। अपने गंतव्य पर केन्द्रित साहित्यिक सामग्री, अकस्मात्,पाकर रोमांचित होना स्वाभाविक था। बड़े चाव से कवितायें पढ़ गया। अगरतला पहुंचकर, उसके बिम्बों का मर्म भी साक्षात् महसूस कर पाया।

रेल संपर्क के धरातल पर यह क्षेत्र सचमुच दयनीय स्थिति में है। दिल्ली वाकई दूर है। यहाँ तक कि भारतीय सीमा में चलते चलते, कोलकाता पहुँचने में ही चौबीस घंटे लग जाते हैं -बांग्लादेश को सीधे सीधे लांघकर कोलकाता जल्दी पहुंचा जा सकता है,लेकिन उस यात्रा की वीजा सम्बन्धी औपचारिकताओं की अलग ही झंझट है। कुल मिलकर वहां रह रहे अन्य क्षेत्रों के लोगों की लाचारी, सहानुभूति के योग्य लगी। राजेन्द्र ने अपनी कविताओं में इन्हीं संवेदनाओं को सूक्ष्मता से सहेजा है, जिनसे कुछ हद तक में रूबरू हो सका।

अगरतला से लगभग चालीस किलोमीटर चलकर रोकिया पहुंचे -गेस पॉवर प्लांट के गेस्ट हाउस में सेटेल होते ही, राजेन्द्र उपाध्याय को दिल्ली फोन लगाया और कविताओं के लिए बधाई दी और बताया कि मैंने न केवल कविताओं को पढ़ा है, बल्कि उनकी जन्म-स्थली पर साक्षात् बिम्बों को देख रहा हूँ। राजेन्द्र ने बताया - वह पिछने दिनों केन्द्रीय विश्वविद्यालय के आमंत्रण पर दो हफ्ते अगरतला में था, और ये कवितायें उसी प्रवास का परिणाम हैं। उसने सलाह दी- वहां विश्वविद्यलय के हिंदी विभाग में जय कौशल हैं, हो सके तो जरूर मिलना। रविन्द्र नाथ ठाकुर का मकान भी देखना, बंगला देश का खास बाजार भी है वहां... बोर्डर . .महल वगैरह ..वगैरह .समय सीमा की विवशता के कारण सभी सुझावों पर अमल न कर सका, बोर्डर जरूर गए और अगरतला -रोकिया के रास्ते में आने वाले केन्द्रीय विश्व विद्यालय परिसर के, बाहर से ही दो तीन बार दर्शन किये।

16-1-16

एक दिन के लिए बारामूला के गेस प्लांट में भी जाना था। जब गए तो इस बार रास्ते में किनारे की उन पहाड़ियों को जरा इत्मीनान से देख पाए जिन पर केले के झाड़ जंगलों की तरह फैले थे। अन्य फलदार वृक्षों और बांस आदि की भरमार भी स्पष्ट दिखाई दे रही थी। वाह, जमीन के ऊपर इतनी प्राकृतिक सम्पदा और जमीन के नीचे छिपा, उससे भी ज्यादा कीमती गुप्त धन, यानी प्राकृतिक गैस ..तेल के कुँए और उनसे निकलती नेचुरल गेस। साथ के स्थानीय इंजिनियर श्री विक्टर ने बताया-'त्रिपुरा तो तेल के ऊपर तैरने वाला प्रदेश है..'

यद्यपि, इस यात्रा में, पूर्वोत्तर की सात में से सिर्फ तीन बहनों से ही मिल पाया, किन्तु जो अनुभव हुए, उनसे उनके परिवार के अन्तरंग समीकरणों का सम्पूर्ण अनुमान लगाया जा सकता है। और फिर मेरी यह व्यक्तिगत अन्यतम उपलब्धि तो है ही कि पूर्व में देश की सीमा को छूकर, मैंने अपने चार ग्रेटर धाम भी पूरे कर लिए। ○○○

हमारी संस्कृति की पहचान है हिडिम्बा देवी और वीर घटोत्कच के मंदिर

सविता चढ्ढा

आज भी वीर घटोत्कच के कुल्लु की सिराज वैली में अनेक स्थानों पर मंदिर हैं ये मंदिर लोगों की आस्था के प्रतीक भी हैं। जो लोग घुमंतु प्रवृत्ति के होते हैं उन्हें प्रकृति, संगीत और ऐतिहासिक स्थलों से अदभुत प्रेम होता है। वे अपनी ही धुन में रहने वाले और दुनियादारी की फिजूल बातों से सरोकार भी नहीं रखते हालांकि मनाली में बने बाजारों में बहुत कुछ खरीदा जा सकता था पर हमारा ध्यान तो ऐतिहासिक स्थलों के लिए खास था।

सम्पर्क: 899, रानी बाग, दिल्ली-110034

लगभग 45 वर्ष पूर्व मेरे पिता जी ने मुझे हिडिम्बा और घटोत्कच और घटोत्कच के बेटे बरबरिक की कहानियां सुनाई थीं और मैं मन ही मन इन ऐतिहासिक पात्रों से प्रभावित हो गयी थी। हिडिम्बा का जन्म भले ही राक्षस परिवार में हुआ था लेकिन उनकी सोच और कर्मो ने कैसे उनका जीवन ही बदल दिया। सबसे बड़ी बात कि गलत का विरोध करने की शक्ति का जन्म हिडिम्बा के माध्यम से मेरे बचपन में ही हो गया था। इतिहास में रूचि के कारण भी ये पात्र मेरी स्मृति में बने रहे। बचपन में सुनी इन घटनाओं को आज लगभग पचास से अधिक वर्ष बीत गये है। इन दोनों व्यक्तित्वों को पूरी तरह जाने बिना हम कई बार कितनी चीजों का नाम घटोत्कच रख चुके थे और हिडिम्बा का प्रयोग भी कई बार किया था। ये दूसरी बात है कि इन पचास वर्षो में ये नाम हमारी स्मृति से धीरे-धीरे क्षीण हो गये थे। लेकिन स्मृति में संजोये हुये थे। मैं इन्हें क्यों याद रख सकी, मैंने बचपन में ये कहानियां कई बार अपने परिवार से सुनी थी इसलिए इतिहास मेरा प्रिय विषय रहा और इसमें सिमटी घटनाओं की तह तक जाने का कोई अवसर मैंने खोया नहीं।

इस वर्ष हमारा मनाली भ्रमण का कार्यक्रम बना और जब हमें पता चला कि इस मनाली में इतिहास के अति वीर नायक नायिका के मंदिर विराजमान है तो मन सपना साकार होने की खुशी में मस्त हो गया था। इनोवा कार से हम सपरिवार दिल्ली से प्रात: 9 बजे रवाना हुये। शाम 6 बजे हम आनंदपुर साहब गुरूद्वारे पहुचें। अंधेरा शुरू होते ही हमने यात्रा को विराम देना चाहा। हमने सपरिवार आनंदपुर साहब गुरूद्वारे के दर्शन किये प्रसाद लिया और बाहर बनी दुकानों से गर्म काफी पी। अचानक लगा कि थकान कम हो गयी है। गुरूद्वारे के पास बने अच्छे और साफ सुथरे होटल 'होली प्लेस' में रात को विश्राम किया।

अगली सुबह प्रात: 7 बजे मनाली के लिए आनंदपुर साहब से चले तो रास्ते में रूकते-रूकाते पहाड़ों और प्रकृति की सुंदरता को निहारते हुये हम चलते गये। और शाम को तीन बजे मनाली के निर्धारित होटल में पहुँच गये। यहां केवल एक घंटे के आराम के बाद हम माल रोड को निकल गये।

अगले दिन हम सुबह ही हिडिम्बा देवी के मंदिर में पहुंच गये। बिना तड़क-भड़क के इस मंदिर को देखने सैंकड़ों लोग पहले से ही पंक्तिबद्ध थे। मंदिर के चारों और लोगों की भीड़ देख अहसास हो गया कि यहां बहुत देर लग सकती है।

बचपन की सुनी पहली कहानी हिडिम्बा नाम की एक महिला की थी जिसका जन्म राक्षस कुल में हुआ था लेकिन उसके सपने राक्षसी नहीं थे। वह वीर थी और दूसरों की वीरता की प्रशंसक थी। प्राय: जो स्वयं वीर तो होता है परंतु साधारण होता है वह अपने अलावा हर दूसरे को अपने से कम वीर समझता है और उसे पता भी नहीं होता कि यही सोच उसकी हार का कारण बन जाती है। जिस हिडिम्बा की मैं बात कर रही हूँ वो असाधारण वीर महिला थी। बात उन दिनों की है जिन दिनों पांडव अपने भ्राताओं कौरवजनों द्वारा लाख के घर में जलाये जाने के षडयंत्र के शिकार होने से बचकर निकले और बचते-बचते हिडिम्ब राक्षस के क्षेत्र डूंगरी में पहुंच गये। उन दिनों एक बार अकेले विचरण करते हुये पांडवों में से एक भाई भीम की मुलाकात हिडिम्बा से हो गयी। दोनों एक दूसरे से व्यक्तित्व और वीरता से इतने प्रभवित हुये कि कहा जाता है कि इन्होंने गोपनीय नीति से विवाह कर लिया। दोनों के विधिवत विवाह के लिए राक्षस राज हिडिम्ब जो कि हिडिम्बा का राक्षस भाई था और जिसका भय सारे डूंगरी क्षेत्र में फैला था, का वध जरूरी था।

क्षेत्र के निवासियों ने हिडिम्बा को राज्य सौंपने की इच्छा को मूर्त रूप देने के लिए भीम के साथ मिलकर हिडिम्ब राक्षस को मृत्यु के घाट उतार दिया था और डूंगरी राज्य की सारी बागडोर और निगरानी का उत्तर दायित्व हिडिम्बा पर आ गया। राक्षसराज की मृत्यु के बाद दोनों का विवाह हो गया। विवाह उपरांत कुछ समय हिडिम्बा के साथ रहते हुये भीम ने सारी कथा का बखान अपनी वीर पत्नी से किया। पूरा वृतांत सुनकर हिडिम्बा जान गयी कि भीम के साथ उसका जाना संभव नहीं। भीम अपने भाईयों के पास आ गये और वहां से वापस आने से पहले हिडिम्बा को अपने कुल और मर्यादा और कौरवों के षडयंत्र की सारी कथा भी कह दी।

इतिहास कहता है कि लगभग एक वर्ष तक यह युगल यहां सुख से रहा। इस दौरान भीम और हिडिम्बा का पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम घटोत्कच रखा गया। जब भीम अपने भाईयों के पास चले गये और हिडिम्बा ने अपने राज्य को बखूबी संभाला। जब तक घटोत्कच अव्यस्क रहा हिडिम्बा ने अपने राज्य को निपुणता से संभाला। जब वीर घटोत्कच जवान हो गया तो राज्य की बागढोर

अपने बेटे को सौंप कर हिडिम्बा ध्यान, तपस्या, और साधना के लिए मनाली के डूगरी गाँव में एक विशेष स्थान पर आ गयी।

तपस्या के बलबूते पर इनको कई शक्तियां मिली और अपने राज्य के प्रति ये सदा दयालु बनी रही। इन्हे देवी हिडिम्बा कहा जाने लगा और कुल्लु के राजाओं के लिए भी ये मंदिर संरक्षक बन गया। कहा जाता है कि कुल्लु के राजा की तिलक की रस्म इसी देवी के आशीर्वाद से होती है। इस मंदिर में कोई मूर्ति नहीं बस दो पैरों के निशान है जहां पर जोत जलती रहती है। इन्हीं पदचिन्हों पर यात्री प्रणाम करते है। लकड़ी से बने इस मंदिर को देखना था। अब तो मैं जान गयी हूँ मनुष्य के शरीर से अधिक उसके कर्म महत्व रखते हैं। राजकुल में पैदा होने वाले जेलों में और कूड़ा करकट ढोने वालों के यहां पैदा होने वाले शीर्षस्थ स्थानों पर अपने उत्कृष्ट कर्मो का निर्वाह करते देख पुरानी कई धारणाएं बदल गयी है।

पगोडा शैली में लकड़ी के इस मंदिर का निर्माण डूंगरी वन विहार में 1553 में स्थापित किया गया। हिडिम्बा के बेटे घटोत्कच को अच्छा प्रशासक कहा गया है। कहते हैं घटोत्कच का शाब्दिक अर्थ एक घड़े के समान सिरवाला होता है।

जब कौरवों का युद्ध चल रहा था और युद्ध निर्णायक मोड़ पर था तब अपने पिता की ओर से युद्ध करने के लिए और वीरता से युद्ध में शहीद होने की घटना का भी उल्लेख है। हिडिम्बा के मंदिर के पास ही एक बड़े वृक्ष के नीचे ही घटोत्कच का स्मारक बना रखा है। यहां पर एक बड़ा दीया जल रहा था।

वृक्ष के मोटे तने पर अनेक लोहे के तीर, कैंचियां, लोहे की कीलें, जानवरों के सींग, जैसी चीजे टंगी थी। मैंने देखा वहां रहने वाले लोगों की इन मंदिरों में बहुत आस्था है। मेरे सामने कुछ युवा लोग आये जो इसी स्थान के रहने वाले लगते थे। उन्होंने इस मंदिरनुमा स्थान पर हाथ जोड़कर प्रार्थना की एवं चबूतरे पर पड़ी भभूत का तिलक लगाया, अपने हाथों से अपने दोनों कानों को छूआ और आँखें बंद कर प्रार्थना की। घटोत्कच अत्यंत बलशाली था।

जब महाभारत का युद्ध हुआ तो कर्ण ने प्रतिज्ञा कर ली कि वह अर्जुन का वध करेगा। श्री कृष्ण को पता चल गया कि कर्ण के पास एक ऐसा तीर है जो नि:संदेह अर्जुन का वध कर सकता है। भीम की सहमति से श्री कृष्ण ने तब घटोत्कच को युद्ध स्थल पर बुलाया और कर्ण के साथ युद्ध करने के लिए भेज दिया। घटोत्कच ने कौरवों की सेना का तहस-नहस कर दिया किन्तु घटोत्कच को पराजित नहीं कर सका और कौरवों की सेना के बहुत बलशाली वीर, वीरगति को प्राप्त हो गये। तब कर्ण को मजबूरन विशेष तीर चला कर घटोत्कच का वध करना पड़ा। जब भीम को अपने बेटे की मौत की सूचना मिली, वे बहुत दुखी हुये और तब श्री कृष्ण ने कहा कि वीर घटोत्कच का बलिदान व्यर्थ नहीं गया। यदि कर्ण आज इस खास तरकस का प्रयोग घटोत्कच का बलिदान व्यर्थ नहीं गया। यदि कर्ण आज इस खास तरकस को प्रयोग घटोत्कच के वध के लिए नहीं करता तो कल यहीं तीर अर्जुन वध का कारण बनता। इन तीरों के अलावा और कोई अर्जुन के तीरों को परास्त करने की शक्ति नहीं रखता। उन्होंने कहा कि तुम्हारे बेटे का बलिदान हमेशा याद रखा जायेगा। आज भी कुल्लु और मनाली में इस वीर का नाम आदर और सत्कार के साथ लिया जाता है। वीर घटोत्कच का विवाह एक सुशील और राक्षसराज मूर की पुत्री कामकंटका के साथ हुआ।

इनको कामकंटका से एक पुत्र प्राप्त हुआ जो इतना शक्तिशाली हुआ कि वह अपने पिता से भी अधिक वीर और विभिन्न शक्तियों का ज्ञात था। कहते हैं कि उसमें इतनी शक्ति थी कि वह एक ही तीर से करोड़ों सैनिकों का एक साथ वध कर सकता था। बरबरीक ने श्रीकृष्ण के सामने यह बात रखी कि वह एक ही तीर से सारे शत्रुओं का संहार कर सकता है। श्रीकृष्ण अर्जुन को सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर मानते थे और वे किसी को भी इस स्थिति में स्वीकारने से पहले उसकी परीक्षा लेते हैं। श्रीकृष्ण को यह पता भी चल गया था कि बरबरीक इस युद्ध में हारे हुये पक्ष का साथ देना चाहता है। बरबरीक परीक्षा में सफल हुआ था। मुझे यह परीक्षा की कथा मेरे पिता मुल्ख राज जी ने बचपन में सुनाई थी जो मैं यहां लिख रही हूँ। इस कथा का कहीं लिखित उल्लेख मुझे नहीं मिला पर मैं इस तथ्य से पूरी तरह सहमत हूँ।

जब बरबरीक ने कृष्ण को अपनी विशेषता की जानकारी दी तो श्रीकृष्ण ने एक विशाल वृक्ष के सारे पत्तों में एक तीर के साथ छेद करने का निमंत्रण बरबरीक का दिया जिसे उसने स्वीकार कर लिया। श्रीकृष्ण ने कुछ पत्ते अपने पांव के नीचे छिपा लिये। जब बरबरीक ने एक तीर चलाया तो उस विशाल वृक्ष के सारे पत्तों में एक साथ छेद हो गये। जब श्री कृष्ण ने अपने पैर के नीचे छिपाये पत्ते देखे तो उनमें भी छेद हो चुके थे। श्रीकृष्ण ने इस योद्धा की साहसिकता देख उससे उसका शीश मांग लिया और कहा जाता है कि उस वीर बरबरीक ने अपने शीश को दान दे दिया लेकिन श्रीकृष्ण से महाभारत का युद्ध देखने की इच्छा जतायी। कहा जाता है श्री कृष्ण ने बरबरीक के शीश को सारा युद्ध दिखाया। पता नहीं क्यों मुझे ऐसा लगता है महाभारत काल के दौरान दूरदर्शन जैसे वैज्ञानिक यंत्र का अविष्कार हो चुका था। महाभारत में ऐसे कई उल्लेख है मसलन राजा धृतराष्ट्र को युद्धस्थल से बहुत दूर होकर भी विधुर द्वारा आँखों देखा हाल बताने की घटनाएं भी सीधे प्रसारण के वैज्ञानिक यंत्र की उपस्थिति की ओर इंगित करती है।

आज भी वीर घटोत्कच के कुल्लु की सिराज वैली में अनेक स्थानों पर मंदिर हैं ये मंदिर लोगों की आस्था के प्रतीक भी है। जो लोग घुमंतु प्रवृत्ति के होते हैं उन्हें प्रकृति, संगीत और ऐतिहासिक स्थलों से अदभुत प्रेम होता है। वे अपनी ही धुन में रहने वाले और दुनियादारी की फिजूल बातों से सरोकार भी नहीं रखते हालांकि मनाली में बने बाजारों में बहुत कुछ खरीदा जा सकता था पर हमारा ध्यान तो ऐतिहासिक स्थलों के लिए खास था।

अगले दिन प्रात: 9 बजे हम गुरू वशिष्ठ मंदिर और यहां बने गर्म पानी के कुण्ड में स्नान हेतु निकल पड़े। यहां पर एक प्राचीन मंदिर है जिसका अपना इतिहास है। हमें बताया गया कि रघुवंश के कुल गुरू ब्रहमर्षि वशिष्ठ तथा मर्यादापुरुषोत्तम राम से संबद्ध यह पावन ऐतिहासिक स्थान भारत वर्ष में कुल्लुघाटी में प्रसिद्ध तीर्थ के रूप में विख्यात है। बिपाशा नदी के तट पर स्थित गुरू वशिष्ठ इसी स्थान पर आत्मग्लानि के बंधन से मुक्त हुये थे तथा इसी स्थान पर घोर तपस्या की थी। श्री राम के 14 वर्ष के बनवास के दौरान रावण की मृत्यु के कारण ब्रह्म हत्या के पाप का प्रायश्चित करने के लिए जब अश्वमेघ यज्ञ करना

था तब कुल गुरू वशिष्ठ इसी स्थान पर घोर तपस्या में लीन थे। अन्य ऋषियों से परामर्श कर गुरू वशिष्ठ की तलाश का काम लक्ष्मण को सौंपा गया। बहुत तलाश के बाद लक्ष्मण ने गुरू वशिष्ठ को यहां ढूंढ लिया। सर्दी का मौसम देख लक्ष्मण जी ने गुरू के स्नान की सुविधा के लिए अपना अग्नि वाण चलाकर गर्म जल की धारा निकाली। वशिष्ठ तो तपस्वी थे उन्हें गर्म जल की जरूरत नहीं था। वशिष्ठ जी ने लक्ष्मण को थका जान कर इस कुंड में स्नान करने की आज्ञा दी तथा वरदान दिया कि जो भी यहां स्नान करेगा उसकी थकान भी दूर होगी और सभी चर्म रोग दूर हो जांयेगें। मैंने देखा इस कुंड में देश विदेश की सभी महिलाएं दूर-दूर से स्नान के लिए उपस्थित थी। यहां पुरुषों और महिलाओं के स्नान के लिए अलग-अलग कुंड है।

इस मंदिर की स्थापना लगभग 4000 वर्ष पूर्व राजा परीक्षित की मृत्यु के बाद, अपने पिता की आत्मा की शांति के लिए उनके बेटे जनमेजय ने तीर्थ स्थानों की यात्रएं की और बाद में यहां इस मंदिर की स्थापना की। कहा जाता है कि जो मूर्ति अश्वमेद्य यज्ञ के लिए राम जी की बनवाई गयी थी राजा जगतसिंह जी ने उस मूर्ति को लाने के लिए अनुचरों को भेजा परंतु पहचान न होने के कारण अलग-अलग मूर्तियां आती गयीं और कालांतर मैं इन्हीं मूर्तियों को वशिष्ठ और मणिकरण आदि के राम मंदिर में स्थापित किया गया। इतिहास की कई खूबसूरत और प्रेरणादायक कहानियां हैं जिन्होंने कई महान व्यक्तियों के जीवन को बदला है और उन्हें श्रेष्ठता के सोपान दिये हैं।

यात्रा की वापसी पर रास्ते में मणिकर्ण गुरूद्वारा आया। इस स्थान पर भी महिलाओं और पुरुषों के लिए गर्म पानी के स्त्रोत है जहां पर स्नान करके यात्रा की और संभवत: जीवन की थकान

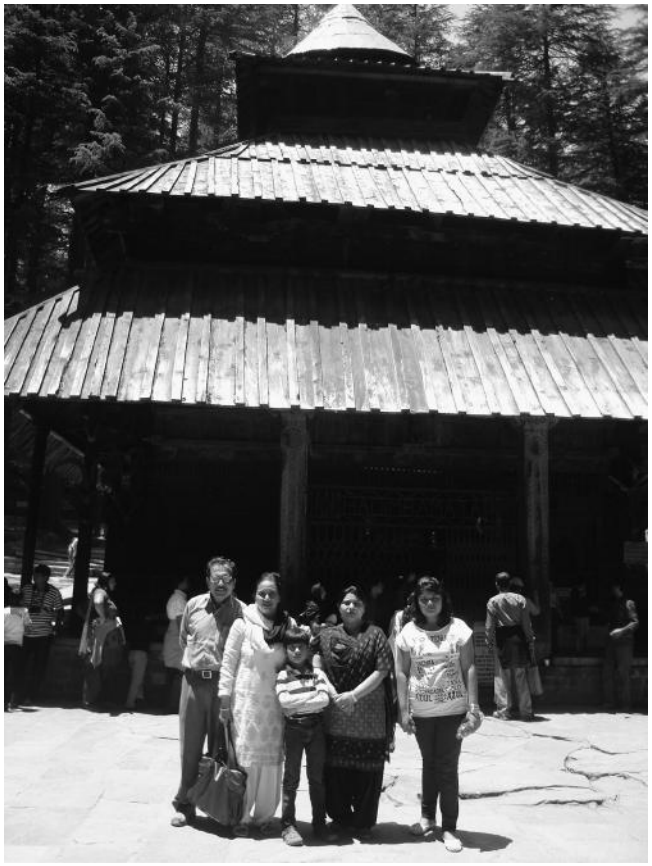

भी मिटाई जा सकती है। इस विशाल मंदिर में जाते ही आपको काले चने का प्रसाद मिलेगा और साथ में मिलेगा मिश्रित दूध रूहअफजा। प्राकृतिक सुंदरता को समेटे मनाली में कई आकर्षक और सुंदर दृश्य मिलते हैं जिन्हें आप जीवन भर अपनी स्मृति में संजों कर सकते है लेकिन इन बीच हिडिंबा देवी, वीर घटोत्कच और बरबरिक को भी आप कभी भूल नहीं पायेंगे, इनके व्यक्तित्व हमारी संस्कृति में सदियों से पूजनीय हैं।

ooo

ड्रीम डेट

सीमा सक्सेना असीम

हाँ ऐसा ही कि हम जिससे बहुत ज्यादा प्यार करते हैं वो हमसे दूर क्यों हो जाता है? क्यों वो उसे दुख देता है जिसने अपनी पूरी जान सौप दी, पूरी ज़िंदगी उसके नाम कर दी? क्या उसका दिल नहीं कसकता? क्या उसे ये अहसास नहीं होता कि वो तो पल पल में उसे जी रही है और वो अपने अहसास तक नहीं दे रहा है, न ही शब्द दे रहा है...क्या ये स्वार्थ नहीं है? चुप क्यों हो? बोलो न? आखिर इंसान ऐसा कर कैसे पाता है? क्या यही प्रेम है? वैसे प्रेम क्या होता है, मुझे बताओ?

सच तो यह है कि आरब से मिलना ही एक ड्रीम है फिर जब उस डे और डेट को अगर सच में एक ड्रीम की तरह से बना लिया जाये तो फिर सोने पर सुहागा! हाँ यह वाकई बेहद रोमांटिक ड्रीम डेट थी या मैं इसे और भी ज्यादा रोमांटिक और स्वपनीला बना देना चाहती थी! कितने महीनों के बाद हमारा मिलना हुआ था! एक ही शहर में साथ साथ जाने का अवसर मिला था! कितनी बेसब्री से कटे थे हमारे दिन रात, आसूं उदासी और ईश्वर की प्रार्थना करते हुए! आरब को देखते ही मेरा सब्र कहीं खो गया! मैं उस पब्लिक प्लेस में ही उनके गले लग गयी थी! आरब ने मेरे माथे को चूमा और कहा, ''चलो पहले यह सामान वेटिंग रुम में रख दे!''

''हाँ चलो''! मैं आरब का हाथ पकड़ लेना चाहती थी पर यह संभव नहीं था क्योंकि वे तेजी से अपना बेग खींचते हुए आगे आगे चले जा रहे थे और मैं उनके पीछे पीछे!

''बहुत तेज चलते हो आप''! मैं नाराज सी होती हुई बोली!

''हाँ अपनी चाल हमेशा तेज ही रखनी चाहिए!'' आरब ने समझाने के लहजे में मुझसे कहा!

''अरे यहाँ तो बहुत रश है!'' वे वेटिंग रूम को देखते हुए बोले!

लोगों का सामान और लोग पूरे हाल में बिखरे हुए से थे!

''अरे जब आजकल ट्रेन इतनी लेट हो रही हैं, तो यही होना हुआ न!'' मैं कहते हुए मुस्कुराई!

''कह तो सही ही रही हो! आजकल ट्रेन में सफर करने का समय ही नहीं है!'' वे मुस्कुराते हुए बोले!

मेरी मुस्कान की छाप उनके चेहरे पर भी पड़ गयी थी!

''फिर कैसे जाओ, क्या घर में बैठो?''

''अरे नहीं भई, आराम से फ्लाइट से जाओ!''

''यह भी सही है, आजकल फ्लाइट का सफर राजधानी से सस्ता है!''

सम्पर्क: 208 कॉलेज रोड, निकल ओल्ड रेलवे, बरेली-243001, मो. 09458606469

''हाहाहा'', वे हँसे! ''बिलकुल ठीक कहा! कुछ समय बाद देखना, ये फ्लाइट वाले जोर जोर से आवाजें लगाएगे! आओ, आओ, एक सीट बची है यहाँ की, वहाँ की! जैसे बस वाले लगाते हैं!''

उनकी बात सुनकर मैं भी जोर से मुस्कुरा दी!

इसी तरह से मुस्कुराते, बतियाते हुए लेडीज वेटिंग रूम आ गया था, किसी तरह से उसमें अपने सामान के साथ उनका सामान सेट किया!

''चलो अब बाहर चलते हैं, यहाँ बैठना तो बड़ा मुश्किल है!''

''लेकिन बाहर सर्दी लगेगी!''

''नहीं कोई सर्दी वर्दी नहीं! आओ!'' वे मेरा हाथ पकड़ते हुए बोले!

मैं किसी मासूम बच्चे की तरह उनका हाथ पकड़े बाहर की तरफ चलती चली गयी!

''चलो आओ, पहले तुम्हें यहाँ की फेमस चाय की दुकान से चाय पिलवाता हूँ!''

''आपको यहाँ की चाय की दुकाने पता हैं!''

''हाँ हाँ, क्यों नहीं पता होंगी, क्या मैं यहाँ से कहीं आता जाता नहीं?''

''मैं जवाब में सिर्फ मुस्कुराई!''

''सुन भई, जरा दो बढ़िया सी चाय लेकर आओ!'' उन्होने वहाँ पहुँचते ही अपनी ठसक भरी आवाज में ऑर्डर दिया!

कितने अपनेपन से कहा, जैसे जाने कब से उसे जानते हैं। वे शायद मेरे मन की भाषा समझ गए थे!

''अरे यह अपना यार है बहुत ही बढ़िया चाय बनाता है! मैं तो पहले कई बार सिर्फ चाय पीने के लिए ही यहाँ चला आता था!''

वे बोल रहे थे और मैं उनके चेहरे को देख रही थी! न जाने कुछ खोज रही थी या उस चेहरे को अपनी आँखों में और भी ज्यादा भर लेना चाहती थी!

चाय मेज पर रखकर जाते हुए उस लड़के ने पूछा था ''कुछ और भी चाहिए?''

''नहीं बस यहाँ की चाय से ही तृप्त हो जाता हूँ!''

चाय वाकई स्वाद थी! इंतजार की सारी थकान खत्म हो गयी थी! लेकिन यह मेरी अपेक्षाओं के अनुकूल नहीं थी! मैं तो उनके साथ गुजारे एक एक पल को बेहद खूबसूरत और रोमांटिक बना लेना चाहती थी! जैसे चाँद की रोशनी में बैठ कर उसे घंटों निहारती रहूँ और वो मेरी गोद में सर रखे, मेरी आँखों में खो जाये!

''अरे चलना नहीं है? चाय इतनी अच्छी लगी कि और पीने का दिल कर रहा है?'' आरब ने मुझे सोच में आ डूबे देख कर टोंका!

''नहीं नहीं बाबा,ऐसा नहीं है! चलो चलते हैं!''

''अब यह बाबा कौन है, यह भी बता दो हमें?'' वे खूब जोर से खिलखिला कर हंस दिए। कितने प्यारे लगते हैं, यह यूँ हँसते हुए!

कहीं किसी की नजर न लग जाए हमारे प्यार को, हमारी मुस्कान को! मैंने अपने हाथ ऊपर उठाते हुए रब से दुआ मांगी!

रात का समय था और ट्रेन अभी दो घंटे और लेट थी, इस समय को गुजारना अब कोई मुश्किल काम नहीं था। क्योंकि हमारा प्यार, हमारा आरब हमारे साथ है, वो हर जगह बहुत प्यारी है जहाँ मेरा आरब हो, मैं मन ही मन बोली! मैंने आरब का हाथ अपने हाथ में कसकर पकड़ रखा था, ऐसे जैसे कि अगर पकड़ थोड़ी भी ढीली पड़ी तो वो कहीं मुझसे अलग न हो जाएँ क्योंकि मैंने उस दूरी के कष्ट को इस कदर सहा है, इतने आंसू बहाये हैं कि अब साथ में है तो पल भर को भी दूर या अलग नहीं होने देना चाहती थी!

''साथ ही हूँ तेरे न, फिर कैसी परवाह?'' आरब ने मुसकुराते हुए पूछा!

''हाँ मैं इस साथ को महसूस करना चाहती हूँ!'' मैं भी मुसकुराते हुए बोली!

''बड़े अच्छे लगते हैं यह धरती, ये नदिया, ये रैना और तुम .... आरब गुनगुना रहे थे और मैं उस मधुर धुन में खोयी उनका हाथ थामें हर बात से बेफिक्र सी चाल से चल रही थी!''

जनवरी का महीना और सर्द मौसम, इसलिए स्टेशन पर लोग न के बराबर थे हालांकि ट्रेन बहुत लेट चल रही थी! लोग वेटिंग रूम में ही खुद को किसी तरह से एडजस्ट किए हुए थे या जो कुछ लोग बाहर बैठे भी थे वे खुद को खुद में ही सिकोड़े समेटे दुबके हुए से बैठे थे! मैं इस सर्द मौसम में अपने आरब का हाथ पकड़े स्टेशन के एक छोर से दूसरे छोर तक घूम रही थी! आज शायद पूर्णिमा का दिन था सो चाँद पूरे निखार के साथ आसमान में चमक रहा था! मैंने आरब को उँगली उठाकर चाँद दिखते हुए कहा, ''देखो, वो चाँद गवाह है न हमारे प्रेम का! कितनी मोहकता से हमें ही देख रहा है!''

''हमारे प्रेम को किसी गवाह की जरूरत ही कब है? जब हमारी आत्माएं तक एक दूसरे में रच बस गयी हैं!'' वे बोले!

मैं सिर्फ मुस्कुरा कर रह गयी और उस ताप, उस ऊष्मा में खोती हुई उसे अपने बेहद करीब महसूस करते हुए साथ साथ चलती रही! प्रेम में बिताया और प्रेम के साथ का एक एक पल हमेशा यादगार होता है उसे हम एक ड्रीम की तरह अपने अन्तर्मन में बसाये रहते हैं!

''सुनो तुमने खाना खाया?'' आरब ने मौन तोड़ा और मेरी तरफ मुखातिब होते हुए पूछा!

''हाँ!'' मैंने संक्षिप्त सा जवाब दिया!

''सही!'' वे संतुष्ट होते हुए बोले!

''आपने?''

''हाँ आई मैं तो खा कर ही आया हूँ!''

''सुनो, मेरे पास बिस्किट और केक पड़े हैं, आप खाएँगे?''

''न अभी कुछ नहीं खाना! चाय भी पी ली है और सफर भी करना है, रात का सफर है!''

''हम्म!'' मैंने मुसकुराते हुए अपना सर हिलाया!

पूरे एक घंटे तक यूं ही दीवानों की तरह उस स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर एक दूसरे का हाथ पकड़े टहलते रहे! आरब ने कुछ इस तरह से मेरे हाथ को अपने हाथ में सहेज रखा था मानो कोई फूल! मैं कभी मुस्कुरा रही थी और कभी आरब की बांह पर अपना सिर टिका दे रही थी! कितना मजबूती का अहसास मन में भर रहा था, मानों खुशियां सिमट आयी हो, सच में तुम्हारे होने से बढ़कर मेरे जीवन में कोई और खुशी नहीं है, उनके इंतजार में बिताए दिन, आँखों से बहाये गए आँसू, सब न जाने कहाँ खो गए थे और आज मैं उसके साथ में अपने सारे दुख भुला कर सिर्फ मुसकुराना चाहती थी! बहुत रो लिए अकेले में अब साथ में हंसने के दिन आये हैं!

''चलो अब तुम थक गयी होगी जाकर वेटिंग रुम में बैठ जाओ!''

''और आप?''

''मैं यही ठीक हूँ!''

''सही है, वैसे मैं भी यहीं आपके साथ रहना चाहती हूँ!''

''अरे यार, साथ ही तो हैं!''

''आरब.... तुम यहाँ?'' किसी ने उनको आवाज लगाते हुए कहा!

वो शायद गार्ड थे और आरब के दोस्त! देखा जाए तो आरब का व्यवहार इतना अच्छा है कि वे एक बार किसी से मिलते हैं उसके दिल में उतर जाते हैं और फिर सालों महीनों न मिलने के बाद भी लोग उन्हें याद रखते हैं!

''और सुना क्या हाल है तेरा और तेरे दोनों बॉडीगार्ड का?'' आरब ने गर्मजोशी से हाथ मिलते हुए कहा!

''सब सही है भाई!''

इनको बॉडीगार्ड की क्या जरुरत, मैंने मन ही मन में सोचा, यह कोई फिल्म स्टार तो लग नहीं रहे!

''सुनो, अब तुम वेटिंग रूम में जाकर आराम से बैठो, मैं अपने यार से बातें कर लूँ! बड़े दिनों के बाद दिखाई दिया है और सबसे ज्यादा खुशी की बात यह है कि उसने मुझे पहचान लिया है!''

''जी!''

अब तो मुझे जाना ही था लेकिन मैं जाना नहीं चाहती थी, इतनी मुश्किल से मिले इस साथ का एक एक पल साथ में ही बिताना चाहती थी! खैर मैं अंदर आ गयी और अपना मन और आत्मा बाहर आरब के पास छोड़ आई! करीब एक घंटा गुजर गया और मैं वहाँ आसपास के लोगों से बोलती और मोबाइल से खेलती

रही! अब मुझे घुटन सी होने लगी! आरब तुम इतने लापरवाह कैसे हो सकते हो, कोई तुम्हारे इंतजार में बैठा है और तुम करीब होकर भी मेरे करीब नहीं हो, मुझे बहुत तेज गुस्सा आ रहा था, नजरें लगातार वेटिंग रूम के गेट की तरफ लगी हुई थी, आखिर नहीं रहा गया और मैं खुद ही बाहर निकल आई, देखा दूर दूर तक वे कहीं नहीं दिख रहे थे, अब तो ट्रेन के आने का समय भी हो गया है आधे घंटे में ट्रेन आ जाएगी, मैंने अपनी नजरें चारों तरफ घुमाई तो देखा सामने से दोस्त से बतियाते चले आ रहे हैं!

मैंने उनको देखा और नजरों से ही इशारा किया! वे समझ गए और करीब आते हुए बोले, ''क्यों क्या हुआ?''

''कुछ नहीं यह बताने आई थी कि ट्रेन के आने का समय हो गया है!''

''हाँ यार पता है!''

''तो चलिये समान ले आयें!'' ''अरे ले आएंगे! अभी बहुत देर है!''

''जी नहीं, अब देर नहीं है यहाँ से समान लेकर जाने में ही करीब करीब 10 मिनट लग जाएँगे!'' ''हाँ यह ठीक है!'' उन्होने आखिर सहमति में सर हिलाया! भरे हुए वेटिंग रूम से किसी तरह सामान निकाल कर बाहर लेकर आए क्योंकि लोग फर्श तक पर बैठे हुए थे और इसका कारण सिर्फ एक ही था कि ट्रेन हद से ज्यादा लेट हो रही थी! हम लोग हमेशा फ्लाइट ही से जाते हैं परन्तु इस बार हमें जाना था ट्रेन के फर्स्ट क्लास के कोच में! कुछ अलग या बिलकुल अलग सा अहसास महसूस करने के लिए! ट्रेन प्लेटफार्म पर बस आने ही वाली है, अनाउंस हो गया था! मैं और आरब अपने अपने सामान को लेकर प्लेटफॉर्म पर खड़े हो गए थे!'' यार ट्रेनों ने रुला ही दिया! मैं इतना बड़ा हो गया लेकिन आजतक कभी भी इतनी लेट ट्रेन नहीं देखी अनाउंस हो गया है लेकिन ट्रेन का कहीं अता पता ही नहीं! सच ही तो कह रहे हैं जिसे देखो वो परेशां है वेटिंग रूम भरे हुए है, लोग जमीं में बैठे हुए हैं, क्या करें? अकेली महिलायें बच्चे सफर कर रहे हैं, वे भी ट्रेन के लेट होने से दुखी हैं और उनके साथ साथ घर में बैठे उनके परिवार वाले भी।

खैर ट्रेन प्लेटफॉर्म पर लग गयी, ओह! मानो सबको स्वांस में स्वांस आ गयी कोच के फर्स्ट क्लास वाले कूपे में चढ़ते हुए लगा जैसे किसी घर में प्रवेश कर लिया है जहाँ हमारा अपना कमरा हर सुविधा से युक्त है सीनरी, फ्लावर पॉट से सजा हुआ। कूपे में दो सीट थी एक ऊपर और एक नीचे! नीचे वाली सीट को खींच कर बेड की तरह बना कर हम दोनों बैठ गए, फिल्मों में देखे हुए वो सीन याद आ गए जो पुरानी फिल्मों में हुआ करते थे, जब गाने गाते हुए हीरो हीरोइन अपने हनीमून इसी तरह के ट्रेन के एक कूपे में मनाते थे!

''सुनो आरब जब हम बात करते हैं न, तो कितना हल्का हल्का सा हो जाता है मन... हैं न?''

''हाँ तुम सही कह रही हो ....एकदम फूल की तरह से.... जब मैं तुमसे अपने मन की बात कर लेता हूँ तो वाकई बहुत ही अच्छा लगता है!''

''लेकिन मुझे कुछ भी समझ नहीं आता कि ये दुनियाँ में ऐसा क्यों होता है?''

''ऐसा?''

''हाँ ऐसा ही कि हम जिससे बहुत ज्यादा प्यार करते हैं वो हमसे दूर क्यों हो जाता है? क्यों वो उसे दुख देता है जिसने अपनी पूरी जान सौप दी, पूरी ज़िंदग़ी उसके नाम कर दी? क्या उसका दिल नहीं कसकता? क्या उसे ये अहसास नहीं होता कि वो तो पल पल में उसे जी रही है और वो अपने अहसास तक नहीं दे रहा है, न ही शब्द दे रहा है ...क्या ये स्वार्थ नहीं है? चुप क्यों हो? बोलो न? आखिर इंसान ऐसा कर कैसे पाता है? क्या यही प्रेम है? वैसे प्रेम क्या होता है, मुझे बताओ?''

''नहीं, ऐसा नहीं होता कभी कभी परिस्थितियाँ ऐसी बन जाती हैं कि इंसान मजबूर हो जाता है!''

''अच्छा आरब सुनो, मेरा अहसास, प्यार, समर्पण और विश्वास सब कुछ तुम्हारा ही तो है फिर मेरी कैसे याद नहीं आती, तुम कैसे मुझे भूल जाते हो?''

''नहीं कभी नहीं भूलता ...कहा न मजबूरी!''

''इतनी मजबूरी कि कोई घूंट घूंट दर्द पी रही है बिना कहे, बिना सुने... उसके आँसू उसे क्यों नहीं दिखते क्योंकि वो छुप छुप कर रोती है और सामना होने पर अपने आँसू छुपा लेती है ताकि तुम को कोई दुख न हो, क्या उसकी कमजोरी समझता है इसलिए ऐसा करता है?''

''समझ नहीं आ रहा, क्या कहूँ?''

''कहो न कुछ, मेरे दर्द को समझो। मैं कुछ कह नहीं पाती हूँ!''

''समझता हूँ, सच में तुम जानती हो न की मैं कभी झूठ नहीं बोलता,''

''तो सब कह देना चाहिए क्योंकि प्रेम कहने सुनने से और बढ़ता है, है न? जब हम प्रेम करते हैं तो फिर यह क्यों सोचते हैं कि वह कुछ न कहे बस सामने वाला कहे। प्रेम गली अति संकरी जा में दो न समाये, हम अलग नहीं हैं, हम एक हैं!''

''अरे एक ही तो बात है, चाहें कोई कह दे!''

''लेकिन अगर एक ही बराबर कहता रहे, दूसरा कभी पहल न करे तो?''

''तो भी कोई बात नहीं? तुम प्रेम का अर्थ समझती ही नहीं हो?''

उसे पता था कि आरब किसी तरह से भी अपनी ही बात रखेंगे चाहे आरब से कितनी भी बहस क्यों न कर ले, जीतेगा वही और मैं हार जाऊंगी! वैसे हार जाने में भी जीत छिपी होती है! हारकर जीत जाना ज्यादा बेहतर है, जीत के हार जाने से!

खैर मेरी ख्वाबों भरी आँखों में थकान की वजह से नींद भर गयी थी, कल से आने की तैयारी और आज सुबह ही घर से निकलना और यहाँ पहुँच कर ट्रेन के इन्तजार में शरीर दर्द से जवाब देता लग रहा था! बस अब सो जाओ!

आरब ने सामान सही से लगाया और उसे कसकर सीने से लगते हुए उसके माथे को चूम लिया, आह मानों जेठ की तपती हुई रेत पर सागर की शीतल लहर आ कर ठंडक दे रही हो! सच में कितना मुश्किल होता है न? यूँ महीनो और सालों एक दूसरे से दूर रहना!

''आरब, तुम अपने दोस्त से क्या कह रहे थे की दोनों बॉडीगार्ड ठीक हैं? क्या वो कोई बड़ी हस्ती है जो उसे यूँ बॉडीगार्ड की जरुरत पड़ी?''

''अरे नहीं यार, उसकी दो प्रेमिकाएं हैं न उनके बारे में कह रहा था!''

''दो दो प्रेमिकाएं, लेकिन यह गलत है न? शादी क्यों नहीं कर लेते किसी एक से?''

''वो पहले से ही शादीशुदा है।''

आरब मुस्कुराते हुए बोले!

''शादीशुदा होकर भी दो दो प्रेमिकाएं?'' मैं चौंक सी गयी!

''हाँ यार आजकल की दुनिया में यही सब चल रहा है, तुझे कुछ पता भी है दुनियादारी के बारे में, खैर छोड़, हम क्यों अपना दिमाग खराब करें?''

''सुनो मैं तुम्हारे लिए कुछ लाया हूँ!''

''मैं भी!''

''अच्छा अब पहले तुम दिखाओ!''

''नहीं पहले तुम!''

''अरे लेडीज फर्स्ट''

''नो, बैड मेनर, पहले आपको देना चाहिए!''

''बाबा मैं हारा वरना पहले आप, पहले आप में रात गुजर जाएगी!''

हाहा मुझे जोर की हंसी आ गयी, आरब भी मुस्कुरा दिये, कितना अच्छा लगता है न, यूँ हँसते हुए खुशियों को दामन में भरते हुए!

आरब ने अपनी पेंट की जेब से एक डिब्बी निकली और उसमें से डायमंड की अंगूठी निकाल कर उसकी ऊँगली में पहना दी!

''वाओ, कितनी प्यारी है और मैं यह लायी हूँ! उसने एक गर्म शॉल उसके गले में डालते हुए कहा, देखो तुम पहाड़ पर रहते हो तो तुम्हे ठण्ड भी बहुत लगती होगी हैं न?''

''हाँ सच में।''

''तो अब इसे हमेशा अपने साथ में रखना!'' कहते हुए उसके गले से लग गयी, ट्रेन अपनी रफ्तार से चल रही थी और उसकी धड़कनें भी साथ साथ धड़क रही थी जैसे ट्रेन और उनकी सांसों की रफ्तार एक सी हो गयी हो!

○○○

दोष

मूलः वासदेव मोही
अनुवादः डॉ. प्रेम प्रकाश

सुखमनी की कैसेट चल रही थी। आलमचंद शांत चित सुन रहा था। यह भगवंती नावाणी गा रही है, उसको भी तो भगवान ने कुसमय अपने पास बुला लिया, यह भगवान भी न, बिल्कुल पगला गया है, कुछ समझ नहीं आ रहा उसे। लेकिन नरू के जाने के पीछे बिचारे भगवान को क्या दोष दें। मैं ही मूर्ख निकला। नरू को बचपन में न दारू चटाता न उसको यह निगोड़ी लत लगती। मैं ही तो कारण हूँ इस मासूम की मृत्यु का।

सम्पर्कः प्रेम प्रकाश, ई-68/1060, कृष्ण नगर, सहिजपुर बोधा, अहमदाबाद-382345, मो. 9426353918

परमानंद रोए जा रहा था। घर के सदस्य उसे चुप कराने की कोशिश कर रहे थे लेकिन उसका रुदन बंद ही नहीं हो रहा था। ''मैंने मार दिया सोने सरीखे लड़के को, मैंने मार दिया नरू (नरेश) को।'' आलमचंद, फर्श पर सफेद चादर के नीचे ठंडे प्राणी को जैसे भूल गया था, उसका पूरा ध्यान परमानंद को चुप कराने में लगा था। ''बेटे, जीना-मरना हमारे वश में नहीं है, हरि इच्छा पर है।'' ''नहीं-नहीं बाबा, मैं दोषी हूँ, मैंने ही परसों नरू को बुरा भला कहकर दुकान से धकेल दिया था, बुरा भला क्या, गालियां देकर धकेल दिया था। मासूम केवल दुकान के बाहर बेंच पर आकर बैठा था, ठीक से खड़ा होने की स्थिति में भी नहीं था, मैं समझा धुत होकर आया है। मुझे क्या मालूम उसकी पूरी कमर पीड़ा से ऐंठ गई है। पेट दर्द से कराह रहा है। हाथ से बार बार दांई ओर दबा रहा था। गूंगी गाय की तरह मुझे केवल देखता रहा, लेकिन मेरी जीभ पर मानों किसी ने धतूरा रख दिया था,'' परमानंद फिर फूट पड़ा, ''मैं सिर्फ गालियां दे रहा था, मेरा कोसना बंद ही नहीं हो रहा था। वह मुश्किल से बेंच से उठा, अपने को सम्हाल नहीं पाया, गिर पड़ा। पास से गुजरने वालों ने उसे ऊपर उठाया, लेकिन खड़ा नहीं हो पा रहा था, दूर की गली में रहने वाले झामनदास मेरी ओर अजीब आंखों से देखते, किसी अनजान आदमी की सहायता से, उसे सहारा देकर घर तक ले आया, लेकिन मैं इतना गुस्से में था कि दुकान से उतर कर उसे हाथ भी नहीं दिया।'' फर्श पर बिछी चटाइयों ओर चद्दरों पर बैठी औरतें, जो रुक्मणी सहित, कुछ देर के लिए शांत थीं, परमानंद के शब्द कानों में पड़ते ही, हृदय विदारक रुदन में फूट पड़ीं। रुदन में, आधे घूंघट में ढंके चेहरे वाली सविता की झीनी-झीनी सिसकियां भी शामिल थीं। परमानंद का रोना फिर से शुरू हो गया। दिल दहलाने वाले रोने-धोने के बीच में थोड़ी दूरी चद्दर पर लक्ष्मण चुपचाप बैठा था। उसकी आंखें सूखी तो नहीं थीं, लेकिन आंसू गोया बाहर आने के बदले अंदर चले जाते थे। उसका मन बार बार चाह रहा था, कि परमानंद को सम्हाले, उसे कहे कि, भाई मेरे, इसमें तेरा क्या दोष, दोष है तो मेरा, मैंने ही बेटे की ओर ध्यान नहीं दिया। ध्यान देता तो मुझे बेटे का कंधा नसीब होता, अब उल्टा बेटे की अंत्येष्टि... उसे लगा वह बोलने की स्थिति में नहीं है, उसके सोच में कोई अटक है, उसके सोच में किन्हीं शान्त सिसकियों की अटक है... उसकी एक एक साँस

को जाते देखा...मेरा दोष है...उसकी आंखें भर आई, उसे लगा कि आंसू बस अब गिरे कि गिरे, लेकिन...

नरेश को गिरती पड़ती स्थिति में दूर की गली वाले झामनदास और किसी अनजान आदमी के साथ दरवाजे पर देखकर आलमचंद जल्दी से बाहर आ गये थे। उन्होंने झामनदास की सहायता से नरेश को हाल की सेटी पर लिटाया। नरेश से दर्द सहन नहीं हो पा रहा था, वह पेट की दांई ओर जोर दे रहा था। रुक्मणी धुले कपड़ों को तहकर रखने को छोड़कर रूम से और सविता गैस चूल्हे पर रखी केतली को भूलकर रसोई से उतावली से आई। रूक्मणी नरेश के पेट की मालिश करने लगी, सविता, डरी हुई, फक्क चेहरे से नरेश के पांवों के आगे खड़ी हो गई। नरेश उसे देख रहा था, सविता की आंखें झुक गई।

आलमचंद ने फैमिली डॉक्टर को बुलाया। डॉक्टर तुरंत आया। नरेश के पेट की तपास की, उसकी आंखें देखीं, आंखें हल्दी जैसी थीं। ''इसे उल्टी आदि हुई है? उबकाइयां आती हैं, लेकिन उल्टी नहीं आती।'' डॉक्टर ने इंजेक्शन दी, लेकिन सलाह दी कि नरेश को जल्दी से अस्पताल ले जाएं, उसका इलाज वहीं संभव है। जलने की गंध आते रुक्मणी रसोई में चली गई। आलमचंद ने फोन लगाया, ''दयाल, तुम ऑफिस से आ गये हो न, जल्दी घर आओ।''

आलमचंद और दयाल ने नरेश को कार में लिटाया, सविता कार के आगे आकर खड़ी हुई। नरेश ने उसे देखा, दोनों की कारें गीली थीं। ''बेटे तुम घर बैठो, हम बस अस्पताल में दिखाकर आते हैं।'' अस्पताल ले आये। दौड़ धूप हुई, कई टेस्ट हुआ। डॉक्टरों ने कहा ''गुर्दे काम नहीं कर रहे, डायलिसिस की जरूरत है। लीवर पर काफी सूजन है, डायलिसिस तो तुरंत होना चाहिए। दयाल, तुम फोन करके लछू (लक्ष्मण) को बंबई से बुला लो, उसे केवल इतना कहना कि नरू की तबीयत कुछ खराब है, तुम्हें देखेगा तो ठीक हो जाएगा।''

दयाल ने फोन किया। लक्ष्मण चिंतित हुआ। ''नहीं भाऊ (बड़े भैया), चिंता की बात नहीं, बस ऐसे ही आपको याद कर रहा है,'' तो...दयाल अंदर ही अंदर अपने को कोस रहा था। नरू की इस हालत का उत्तरायी मैं हूँ। रिहैबिलिटेशन सेंटर (नशे की आदत दूर करने का केंद्र) से लौटने के दस दिन तक वह बिल्कुल ठीक था, उसने एक बूंद भी नहीं ली थी, बिल्कुल खुश था, दुकान पर भी रेग्युलर जाता था। भाभी और सविता के चेहरे भी चमक रहे थे। मुझे न जाने क्या सूझी कि मैं ऑफिस से सीधे भाऊ के घर चला गया। नरू और बहू ठहाके मार रहे थे।'' हैपी बर्थडे नरू बेटा।'' दोनों ने पांव छुए। भाभी रसोई में उनके लिए चाय बना रही थी। रसोई में चला गया था। भाभी के पांव छूकर उन्हें बधाई दी। ''यह कोई चाय का समय है? आज तो नरू का बर्थडे है, आज चाय कैसे पिएंगे। हाल में आकर मैंने ब्रीफकेस से बोतल निकाली थी।'' सविता पूरी पीली पड़ गई थी, भाभी रसोई से चली आई। ''नहीं दयाल, इस डायन को इस घर से दूर रख।'' ''लेकिन भाभी, आज अपने लाल का जन्मदिन है, एक पेग से कुछ नहीं होगा। बाबा कहां हैं?'' ''सत्संग में गए हैं, कहकर गये हैं, वहां लंगर है, खाकर आएंगे।'' नरू ने बोतल उठा ली थी।

रात का डेढ़ बजा था, लेकिन पूरी गली जाग गई थी। नरेश की बॉडी लेकर एम्बुलंस गली में घुसी तो सब दरवाजे खुले थे। सब के मन भारी थे। पड़ोस का ऐसा संस्कारी लड़का ऐसे चला जाए, किसी की मान्यता में नहीं आ रहा था। अभी छः महीने पहले ही तो उसे लड्डू खाए हैं, छोटी सी बहू पर क्या गुजरती होगी! दरवाजे पर आवाज हुई दरवाजा खुला ही था। किन पड़ोसियों के साथ टेकचंद अंदर आकर आलमचंद का हाथ अपने हाथ में लेकर उसके ऊपर अपना दूसरा हाथ रखकर कुछ शांत रहा—''यहां आकर हम सब बेबस हो जाते हैं, मालिक की इच्छा के आगे किसी की नहीं चलती; लेकिन नरू की जाने की उम्र नहीं थी, ऐसा गबरू जवान, उसे जाना नहीं चाहिए था, पड़ोस में हरेक का लाडला था, देवी ने सुना तो विश्वास ही नहीं किया और फिर सिसकियां भरने लगी, मेरे पीछे ही आ रही है।'' उसकी आवाज भर्राई हुई थी। दूसरे पड़ोसियों ने हाथ घुमाकर शोक प्रकट किया और आंगन की दीवार के आगे खड़े हो गए। उसी पल देवी रोते रोते दाखिल हुई, आलमचंद को गीली आंखों से देखते, अंदर जाकर रुक्मणी के पास जगह बनाकर बैठी; रुक्मणी का सिर अपनी तरफ कर, उसे सीने से लगाया, चूमा। रुक्मणी अपने को सम्हाल नहीं पाई दीदी। ''नरू! नरू! शांत, शांत, हिम्मत से काम लो, अगर तुम कमजोर पड़ोगी तो बहू का क्या होगा!'' उसकी आवाज कुछ लरज गई, ''उस बिचारी ने तो अभी कुछ देखा भाला ही नहीं, खुशियों को जाना ही नहीं। उसने पल्लू की किनारी से आंख के कोने को पोंछा।'' सविता की सिसकी साफ सुनाई दी।

देवी ने प्राणी की ओर नजर डाली। परमानंद की बहू, कटोरे में थोड़ी हल्दी ले आई। ''ठहरो, मेरे पास है, दीवाली पर कुछ दिये जलाना रह गए थे, लेकर आती हूं।'' देवी जल्दी से बाहर निकल गई। उस वक्त दयाल, हस्पताल की विधियां, बिल आदि पता कर, गंभीर चेहरे से दाखिल हुआ। परमानंद रोते हुए, भाई से लिपट गया। ''दादा! मैंने ठीक नहीं किया, मेरी बेहूदी झिड़कियों के कारण लाल गहरे सदमे की हालत में पहुंच गया।'' दयाल,

परमानंद के सिर को सहलाने लगा, ''धीरज धर, पमू, हिम्मत से काम लो। अगर कोई दोषी है तो मैं हूँ'', दयाल ने मन में सोचा–अगर मैं नरू के बर्थडे पर...

पड़ोसिन गंगा चाय के कई कप बड़ी ट्रे में लेकर औरतों की ओर जाती है। पड़ोसिन जमाना हाथ में कैसेट लेकर अंदर आती है। अंदर चाय की प्यालियों की आवाज के बाद टेपरिकार्डर पर सुखमनी का पाठ शुरू हो जाता है। आलमचंद डायरी से नाम और फोन नंबर नोट कर रहे हैं। दयाल उसके पास आकर कहता है, ''बाबा, नाम ओर नंबर नोट कर रहे हैं।'' दयाल उसके पास आकर कहता है, ''बाबा, नाम और नंबर नोट करने की आवश्यकता नहीं है, आप मुझे बताते जाएं, मैं फोन करता जाऊंगा।'' ''नहीं बेटा, ऐसे कुसमय किसी को नींद से जगाना ठीक नहीं है, पांच–छह बजे के बाद फोन करना है।'' ''ठीक है बाबा, आप केवल नाम टिक करके दें, मैं फोन करता जाऊंगा। लछू बेटे जरा इधर आना। मेरे पास तो बहू के मायके वालों का नंबर नहीं है, दयाल को दो तो, उनको तो इसी वक्त फोन करना चाहिए।''

''बाबा, मैंने उन्हें...बता दिया है...वे सुबह ग्यारह बजे की ट्रेन से पहुंच रहे हैं।'' लक्षमण का सोच के अटक के साथ उसे बोलने में भी तकलीफ हो रही थी, लगा, वह बोलने के लिए काफी मेहनत कर रहा है।'' मतलब स्टेशन से आते आते बारह बज जाएंगे...देर हो जाएगी। बर्फ मंगानी पड़ेगी...पमू (परमानंद) अंदर कहकर आओ प्राणी को घी की मालिश करें...''

सुखमनी की कैसेट चल रही थी। आलमचंद शांत चित सुन रहा था। यह भगवंती नावाणी गा रही है, उसको भी तो भगवान ने कुसमय अपने पास बुला लिया, यह भगवान भी न, बिल्कुल पगला गया है, कुछ समझ नहीं आ रहा उसे। लेकिन नरू के जाने के पीछे बेचारे भगवान को क्या दोष दें। मैं ही मूर्ख निकला। नरू को बचपन में न दारू चटाता न उसको यह निगोड़ी लत लगती। मैं ही तो कारण हूँ इस मासूम की मृत्यु का।

''सेठ साहब!''

आलमचंद का सोच टूटा। ''आइए, आइए धर्मदास, बस में आए? यह क्या हो गया अचानक ही, तबीयत इतनी खराब थी क्या! रुकी (रुकमणी) ने या लक्ष्मण ने तो समाचार भी नहीं दिया। किस समाचार की बात करें साईं, बस जैसी मालिक की इच्छा!'' लक्ष्मण आकर धर्मदास के आगे झुकता है तो धर्मदास उसे सीने से लगा लेता है। ''हमारा इकलौता भानजा!'' धर्मदास की आवाज भीगी हुई थी। लक्ष्मण के मुंह से कोई शब्द नहीं निकला। परमानंद, धर्मदास को पानी का गिलास देता है। ''चाय?'' नहीं, बिल्कुल जरूरत नहीं है। ''परमानंद धर्मदास को रूम के अंदर ले जाता है।'' ''भाभी!'' रुक्मणी रूम में आकर धर्मदास की छाती में अपना मुंह छुपा देती है। ''दादा! दादा! मेरी ममता ने ही मार दिया नरू को!''

''बहना! अपने मन को भटकाओ मत! शांति से काम लो! कोई किसी को नहीं मारता, सबके दिन गिने हुए होते हैं। नहीं, नहीं दादा, मुझसे उसकी हालत देखी नहीं जाती थी। वह बिचारा तो अपने ऊपर कंट्रोल रखता था, लेकिन जब देखती थी कि उसके हाथ पांव कांपने लगे हैं, वह बार बार कमरे में चक्कर लगाने लगा है तो मैं अपने हाथ से स्टील के गिलास में एक पेग डालकर उसे देती थी। मैंने खुद बिटवा को मार दिया। दादा! कभी कहता था, मम्मी कमरे में सांप सरक रहे हैं, कभी कहता था मम्मी देखो, हॉल में उल्लू उड़ रहे हैं, न जाने कैसे कैसे भ्रम, कैसी कैसी कल्पित शक्लें उसकी आंखों के आगे मंडराती थीं, होता कुछ नहीं था। मुझसे सहन नहीं होता था, मुझे क्या मालूम बेटे को जहर पिला रही हूँ।'' ''धीरज धरो, रुकी, सब कुदरत के खेल हैं। सबकी बहियां लिखी हुई हैं, उनको कोई मिटा नहीं सकता। जन्म के साथ ही मृत्यु तय हो जाती है, युगों से यही रीति चली आ रही है।'' सविता पानी का गिलास ले आती है, सास को पिलाती है। हीरों जवाहरों जैसी बहू मिली है तुम्हें, उसकी सोच, तेरा फर्ज है उसे सम्हालना, बिचारी वह तुझे सम्हाल रही है। ''धर्मदास बाहर आकर लक्ष्मण के पास बैठता है। ''दादा!'' लक्ष्मण की आवाज भारी थी। तुम कितने बजे पहुंचे? सुबह को। तबीयत इतनी खराब थी क्या उसकी?''

''लक्ष्मण की आंखें एक बार फिर गीली हो गईं। उसने बड़े साले को बताना चाहा, पर कुछ बोल नहीं पाया कि मुझे मालूम नहीं था कि उसकी तबीयत इतनी खराब है, मैं तो बस उससे मिलने के लिए ही आया था वैसे भी चार महीने हो गए थे, घर आया ही नहीं था, काम का बोझ बहुत रहता है, रविवार भी नहीं जैसा होता है, रुकी ने एक दो बार लिखा, फोन भी किया कुछ ठीक नहीं रहता, या करता है, दुकान पर जाता है, लेकिन कहता है पेट में दुखता है, खाना बिल्कुल कम खाता है, उसे हजम ही नहीं होता है, दुबला हो गया है, लेकिन चिंता मत करें, बहू उसका पूरा ख्याल रखिएगा...उसने बताना चाहा, रीहैबिलिटेशन सेंटर में नरू के साथ के साथ दस दिन रहने के बाद उसने समझा कि अब सब ठीक है, उसकी लत दूर हो गई, मैंने बिल्कुल ध्यान हटा दिया, बेफिक्र हो गया, मेरी लापरवाही के कारण...

लक्ष्मण ने सुबह को स्टेशन से ही अस्पताल जाने का सोचा था, लेकिन पमू ने कहा, ''भाऊ चिंता न करें, दयाल और भाभी अस्पताल में हैं, आप नहा धोकर, नाश्ता करके आराम से आ जाईयेगा।'' मुझे यह बात नहीं माननी चाहिए थी, लक्षमण को अफसोस हो रहा था, अंत में नरू के दो शब्द भी सुन नहीं सका, पता नहीं कौन कौन सी बातें बिना कहे अपने साथ ले गया। नहाने के समय पमू ने दरवाजा खटखटाकर पूछा, भाऊ तैयार हैं, उस अजीब सवाल पर ध्यान ही नहीं गया। कपड़े पहन रहा था कि पमू फिर से आया, चलें। मुझे भी नाश्ते की आवश्यकता नहीं लग रही थी। बाबा ने भी कहा, जल्दी जाओ, सम्हालकर जाना।

परमानंद कार तेज चला रहा था, लक्ष्मण ने दो बार उसे सम्हालने के लिए कहा। परमानंद कुछ कह नहीं रहा था, लक्ष्मण को चिंता होने लगी थी। अस्पताल पहुंचने पर लक्ष्मण ने देखा, रुकी रो रही थी, दयाल मायूस खड़ा था, दो नर्सें और असपताल के कई आदमी नरू को पकड़कर खड़े थे, डॉक्टर वेंटीलेटर की नली नरू के मुंह में डालने की कोशिश कर रहा था। नरू बार बार मुंह दूर कर रहा था। काफी कोशिश के बाद डॉक्टर सफल हुआ तो नरू ने नली बाहर निकाल दी। उसे पीड़ा हो रही थी शायद, डॉक्टर ने कोशिश के बाद नली फिर से डाल नर्सों को नरू के हाथ पलंग से बांधने का आदेश दिया। नरू ढीला होकर शांत हो गया। लक्ष्मण यह सब अचंभित हो देख रहा था। वार्ड के दूसरे मरीजों का पूरा ध्यान नरेश की ओर था।

दयाल ने बताया, हार्ट बंद हो गया था, इन्होंने छाती को दबाया, मुझे कहा कि पेशंट सिंक हो रहा है, कहें तो वेंटीलेटर लगाएं, मैंने तुरंत हां कहा, बाबा को भी फोन किया।

लक्ष्मण ने नरेश के बालों को सहलाया, पेशानी को चूमा। नरेश हांफ रहा था, गीली आंखों से पिता को देखा, हाथ आगे करने चाहे, शायद पांव छूने के लिए...कुछ कहना चाहा, लेकिन कह नहीं सका, वेंटीलेटर की नली ने उसकी आवाज को रूंध दिया था। लक्ष्मण ने जेब में हाथ डालकर एक नया मोबाईल नरेश को दिखाया, यह मॉडल लाने के लिए कहा था न, तेरे लिए लाया हूँ। नरेश की आंखें भीगी हैं, हाथ बंधे हैं। लक्ष्मण ने नर्स को हाथ खोलने के लिए कहा, उसने मना कर दिया, डॉक्टर गुस्सा करेंगे। नरेश की आंखों के कोनों से आंसू कानों की तरफ बहने लगे। लक्ष्मण डॉक्टर के पास चला गया। उसने उसे बिठाकर समझाया, ''देखिए मिस्टर... लक्ष्मण आहूजा, पेशंट का पिता। देखिए मिस्टर आहूजा, पेशंट की कंडीशन बहुत क्रिटीकल है, मैं आपको झूठी आस नहीं देना चाहता, अभी कुछ समय वेंटीलेटर के सहारे हार्ट काम करेगा, ज्यादा वक्त मुश्किल है, डायलिसिस हुआ है, लेकिन इन्फेक्शन बहुत बढ़ा हुआ है, फिर भी सीनियर डॉक्टर मिस्टर मेहता ग्यारह बजे तक आ जाएंगे, आप उनसे कन्सल्ट कीजिएगा, बाकी...लक्ष्मण के पीछे आकर खड़े दयाल और परमानंद ने भी सब सुना। उसके हाथ...जैसे हैं रहने दीजिए, अगर नली फिर से निकाल दी तो बहुत तकलीफ होगी। दयाल, घर फोन करो, सविता को तुरंत भेजें, लक्षमण की आवाज में कंपन था। रुक्मणी नरेश के आंसू पोंछ रही थी। लक्ष्मण पास पड़े स्टूल पर बैठ गया। उसे लगा वह धँस गया है। नरू को देखता रहा। नरेश ने भी डैडी को देखा, शायद एक भी शब्द नहीं कह पाने की मजबूरी उसे ज्यादा तकलीफ दे रही थी। दयाल और परमानंद उदास खड़े रहे।

आलमचंद सविता को ले आए। आलमचंद ने नरू के माथे पर हाथ फेरा, नरू ने आंखों आंखों में आदर व्यक्त किया, उसे मालूम था पांव नहीं छू सकता, नरू की आंखों में इस बात की पीड़ा को सबने अनुभव किया, आलमचंद सहित। ''बिटवा, तुम पर तो सदैव आशीर्वाद है'', आलमचंद हिम्मतवान व्यक्ति थे, लेकिन ज्यादा वक्त वहां खड़े नहीं रह सके, थोड़ी दूर जाकर खड़े रहे। सविता और रुक्मणी के सिवाय सभी आलमचंद के पास जा खड़े हुए। सविता सिर झुकाए नरेश के सिर की ओर खड़ी थी। वह बार बार नरेश को देखकर सिर नीचे कर रही थी। उसके मन में कई बातें आ जा रही थीं। सोच रही थी अगर मेरे प्रेम में शक्ति होती तो ऐसी हालत नहीं हुई होती। मेरे प्रेम में ही कमी रही होगी, वरना...उसका आंसू नरेश के माथे पर गिरा। नरेश ने आंखों से रोने से मना किया।

डॉक्टर मेहता आए। नरेश को एग्जामिन किया। वार्ड डॉक्टर उनके साथ ही थे। दोनों की आंखों ने एक ही बात कही। लक्ष्मण, दयाल, परमानंद डॉक्टरों के साथ टेबिल की ओर बढ़ते हैं।

मिस्टर आहूजा, ज्यादा से ज्यादा शाम के पांच...बीपी लो है, पेशंट रिसपांड नहीं कर रहा है। तीनों भाई चुप खड़े रहे। ''कोई रास्ता, कोई बड़ा इलाज, ''दयाल के शब्द थे।'' ही इज गेटिंग द बेस्ट अवलेबल ट्रीटमेंट, मिस्टर आहूजा!'' सविता लक्ष्मण के पास आती है। ''डैडी, वो शायद आपको ढूंढ रहे हैं।'' लक्ष्मण नरू ने कुछ कहना चाहा, कह नहीं पाया, सविता दौड़कर कागज और पेन ले आई। नरेश ने कागज पर कुछ लिखने की कोशिश की, लेकिन कागज पर केवल एक लकीर खिंच गई। उसके हाथ साथ नहीं दे रहे थे। सविता ने सब के ऊपर नजर डाली, सब जरा दूर जाकर खड़े रहे। सविता ने अपना हाथ नरू के होंठों पर रख दिया। सविता ने बाद में, आंसू बहाते हुए बताया कि नरू ने कहा कि उसी ने अपने आपको... ○○○

उर्मिला

मूलः गौरहरि दास
अनुवादः सुशील दाहिमा

क्रोध और घृणा से मेरी मुट्ठियाँ भिंचने लगीं। उस व्यक्ति के थोबड़े पर तड़ाक से एक चांटा जड़ देने का मन कर रहा था, पर चुपचाप खड़ा रहा। उसने इधर-उधर देखा, फिर किसी ललमुँहे बन्दर की तरह बरामदे से कूदा और अंधकार में गुम हो गया।

उन दिनों ईश्वर से प्रार्थना करने का जब भी सुयोग बनता तो मेरा एकमात्र उद्देश्य उर्मिला की मृत्यु कामना होता! मैं चाहता कि कोई अनहोनी हो और वह लौटकर हमारे स्कूल ही न आए। उर्मिला के प्रति अपनी असहिष्णुता को लेकर मेरे भीतर कभी कोई ग्लानि न होती, उल्टे मेरी सारी अमंगल कामनाओं के बावजूद उसके साथ किसी तरह की अनहोनी न होने से मैं खुद को असहज महसूस करने लगा था। ऐसे में कभी-कभी पद्मलोचन की बात मानकर पास के गाँव के ओझा से सलाह लेने की बात पर गंभीरता से विचार करने लगता। पद्मलोचन का कहना था कि महालिक ओझा से तावीज लाने से चक्षुबंधन से लेकर वशीकरण तक सब कुछ संभव है, चाहूंगा तो उर्मिला को अपने वश में भी कर सकूँगा। आज उसी उर्मिला को इस हालत में देखकर मैं अपनी ही नजरों में गिरा जा रहा हूँ।

उन दिनों पद्मलोचन का वह प्रस्ताव लालच भरा तो था, पर उसकी शर्त भयावह थी। अमावस की अंधेरी रात में गाँव से बाहर वाले मसान के पास रहने वाले महालिक ओझा के मठ तक जाने के उसके प्रस्ताव से मैं डर रहा था। इससे तो अच्छा है कि एकांत में बैठकर ठाकुर से प्रार्थना करूँ। न हो तो स्कूल की प्रार्थना सभा में 'हे आनन्दमय कोटि भुवन पालक' गाने के बाद उर्मिला को दंड देने के लिए कुछ पल मौन रहकर ईश्वर से अनुरोध करता रहूँ। इससे मेरे सिवा कोई और मेरा उद्देश्य न जान सकेगा और न ही मुझे किसी भयावह स्थिति में फंसना पड़ेगा।

मेरे और उसके बीच यह स्थिति उससे हुई मेरी पहली मुलाकात में ही बन गई थी। बारिश के चलते क्लास में उस दिन ज्यादा छात्र नहीं आए थे। मैं डेस्क को तबला मानकर ठक-ठक करता गाना गा रहा था और दोस्त मेरे गाने का आनन्द ले रहे थे। हेड मास्टर कब दरवाजे की चौखट पर आ खड़े हुए, मैं जान ही न पाया। क्लास में घुसकर वे कड़कती आवाज में बोले, ''कौन गा रहा था?'' मैं जानता था कि मुझे गाते हुए स्वयं उन्होंने अपनी आँख से देख लिया है। फिर भी, वे एक गवाह ढूंढ रहे थे। सम्भवतः मन ही मन चाह रहे थे कि कोई गवाह न मिले। हेडमास्टर का गुस्सा देखकर हम सब चुप लगा गए। सहसा खड़े होकर उर्मिला ने कहा, 'विकास गा रहा था सर।'

सम्पर्कः सुशील दाहिमा, 'अनुभव', 378, बारमुंडा गांव, भुवनेश्वर (उड़ीसा) - 751003, मो. 09437077288

हेडमास्टर के कान उमेठने से अधिक उर्मिला के इस आघात ने मुझे कष्ट पहुंचाया था। वहीं पर उसी क्षण मैंने ठाकुर से प्रार्थना करते हुए सोचा था, 'काश, यह लड़की हमारे स्कूल में न आती!' हालांकि उर्मिला नियमित रूप से स्कूल आती और मेरी छोटी-छोटी भूलों के लिए भी मेरी आलोचना कर खुश होती। मेरे प्रति उसकी दुश्मनी का कारण क्या था, यह मैं समझ न पा रहा था। दूर से आकर उसके गाँव के पास वाले स्कूल में पढ़ने के चलते ही तो कहीं वह ऐसा नहीं कर रही? बार-बार मन में ऐसे खयाल उठते तो मैं अपने विश्वस्त मित्र पद्मलोचन से भी यही सवाल करता।

मुझे साहस देने के लिए या फिर उर्मिला पर अपना पुराना गुस्सा उतारने के लिए पद्मलोचन इशारे से सिर के पास उंगली रखकर कहता, ''उसका तो स्क्रू ढीला है, क्यों उसके बारे में सोचते रहते हो? उसका भाई पुलिस इंस्पेक्टर है, इसलिए उसके पांव जमीन पर नहीं हैं। होने दे, डरने की जरुरत नहीं। हम सब हैं न तेरे साथ!'' पद्मलोचन की ऐसी बातों से मुझे हिम्मत मिलती।

वह नवीं क्लास का साल था। अपने गाँव का स्कूल छोड़कर मैंने पाटपुर हाईस्कूल में नाम लिखाया था। पाटपुर हाईस्कूल छोटा स्कूल है। हमारी क्लास में तब केवल चौदह छात्र थे, बारह लड़के और दो लड़कियाँ। स्कूल छप्पर के नीचे था, पर दीवारें ईंट की थीं। सामने था बड़ा-सा मैदान, जिसमें तरह-तरह के फूल खिले रहते थे। पीछे बहुत बड़ा तालाब था।

पहले-पहल वह स्कूल मुझे अच्छा नहीं लगा। स्कूल कहने पर जिस तरह की बड़ी इमारत के चित्र से मैं परिचित था, पाटपुर उच्च अंग्रेजी विद्यालय का चेहरा उससे मेल न खा रहा था, पर मुझे अच्छा लगे, न लगे, मेरा नाम वहां लिखवा दिया गया और पास के तलबंध में दूर के रिश्तेदार के घर रहने की व्यवस्था भी कर दी गई। बाद में ग्यारहवीं क्लास में साल भर के लिए मैं हॉस्टल में आकर रहा था।

विवशता में पाटपुर उच्च अंग्रेजी विद्यालय और तलबंध गाँव के साथ तालमेल बिठा रहा था। धीरे-धीरे बाड़ लगे पगडंडीनुमा तलबंध के रास्ते और पाटपुर मुझे रास आने लगे। बारिश के दिनों में घास के मैदान में लाल-लाल बीरबहूटी, बरग पर बगुलों की सभा, तालाब की मेड़ पर नन्ही बछिया और बकरी के बच्चों की दौड़ प्रतियोगिता मेरे स्कूल आने-जाने के समय को अलग-अलग रंगों में रंग रहे थे। मैं नीले आसमान के नीचे नाना रंगों और आकृतियों में मेघों की दौड़-भाग का खेल देखते हुए तलबंध को पसन्द करने लगा। धीरे-धीरे घर-गाँव के संगी-साथी दूर होते चले गए। छुट्टी होने पर पद्मलोचन मुझे गाँव ले जाता और मेरे मनपसंद उबले हुए अंडो के साथ चिकन-झोल की व्यवस्था करता तो अपने परम्परावादी परिवार की हर मनाही को चिकन-झोल में डुबो बैठता।

सब कुछ धीरे-धीरे अच्छा लगने लगा। स्कूल की प्रार्थना के समय गाकर शिक्षकों का ध्यान खींचने लगा। फुटबॉल के खेल में हमेशा गोलकीपर बनकर भविष्य में दक्ष गोलकीपर बनने की शुभेच्छाएँ भी जमा कर रहा था। वक्त-बेवक्त स्कूल के तालाब में जाल डालकर छोटी-छोटी मछलियों को पकड़ने के लिए संगी-साथी मुझे उत्साहित करते तो मैं भी मछली पकड़कर लाने के बाद उन्हें पकाने के लिए अन्य कोई चारा न होने के चलते बगीचे की बाड़ से बाँस के टुकड़े निकाल लाने की सलाह देने में कोई संकोच न करता। इन असाधारण कौशल देख उस गाँव के साथी मन ही मन मुझे नेता मानने लगे। उस समय भूल से भी मैं अपने इस असाधारण कौशल के पीछे अपने ही गाँव के साथी बगुली की प्रेरणा और हौसला बढ़ाने की बात किसी को न बताता। सहज रूप से अपनी क्लास का मॉनीटर भी बन गया। स्कूल में घटने वाली हर घटना के पीछे मेरा हाथ होने की जानकारी सबको होने के बावजूद कभी पकड़े न जाने के कौशल को देखकर दोस्त मेरी मेधा की तारीफ करते, पर उर्मिला मुझे कोई भाव न देती। मेरी हर तरह की दक्षता को वह चुटकी में उड़ा देती। जरा-सा मौका मिलते ही वह मेरी कमजोर नस दबा देती तो मैं चारों खाने चित्त हो जाता था।

नवीं क्लास की ही बात है। मॉनीटर बनने के लिए मेरे सहपाठी विक्रम और दो-तीन अन्य छात्रों को मिलाकर उसने मेरे नेतृत्व को चैलेंज किया। तब मैंने बिना अच्छा-बुरा सोचे विक्रम को गाली दे दी थी, ''तू दलित-दलिद्दर मॉनीटर बनेगा बे?'' अभी मेरे मुँह से पूरी बात निकली भी न थी कि किसी ने मेरे गाल को जोर से काट लिया। सामने देखा तो उर्मिला दाँत किटकिटाती सामने खड़ी थी। उसका वह रणचंडी रूप देख मैं डर गया। जैसे-तैसे उसकी नुकीली उंगलियों से अपने गाल को तो छुड़ा लिया, पर उर्मिला की फटकार को न भूल सका, ''खबरदार, यदि तूने इस क्लास में किसी से भी फिर ऐसी कोई बात कही तो! दलित-ब्राह्मण क्या रे! हम सब साथी हैं। वैष्णव होकर भी पद्मलोचन के घर चिकन-झोल उड़ाने वाला तू ऐसी बात कैसे कह सकता है? क्यों, उसने तो किसी से नहीं कही यह बात?'' सुनकर शर्म और अपमान से मेरी देह जल उठी। उसी क्षण क्लास छोड़ आया।

उस दिन अपने कमरे में आने के बाद काफी देर तक उर्मिला के बारे में सोचता रहा। लड़की होकर उसकी इतनी हिम्मत! सबके सामने मेरे गाल नोच लिये। एक न एक दिन उसे जरूर देख लूँगा। उस समय मेरा छोटा और सिकुड़ा-सा चेहरा और लाल-सुर्ख ओंठ, दोधारे ब्लेड के इस्तेमाल के बावजूद मूँछ के न आने का दु:ख मुझे क्षुब्ध और म्लान कर रहे थे। ध्रुव या नकुल की तरह यदि मेरा चेहरा लम्बोतरा, दो काली चकचक मूँछें और थोड़ा खुरदरा होता तो मैं एक मिनट में उर्मिला को ठीक कर देता, ऐसा लगा था मुझे।

उर्मिला भले ही हमारे साथ पढ़ती थी, पर उम्र में मुझसे दो साल बड़ी थी। लड़कियों को आम तौर पर अपनी उम्र छिपाकर रखने की बात मैंने सुनी थी, पर उर्मिला सबसे हटकर थी। वह बार-बार 'मैं तुझसे दो साल बड़ी हूँ' कहकर रोब गालिब करने की चेष्टा करती रहती। उर्मिला का चेहरा लम्बोतरा और फैलाव लिये था। वह मेरे सामने आ खड़ी होती तो मैं सिकुड़ जाता। चौड़ी छाती, गोल मुँह, कमर तले तक लम्बी चोटी, माथे पर कुमकुम, आँखों में पतली-सी काजल रेखा, छाती पर सफेद झीनी ओढ़नी, इस रूप और पोशाक में वह मुझसे कहीं अधिक श्रेष्ठ और दक्ष दिखाई देती। उसकी तुलना में दूसरी लड़की कम सुन्दर और चुपचाप रहने वाली थी। हम उसे उर्मिला की चमची कहकर उसका उपहास करते। उर्मिला को कुछ छात्र सुन्दर भी कहते थे। हालाँकि उसकी यह सुन्दर उन दिनों कभी भी मेरी आँखों में कोई प्रभाव न छोड़ सकी। उसे दुश्मन भाव से ही देखता और फिर दुश्मन चाहे कुछ दिखे, न दिखे, सुन्दर तो नहीं ही लगता। पुलिस इंस्पेक्टर की घमंडी बहन, बुढ़िया, अहंकारी, रणचंडी... सारे के सारे ऐसे अनकहे सम्बोधन उर्मिला के लिए ही थे, पर इनमें से एक भी शब्द मैं प्रकट रूप में उससे कह न पाता। उर्मिला मुझे हर क्षेत्र में पीट रही थी।

दसवीं क्लास में पढ़ते समय माँ-बाबा से रो-गाकर मैंने एक छींटदार शर्ट खरीदवा ली थी। पीरहाट ऑपेरा की डुएट में गाना गाने वाले लड़के को वैसी शर्ट पहने मैंने देखा था। शर्ट फब रही थी। वैसी मॉडर्न शर्ट हमारे स्कूल में किसी के पास नहीं थी। इस मामले में स्कूल मैं पहला था! यूनिफार्म व्यवस्था न होने से उस दिन वही शर्ट पहनकर गया था। दोस्तों ने शर्ट को पसन्द किया था, उर्मिला को छोड़कर। उर्मिलाा ने केवल इतना कहा था, 'जिन के भीतर कुछ नहीं होता, वे ऐसी शर्ट पहनकर गंधैले शरीर को सजाते हैं।' उसकी बात सुनकर सारे दोस्त मेरा साथ देने के बजाय मानो उर्मिला की बात का समर्थन करते हुए हँस पड़े थे। उस दिन शर्म और अपमान से बुझा चेहरा लिये लौटा और कसम खायी, 'फिर कभी यह शर्ट नहीं पहनूँगा'।

इतनी दुश्मनी हो जाने के बाद भी मैं उर्मिला की बातों को क्यों इतना महत्व दे रहा था, यह मेरी समझ से बाहर था। मेरी एक भी बात नहीं सुनने वाली उर्मिला मुझसे जब भी जो काम करवाना चाहती, अनायास करवा लेती। उसके स्वर में आदेश देने जैसा भाव रहता, जिसे टाल पाना मेरे लिए सम्भव न हो पाता। अधिकारभरी यह वाणी शायद उसे पुलिसिया भाई से मिली है, सोचकर मैं उसकी हर बात सुन और मान लेता था।

एक बार स्कूल से तलबंध गाँव के वापसी के रास्ते पर अचानक बारिश होने लगी। आसपास न तो पेड़ थे, न ही मेरे पास छाता था। पहले तो मैंने अपने हाथ की किताबों को छाता बनाकर सिर पर रख लिया। हालाँकि तुरन्त बाद सिर से अधिक किताबों की हिफाजत जरूरी लगी। सो, उन्हें अपने कपड़ों में छिपाने की चेष्टा करने लगा। रिमझिम में मेरा बदन भीग रहा था। उसी समय मैंने उर्मिला को कहते सुना, ''मर्दानगी दिखाते हुए भीग क्यों रहे हो? मेरे छाते के नीचे आ जाओ न!''

गीली पलकों को ऊपर उठा मैंने उर्मिला को देखा। वह मेरे पीछे-पीछे आ रही थी। जाऊं न जाऊं की चिंता छोड़ उसके छाते के नीचे आ गया था। एक छाते के नीचे बढ़ाव-चढ़ाव लेती उर्मिला और मैं! मुझे उससे सटकर खड़े होने में संकोच और उससे ज्यादा डर लग रहा था। उसकी ओर निहारते हुए गाल का दर्द याद आ जाता और मैं भय से दो कदम दूर खिसक जाता, पर उर्मिला मुझे पानी की बौछारों से बचाने के लिए स्वयं भीगते हुए भी मेरे सिर पर छाता ताने बार-बार कहे जा रही थी, ''पास सरक आओ न, मैं तुम्हें मार डालूंगी क्या!'' मैं उसकी बात मान चुपचाप चल रहा था। उसकी गर्म साँसें, छाती का उठना-गिरना सबको निरखता हुआ उसे छू रहा था। कनखियों से उसे देखना अच्छा लग रहा था, लेकिन उसकी आँखों से अपनी आँखें टकराते ही मैं उन्हें दूसरी ओर कर लेता। तलबंध गाँव के पोखर के करीब पहुँचकर मैंने उर्मिला से विदा ली। उर्मिला के जाने के बाद इधर-उधर देखते हुए टोह ली कि किसी ने हमारा यों साथ-साथ आना देखा तो नहीं! सुनसान पड़े खेत-बगीचे में कोई दिख नहीं रहा था। मैं निश्चिंत हुआ।

कुछ दिनों बाद उर्मिला ने अपने खेत से ककड़ी और अमरुद लाकर क्लास में सबको बाँटा, लेकिन मैंने शपथ ली थी कि उसके हाथ से कुछ भी नहीं खाऊँगा। सो, ककड़ी और अमरुद के प्रति अपना लोभ किसी तरह संवरण कर लिया, लेकिन मेरे दोस्त उर्मिला के अमरुद लेने का लोभ संवरण न कर पाए। उस दिन गुस्से से दाँत किटकिटाते हुए एक बार फिर मन ही मन उर्मिला को गाली दी, ''काश, ये किसी के साथ भाग जाती या...'' फिर धीरे से बुदबुदाते हुए कहा था, ''...तालाब में डूब ही जाए तो!'' पर उर्मिला को कुछ भी नहीं हो रहा था, बल्कि पद्मलोचन के अनुसार वह तो दिनोंदिन और सुन्दर दिखाई देने लगी और टीचर भी उसे पहले से ज्यादा पूछने लगे। हर विषय में बहुत खराब नंबर आने पर भी मैथ के चिन्तामणि सर भी उर्मिला को कुछ न कहते। खुद हेडमास्टर भी बिना कारण बुलाकर उससे बातें किया करते।

कदम-दर-कदम उर्मिला की बढ़ती लोकप्रियता मुझे परेशान कर रही थी। मैं न तो चैन से रह पाता, न ही यार-दोस्त से गप्पें मार पाता। उर्मिला ने सहपाठियों को अमरुद और सर लोगों को मुस्कान से वश में कर रखा था। स्कूल में होने वाली सरस्वती और गणेश पूजा में बिना कारण उर्मिला सबकी प्रशंसा पा जाती। हम लोग सुबह उठकर फूल तोड़ने, गेट सजाने, रंगीन कागज काटने और मैदान से घास लगी थक्का-थक्का माटी लाकर पूजा घर में पीछे की ओर जंगल का भ्रम पैदा करने वाले श्रमसाध्य काम करके भी जितनी प्रशंसा न ले पाते, उर्मिला और उसकी सहेली दो साड़ियां टाँगकर हमसे अधिक प्रशंसा पा जातीं। सर लोगों की इस नीति की हम लोग अपने दायरे में कड़ी आलोचना करते, पर इससे उर्मिला को कोई नुकसान न होता। 'सब दिन होत न एक समान' तो फिर उर्मिला के दिन भी कैसे समान रहते! मैं जो हर दिन उसके अमंगल की कामना करते हुए ईश्वर को याद करता था, उसका कुछ तो असर होना ही था! ग्यारहवीं की परीक्षा में उर्मिला फेल हो गई तो आगे की परीक्षा देने की उसकी योजना धरी की धरी रह गई। परीक्षा में फेल हो जाने के बाद उसे स्कूल आने की जरूरत नहीं रही। उसकी इस विफलता ने मुझे आनन्द विभोर कर यिा। बिना कोई वजह बताए मैंने दोस्तों में लाजेंस बाँटा। बेवजह ही उस दिन देर तक अकेला खेलता रहा और माघ की ठंड के बावजूद हॉस्टल के बरामदे में गाना गाते हुए झूमता रहा। गाते-गाते मन ही मन बुदबुदाया भी, 'ईश्वर के घर देर है, अँधेर नहीं!'

पाटपुर हाईस्कूल से अब हमारे दिन गिने-चुने रह गए थे। समय कम होता जा रहा था। मार्च के पहले हफ्ते में परीक्षा और फिर स्कूल से संबंध खत्म। हमारा सेंटर तिहिड़ी हाईस्कूल में पड़ा। परीक्षा देने के बाद हम लोग वहीं से सीधे अपने घर चले जाएंगे, ऐसा तय हुआ था। परीक्षा की तैयारियों के बीच हम सब कभी-कभी सिर उठाते तो पाटपुर स्मृतियों जाग उठतीं। हमारे नीचे की क्लास के लड़के हमें विदाई देने की तैयारियों में थे। मेरे साथी टेबल, कुर्सी, दीवार, बाड़ और एजबेस्टस छत की क्लास में चित्र और लिखावट में 'विदा बंधु, विदा' लिख रहे थे। इसी तरह जहाँ-तहाँ 'भूलना मत', 'विदा-अलविदा' और 'चिर विदा' जैसे अत्यन्त भावात्मक एवं करुण रस मिश्रित वाक्यों से स्कूल की दीवारें रंग गई थीं।

हम भी दिल-दिमाग से पाटपुर छोड़कर जाने के लिए तैयार हो रहे थे। दसवीं क्लास के लड़के हमारे लिए भोज की व्यवस्था कर रहे थे। मंगल की रात भोज का आनन्द लेने बाद बुध की सुबह हम तिहिड़ी के लिए निकलेंगे। उससे पहले एक बैलगाड़ी में हमारे ट्रंक, सूटकेस और बिस्तर चले जाएंगे और सुबह-सुबह तिहिड़ी के किराये के मकान में पहँच जाएँगे।

भोज अगले दिन दोपहर में था। मैं तालाब की ओर मुँह किए खाट पर बैठा पढ़ रहा था। अचानक उर्मिला और उसकी सहेली को हॉस्टल के अपने कमरे में पाकर मैं डर गया। इस समय वह मेरा अपमान करने ही आयी होगी, यह लगभग निश्चित था, लेकिन उर्मिला कुछ कह नहीं पा रही थी। चुपचाप मेरी बिखरी पड़ी किताब-कॉपियों, टेस्ट पेपर और कमरे में अस्त-व्यस्त पड़े-कपड़े-लत्तों को बड़ी-बड़ी आँखों से देखे जा रही थी। जहाँ-जहाँ उसकी नजरें पड़ रही थीं, वहाँ पड़ा सामान मुझे और अधिक खराब तथा बेचैन करता दिखाई दे रहा था। मैं अपनी आँखों से उसकी नजरों का पीछा कर रहा था, तभी अचानक उर्मिला चंचल हो उठी। अपने हाथ से घड़ी उतार मेरी ओर बढ़ाई। मैं थोड़ा अकबका-सा गया था, पर वह बोली, ''हाथ में घड़ी न होने का तुझे दु:ख हो रहा है न! ले, मैं तो परीक्षा दे नहीं रही, मेरी घड़ी ही सही, तेरे साथ जाकर परीक्षा दे आएगी।'' इससे पहले कि मैं कुछ कहता, उर्मिला कमरे से बाहर जा चुकी थी। मैं अपनी खाट के पास खड़ा उन दोनों के जाने पर नजर गड़ाए था। घड़ी न होने के एहसास से मैं हर समय भीतर ही भीतर घुटता रहता। मैट्रिक परीक्षा से पूर्व जिन दो चीजों की मुझे बहुत जरूरत थी, उनमें घड़ी मुख्य थी। दूसरा था टेस्ट पेपर। घड़ी वाली बात

दो-एक दोस्तों से कही तो थी, पर उर्मिला से तो कभी नहीं कही थी। इस बात को वह कैसे जान गई, सोचकर आश्चर्य हो रहा था, पर मेरे लिए तो इससे भी बड़ा आश्चर्य था उर्मिला का बदला हुआ रूप! आज से पहले कभी मुझे उर्मिला इतनी गम्भीर और जिम्मेदार न लगी। हमारे बीच दुश्मनी बराबर बनी रही। अगर वो चाहती तो मेरे पास घड़ी न होने की चर्चा कर सबके सामने मुझे लज्जित कर सकती थी, पर वैसा न कर अपनी घड़ी मुझे दे जाएगी, इस पर मुझे विश्वास ही न हो रहा था। सुनहरी घड़ी स्टूल पर रखी थी। उसमें लगा था एक काला फीता। हालाँकि लड़कियों की घड़ी आम तौर पर छोटी साइज की होती है, पर मेरे छोटे और पतले चेहरे के हिसाब से वह इतनी छोटी भी न थी। उर्मिला के जाने के बाद मैंने घड़ी को उठाकर हाथ में बाँध लिया था। मेरे पतले हाथ की कलाई अचानक महत्वपूर्ण और असाधारण हो उठी। मैं अजीब-सी सिहरन से रोमांचित हो उठा था।

पाटपुर छोड़े काफी दिन हो गए। इस बीच गाँव के उस स्कूल की स्मृतियाँ धुँधली और चित्र फीके हो चुके हैं। पच्चीस साल के अन्तराल में बहुत कुछ अदल-बदल चुका है। जिन लोगों से कभी न भूलने का वादा किया था, वे सहज ही बसर गए। जो लोग बार-बार कहते थे कि मुझे कभी न भूलेंगे, वो भी भूल चुके हैं। विस्मृति की रेतीली आँधी में उर्मिला की स्मृति भी रेत पर लिखे गए नाम की तरह मिट चुकी थी, पर उसी की तरह दिखाई देने वाली इस आया से नर्सिंग होम के बरामदे में अचानक भेंट न होती तो शायद उर्मिला की स्मृति मन में कभी न उभरती।

माँ को ऑपरेशन के लिए नर्सिंग होम में भर्ती कराया था। डॉक्टर ने कहा था, ''ऑपरेशन से एक दिन पहले शाम को इन्हें लाकर भर्ती करा दें ताकि खाने-पीने का परहेज शुरू हो सके। अगले दिन सुबह दस बजे डॉ. मिश्र इनका ऑपरेशन करेंगे।''

'बेड' के ऊपर की चादर और तकिया का कवर बदल देने के लिए मैं किसी सिस्टर को बुलाने जा रहा था। मेरी आवाज सुन जो आया कमरे में आयी, उसे देखकर मैं आश्चर्य से भर उठा।

'उर्मिला!' मेरे मुँह से यह नाम अनजाने में निकल गया। देखते ही देखते मैं पच्चीस बरस पीछे लौटने लगा। पाटपुर हाईस्कूल छोड़ने के अगले साल भद्रक से कटक आते समय मेरे सहपाठी सनातन ने उर्मिला के बारे में जो कुछ बताया था, वही था उसके बारे में सुना हुआ आखिरी समाचार, जिसे सुनकर मैं जितना अस्थिर हो उठा, उतना ही लज्जित भी।

''उर्मिला के पिता ने पूजा के लिए बाहर से एक ओझा को बुलाया था। वह ओझा यक्ष पूजा द्वारा घर के अन्दर से सोने से भरा घड़ा बाहर निकालने वाला था। पूजा विधि के एक विशेष प्रकार के लिए एक कुंआरी किशोरी की उपस्थिति जरूरी है, ऐसा ओझा ने उर्मिला के पिता से कहा था। इसके बाद उर्मिला नहा-धोकर, पीली साड़ी पहनकर, सात दिन सात रात पूजाघर में बैठी थी। आठवें दिन भोर में सोने से भरे घड़े का पता चलने की बात थी। पूरे गाँव के बूढ़े-बूढ़ियां, युवक-युवतियाँ, लड़के-बच्चे सब इस अनोखे दृश्य को देखने के लिए लालायित थे। पूजाघर के झरोखे और दरवाजे की फाँक से बस थोड़ा-थोड़ा धुआँ रह-रहकर बाहर आ रहा था, पर दरवाजा खुल नहीं रहा था।''

यह सब बताते हुए सनातन उत्तेजना से काँप-काँप जा रहा था, जबकि मैं दोनों कान खड़े किए उसके हर शब्द को सुनने के लिए आतुर था। सनातन ने कहा था, ''यों ही सुबह से दोपहर हो आयी, पर दरवाजा नहीं खुला। देखने वालों का धैर्य सीमा पार कर चुका था। उर्मिला के पिता की राय पर जोर-जबरदस्ती किसी तरह दरवाजा खोला गया। भीतर जले हुए होम काठ से धुआँ उठ रहा था। चारों ओर दूब, बेर के पत्ते, सिन्दूर, हल्दी, अक्षत चावल, घी और पूजा सामग्री बिखरी पड़ी थी, पर कमरे में न तो ओझा था, न ही उर्मिला! दोनों खिड़की से कूदकर रात के अँधेरे में भाग गए थे। उर्मिला के पुलिसिया भाई के लिए यह घटना घोर अपमान का कारण थी और पिता के लिए बड़े शर्म की बात। पास-पड़ोस और नाते-रिश्तेदारों में यह बात आग की तरह फैल गई। रास्ते-पगडंडियों, तालाब की मेड़ों और खेत-खलिहानों में उर्मिला और उस युवा ओझा के सम्बन्धों को लेकर तरह-तरह की अश्लील चर्चाएं फैलती चली गई।''

''इसके बाद... ?'' मैंने पूछा, पर सनातन ने मेरे इस सवाल का कोई जवाब न दिया, लेकिन उसकी बातों से मैं समझ गया कि वह ओझा के साथ क्यों चली गई थी, जबकि वह उसे ले जाना नहीं चाहता था।

आज अचानक कई बरस बाद इस आया को देखकर उर्मिला की याद हो आयी। माँ का बिस्तर बदलने वाली बात को भूलकर मैंने उससे पूछा, ''तुम उर्मिला हो न?'' आया ने मानों एक अजीब सम्बोधन सुन लिया हो। नाराजगी प्रकट करते हुए बोली, ''उर्मिला, कौन? मैं वनलता हूँ, वनलता परिड़ा।''

मैंने शर्म से सिर झुका लिया। फिर हड़बड़ाता-सा बोला, ''कुछ गलत न समझें! आपका चेहरा मेरी एक मित्र के चेहरे से एकदम मिलता है। बस, उसके शरीर का रंग आपसे थोड़ा...'' मेरी बात अभी पूरी न हुई थी, बिछौने की चादर बदलकर आया जैसे आयी थी, वैसे ही बिना कुछ कहे चली गई।

माँ अपने बेड पर सोई हुई है। मैं उसके पास एक कुर्सी पर बैठा आया के विषय में सोच रहा हूँ। दो अलग-अलग व्यक्तियों के बीच क्या इतनी समानता हो सकती है? पच्चीस साल पहले उर्मिला थी गाँव की एक किशोरी, चालीस साल की इस आया के पास उर्मिला के चेहरे का वह लावण्य, वह चमक और सबसे महत्वपूर्ण उसकी दोनों आँखें कभी इतनी चूक नहीं कर सकतीं, पर उससे मेरी भेंट हो नहीं पा रही थी। अगले दिन और फिर उसके अगले दिन भी नहीं। इस बीच माँ का ऑपरेशन हो गया और 'रेस्ट' के सात दिन भी पूरे हो गए। नर्सिंग होम के सारे भुगतान देकर मैं घर लौट आया, लेकिन उर्मिला की याद लागातार मेरा पीछा करती रही। उन यादों में घड़ी से जुड़ी स्मृति भी थी। याद आ रहा है कि मैट्रिक परीक्षा के बाद उसकी घड़ी वापस कर आने के लिए माँ ने मुझसे कहा था, पर न जाने क्यों और किसलिए उस घड़ी को मैं लौटा नहीं पाया और जब लौटाना चाहा तो उससे मुलाकात ही न हुई।

उस दिन रविवार था। मैं चुपचाप घर से निकल नर्सिंग होम की तरफ चल पड़ा। नर्सिंग होम के रिसेप्शन पर बैठी एक परिचित सिस्टर से पूछा, ''वनलता परिड़ा आज आयी थी क्या?''

उस सिस्टर ने पास बैठी दूसरी सिस्टर से मेरे सवाल को अपनी आवाज में दोहराया, ''वनलता परिड़ा आज आयी थी क्या?''

इसके बाद दोनों ने ही एक साथ उत्तर दिया, ''नहीं, वह आठ-दस दिन से नहीं आ रही है।''

''कहाँ रहती है, बाता सकती हैं?''

'' तीन नम्बर सेक्टर के मन्दिर के पास। घर के सामने टयूबवेल है।''

आठ-दस दिन हो गए, वनलता परिड़ा आयी नहीं, पर क्यों? मेरे भीतर वनलता परिड़ा को लेकर पैदा हुआ आश्चर्य लगातार बढ़ रहा है। निश्चय किया कि जैसे भी हो, वनलता से मिलूँगा जरूर। तीन नम्बर सेक्टर के मन्दिर के पास से बाएँ हाथ की ओर मुड़ने पर कुछ ही दूर था वह टयूबवेल। वह टूटा हुआ है, यह तो अँधेरे में भी पता चल रहा था। चारों ओर सूखे पत्ते और घास। बहुत दिनों से इससे पानी नहीं निकला है शायद। सामने ही था, कुछ दूर पर 'आउट हाउस' की तरह दिखाई देता एक एजबेस्टर घर। दरवाजा अन्दर से बन्द था, लेकिन चीखने और रोने का स्वर खिड़की और छत के मोखे से छिटक कर बाहर तक फैल रहा था।

मैं डर गया। घर के अन्दर कोई पुरुष एक स्त्री को पीटता हुआ गालियां दे रहा है। घर के अन्दर से देगची-थाली गिरने और कुछ टूट-फूट की आवाजें आ रही हैं। बीच-बीच में स्त्री की कातर गुहार भी।

यह वनलता परिड़ा का घर है? मैं किसी से पूछना चाहता था, पर आसपास कोई दिखाई नहीं दे रहा था। माहौल अशान्ति भरा लगा। सोचा कि लौट जाऊँ, फिर किसी दिन आउँगा कि धड़ाक से दरवाजा खुल गया। अन्दर से एक कंकालनुमा व्यक्ति बाहर आते-आते मुझे देखकर खड़ा हो गया। उसकी आँखें लाल दिख रही थीं और मुँह से सिप्रट की गंध आ रही थी। उसने पूछा, ''हैं, किधर? किसी का कुछ खलास करना है क्या? चलो, पचास फैंक!'' मैं और डर गया। खलास! पचास रुपये, पर क्यों? मैंने कहा, ''नहीं, ऐसा कोई इरादा नहीं। मैं वनलता से कुछ पूछने आया था।''

वह चिढ़ गया हो, इस अन्दाज में अन्दर झाँकते हुए बोला, ''फिर एक नया आशिक आ गया। कितने घाट का पानी पीती है, क्या पता?''

क्रोध और घृणा से मेरी मुट्ठियाँ भिंचने लगीं। उस व्यक्ति के थोबड़े पर तड़ाक से एक चांटा जड़ देने का मन कर रहा था, पर चुपचाप खड़ा रहा। उसने इधर-उधर देखा, फिर किसी ललमुँहे बन्दर की तरह बरामदे से कूदा और अंधकार में गुम हो गया।

मेरे सामने वनलता परिड़ा का घर मानो किसी अनाथ बच्चे की तरह खड़ा था। चारों ओर दिखाई दे रही थी विकल करती दरिद्रता। वनलता ने आँखों से आँसू पोंछकर मेरी ओर देखा। उसका चेहरा दुखी दिख रहा था, लगा कि ज्वर से काँप रही है।

मैंने देखा-ऊपर एक बल्ब जल रहा है। उसकी मटमैली रोशनी में घर के भीतर की चीजें साफ-साफ नहीं दिख रहीं। दीवार से सटी एक खाट, जिसका सहारा लेकर वनलता खड़ी है। मैंने

कहा, ''नर्सिंग होम गया था। सुना कि तुम कुछ दिनों से आयी नहीं। इसीलिए चला आया।''

''क्या काम था?'' वनलता का सीधा, ठेठ सवाल।

''काम? काम तो कुछ भी नहीं था, पर उर्मिला...''

''कौन उर्मिला?'' उसके स्वर में उपेक्षा थी।

''वह मेरी दोस्त थी।'' मैं उसे समझाने की चेष्टा कर रहा था।

''मैं नहीं पहचानती उसे। और कोई काम है?''

''नहीं। असल में आपका चेहरा मुझे उर्मिला की तरह लगता है। उसका एक कर्ज मुझ पर रह गया है। उसकी घड़ी...।'' पूरी होने से पहले ही मेरी बात काटते हुए वनलता ने कहा, ''रहने दो। कुछ तो है कहीं उस बेचारी का!'' मैं चौंक पड़ा। मुझे अचानक लगा कि यह वनलता नहीं, उर्मिला ही है। नहीं तो अपरिचित उर्मिला को 'बेचारी' क्यों कर कहती वनलता परिड़ा?''

मुझे पाटपुर हाईस्कूल की बातें याद आ रही थीं—उर्मिला की कसैली बातें, कोसना, चीखना, रोज-रोज निर्देश देना याद आ रहा था। या आ रहा था तलबंध गाँव वापसी के रास्ते में उर्मिला की छतरी के नीचे साथी बनकर रास्ता तय करना, अभिभावक जैसा उसका रंग-ढंग। उस लड़की की यह दुर्दशा!

सिर उठाकर उसे फिर देखा। वह शराबी व्यक्ति क्यों उससे मार-पीट कर रहा था? पूछने का साहस नहीं जुटा पाया।

आखिरी बार कहा, 'तुम वनलता नहीं हो, उर्मिला, पर यों झूठ बोलकर मुझे क्यों लौटा रही हो, यह मैं नहीं समझ पा रहा, उर्मिला!'

'कितनी बार कहूँ...मैं उर्मिला नहीं, वनलता हूँ। उर्मिला-फुर्मिला यहाँ कोई नहीं है। वह...वह तो...कब की मर चुकी! पापगर्भा...बदजात लड़की...मर गई कब की!! आप कृपा कर यहाँ से चले जाइए।' वह चीखती-सी बोली और धड़ाक से दरवाजा बन्द कर लिया।

मैं चौंक गया। वापस पलटते सुना कि वह मुँह पर कपड़ा दबाकर रो रही है, दरवाजे के दूसरी तरफ। उसकी वह रुलाई दरवाजे के इस तरफ साफ-साफ सुनाई दे रही है।

पाटपुर हाई स्कूल में पढ़ते समय अक्सर उर्मिला के सर्वनाश की कामना करता रहता था, पर आज जब उसी उर्मिला का सर्वनाश अपनी आँखों से देख रहा हूँ तो! उसके शराबी पति का अत्याचार, कंगाली से भरा घर और उसकी दयनीय स्थिति अपनी आँखों से देख लेने के बाद तो मुझे खुशी से झूम उठना चाहिए, पर कहां खुश हो पा रहा मैं?

इतना दुख तो कभी नहीं हुआ।

○○○

दुखहरण

कमलेश पांडेय 'पुष्प'

कहा जाता है कि उन्होंने अपनी बेंत की उस चिकनी छड़ी का नाम 'दुखहरण' इसलिए रखा है क्योंकि वे उससे भयभीत करके बच्चो को अनुशासन में रखकर तेज-तर्रार बनाने की कोशिश करते हैं। तेज-तर्रार छात्र अपने जीवन में हमेशा सफलताएं प्राप्त करता है और बड़े होकर उच्च पद पर आसीन होता है। इस प्रकार वे दुखहरण के माध्यम से बच्चों के जीवन भर के दुख को शिक्षा के प्रथम चरण में ही समाप्त कर देते हैं।

लंबा कद, दुबली काया, सांवला रंग, पूरे सफेद हो चुके सिर के बाल और बदन पर सफेद धोती-कुरता धारण करने वाले यमुना प्रसाद जी को पूरे क्षेत्र में कौन नहीं जानता। वे कर्मठ व्यक्तित्व वाले अध्यापक हैं। गांव के प्राइमरी स्कूल में बत्तीस वर्षों तक अध्यापन करने के पश्चात वे अब अवकाश प्राप्त करने वाले हैं।

गांव के उस प्राइमरी स्कूल में यमुना प्रसाद जी का विदाई समारोह है। स्कूल के सभी अध्यापक एवं बच्चे उनके अवकाश ग्रहण करने पर दुखी हैं। सभी सोच रहे हैं, समय कितना गतिशील है, धीरे-धीरे गुजरते हुए इस समय ने मास्टर जी को बूढ़ा बना दिया। इस बीच उन्होंने ना जाने कितने बच्चों को लिखना-पढ़ना सिखाया। उनके पढ़ाए बच्चे बड़े होकर विभिन्न पदों पर कार्य कर रहे हैं। यमुना प्रसाद जी बच्चों को बहुत ही अनुशासन में रखते हैं। क्या मजाल जो कोई बच्चा बिना कारण अनुपसिथत होकर उनकी छड़ी की मार से बच पाए। अपनी डेढ़ हाथ लंबी डड़ी का नाम उन्होंने 'दुखहरण' रखा हुआ है। उनके हाथ में दुखहरण को देखकर बच्चे थर-थर कांपते हैं। शाम को छुट्टी होने पर वे अपने दुखहरण को सहेजकर अलमारी में रख देते हैं। अगले दिन सुबह स्कूल आने पर वे उसे पुनः निकाल लेते हैं और फिर पूरे स्कूल पीरियड में उसे अपने साथ रखते हैं।

कहा जाता है कि उन्होंने अपनी बेंत की उस चिकनी छड़ी का नाम 'दुखहरण' इसलिए रखा है क्योंकि वे उससे भयभीत करके बच्चों को अनुशासन में रखकर तेज-तर्रार बनाने की कोशिश करते हैं। तेज-तर्रार छात्र अपने जीवन में हमेशा सफलताएं प्राप्त करता है और बड़े होकर उच्च पद पर आसीन होता है। इस प्रकार वे दुखहरण के माध्यम से बच्चों के जीवन भर के दुख को शिक्षा के प्रथम चरण में ही समाप्त कर देते हैं।

पिछले माह की वह घटना यमुना प्रसाद जी को याद है, जब पांचवीं कक्षा के सभी छात्रों ने मिलकर उनके 'दुखहरण' को गायब करने की कोशिश की थी। हुआ यह कि यमुना प्रसाद जी अपने दुखहरण को कक्षा में मेज पर रखकर बाहर किसी व्यक्ति से आवश्यक बातें कर रहे थे। बातचीत करते-करते शाम का समय हो गया। अब छुट्टी होने वाली थी। कक्षा पांच के सभी बच्चों ने मिलकर दुखहरण को गायब करने के लिये सोचा। इसके लिए उन्होंने एक साहसी लड़का विनोद को इस बात के लिए तैयार

सम्पर्कः 3420/0, द्वितीय तल, नारंग कॉलोनी, त्रीनगर, दिल्ली-110035, दिल्ली-110035, मो. 9873575920

किया कि वह दुखहरण को अपनी पीठ पर पैंट में अटकाकर शर्ट के पीछे छुपा ले और अपना बस्ता लेकर छुट्टी होने पर धीरे से स्कूल गेट से बाहर निकल जाए। फिर रास्ते में दुखहरण को किसी झाड़ी में छुपा देगा या नहर के तेज प्रवाह में बहा देगा।

विनोद इसके लिए तैयार हो गया। उसे तो दुखहरण की मार लगभग रोज ही खानी पड़ जाती है, क्योंकि वह स्कूल आने में अक्सर लेट जो हो जाता है। यही नहीं ध्यान लगाकर नहीं पढ़ने से वह सवाल भी तो बहुत गलत करता है। यमुना प्रसाद जी रोज दुखहरण से कभी उसकी पीठ मर मारते तो कभी हथेलियों पर। घंटों सहलाने के बाद आराम हो पाता।

घड़ी की सुईयां पांच बजाने को थीं, यमुना प्रसाद जी बाहर नीम के पेड़ के नीचे कुर्सी पर बैठे उस व्यक्ति से अब भी बातें कर रहे थे। इधर विनोद ने थरथराते हाथों से कक्षा में मेज पर रखे दुखहरण को झटपट उठाया और पीछे से शर्ट उठाकर कमर के पास पैंट में फंसाकर गर्दन तक लंबवत रख लिया। अब दूर से देखने पर कोई नहीं जान सकता था कि दुखहरण उसकी पीठ से चिपका हुआ शर्ट से ढका हुआ है। कक्षा के सभी लड़के अपनी इस चालाकी पर बहुत प्रसन्न थे। सभी लड़के तो यही सोच रहे थे कि एक माह बाद यमुना प्रसाद जी तो अवकाश ग्रहण कर जाएंगे परंतु यह दुखहरण तो अवकाश ग्रहण करेगा नहीं, इसे वे स्कूल के दूसरे अध्यापक को सौंप कर जाएंगे। अब दुखहरण को इस तरह से सदा के लिए गायब करने के ख्याल मात्र से सभी बच्चों के चेहरे प्रसन्नता से खिल उठे थे।

अगले ही पल स्कूल की छुट्टी की घंटी बज गई। सभी बच्चे कक्षा से बाहर हो लिए। बच्चों के झुंड में विनोद भी शर्ट के पीछे दुखहरण को छिपाए कक्षा से बाहर निकला। उसकी पीठ पर तो दुखहरण चिपका हुआ था, इसलिए बस्ते को उसने हैंडबैग की तरह हाथ में थामे बड़े ही शान से स्कूल के गेट की तरफ तेज डग भरते हुए बढ़ने लगा। अभी वह दो-चार कदम ही आगे बढ़ा था कि नीम के पेड़ की छाया में बैठे यमुना प्रसाद जी ने उसे पुकारा, 'विनोद इधर सुनो।' मास्टर साहब की यह पुकार सुनकर विनोद तो डर के मारे थरथरा उठा। उसके पैर कुछ पल के लिए जहां के तहां जम से गए।

दिल को कड़ा करके किसी तरह डगमगाते कदमों से वह मास्टर साहब के नजदीक पहुंचा। यमुना प्रसाद जी ने जमीन पर रखी शीशे की दो खाली गिलासों की तरफ इशारा करते हुए विनोद से कहा, 'इसे उठाकर अध्यापक कक्ष में खुली आलमारी पर रख आओ।' विनोद झुककर कैसे गिलास उठा सकता था, कमर से गरदन तक तो दुखहरण विराजमान था, परंतु मास्टर साहब के आदेश का पालन तो करना ही था। उसने ज्योंही झुककर गिलास उठाया, गरदन से एक बित्ता नीचे शर्ट पर दबाव पड़ा और दुखहरण का उपर भाग कमीज फाड़कर उपर झलकने लगा। यमुना प्रसाद जी की नजर दुखहरण पर पड़ गई। अगले ही पल वे अचकचाकर कुर्सी से उछल पड़े और लपककर विनोद की शर्ट में छुपे दुखहरण को उन्होंने खींच लिया। खींचने में जल्दबाजी के कारण विनोद की शर्ट नीचे तक फटती चली गई चर्र...र्र...र...र।

मास्टर यमुना प्रसा की आंखो से जैसे अंगारे फूट पड़े हों। दुखहरण को हवा में लहराते हुए वे विनोद के शरीर पर प्रहार करने लगे। कभी पीठ पर मारते तो कभी घुटने के नीचे पिंडलियों पर, तो कभी हथेलियों पर। विनोद जोर-जोर से चीख रहा था... 'मास्टर जी, मुझे क्षमा कर दीजिए...।'

यमुना प्रसाद जी से पीटते हुए बड़बड़ाते जा रहे थे, 'तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई दुखहरण को चुराकर ले जाने की, मार-मार कर चमड़ी उधेड़ दूंगा...क्या सोच रहे हो कि एक महीने बाद मैं अवकाश ग्रहण कर लूंगा तो इस विद्यालय से दुखहरण का नामोनिशान मिट जाएगा। यह दुखहरण तो इस विद्यालय की धरोहर के रूप में रहेगा, मेरी जगह कार्यभार ग्रहण करने वाले नए अध्यापक वीरेंद्र बाबू को मैं इसे सौंप कर जाउंगा।'

नीम के पेड़ के नीचे स्कूल के सभी कक्षाओं के बच्चों और अध्यापकों की भड़ खड़ी थी। सभी इस दृश्य को देखकर चुप थे। विनोद की आंखों से आंसुओं की धारा बह रही थी। चोट लगी हथेलियों के बुरी तरह दर्द से फटने के बावजूद उन्हीं हथेलियों से वह दूसरे जगह की चोटों को सहलाता हुआ दुखहरण के प्रहार से बचने का प्रयास कर रहा था।

जब यमुना प्रसाद जी का हाथ थमा, स्कूल के सभी बच्चे अपने-अपने घर जा चुके थे। थोड़ी देर में अध्यापक लोग भी चले गए। विनोद नीम के पेड़ के नीचे बैठा अब भी सुबक-सुबक कर रो रहा था। यमुना प्रसाद जी ने अपनी साइकिल स्कूल के बराण्डे से बाहर निकालकर नीम के पेड़ के नीचे खड़ी तो कर रखी थी घर जाने के लिए, परंतु उनका कहीं अता-पता नहीं था।

विनोद पड़ोस के दूसरे गांव से पढ़ने आता था, जो स्कूल से दो किलोमीटर दूर था। यमुनाा प्रसाद जी तो पांच किलोमीटर दूर स्थित अपने गांव से आते थे। उनका रास्ता विनोद के गांव के बगल से ही था। विनोद अब यमुना प्रसाद जी से नजरें नहीं मिला पा रहा था, अपनी गलती पर वह बहुत ही शर्मिंदा था। वह यमुना प्रसाद जी को मन ही मन कोस रहा था कि तभी सामने से उन्हें आते हुए देखकर एक बार फिर वह डर गया। परंतु यमुना प्रसाद जी इस

बार विनम्र हो चुके थे, उनके हाथों में एक गिलास था जिसे वे उसको थमाते हुए बोले, 'लो हल्दी मिला दूध पी लो और झटपट मेरी साईकिल के पीछे बैठ जाओ, मैं तुम्हारे गांव तक छोड़ दूंगा तुमको। और हां, आगे से कभी भी किसी के बहकावे में आकर इस तरह की कोई भी गलती कभी नहीं करना।' विनोद 'हां' में सिर हिलाते हुए मास्टर साहब की साइकिल के पीछे कैरियर पर उचक कर बैठने के ख्याल से मन ही मन खुश हो गया।

यमुना प्रसाद जी स्कूल के पास रहने वाले एक ग्वाले के घर से हल्दी मिला दूध गिलास में ले आए थे। शायद उन्हें यह आभास हो गया था कि दुखहरण से उन्होंने विनोद को कुछ अधिक ही चोट पहुंचा दी है। हल्दी मिला दूध पीने से चोट का दर्द कम हो जाता है। विनोद पल भर में ही गिलास खाली कर यमुना प्रसाद जी की साइकिल के कैरियर पर बैठ गया। उन्होंने उसे उसके गांव के पास छोड़ दिया। रास्ते में यमुना प्रसाद जी विनोद से कुछ न बोले।

यमुना प्रसाद जी का आज स्कूल में अंतिम दिन है। आज के बाद वे अब अवकाश प्राप्त अध्यापक कहलाएंगे। उनके विदाई समारोह के उपलक्ष्य में पूरे स्कूल में सजावट की गई है। बच्चों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम संपन्न होने के पश्चात प्रधानाध्यापक सहित सभी अध्यापकों ने यमुना प्रसाद जी के व्यक्तित्व पर अपना-अपना विचार व्यक्त किया। सभी ने उन्हें बच्चों को अनुशासन में रखकर अच्छी शिक्षा प्रदान करने वाला एक कर्मठ अध्यापक कहा। उनकी जगह पढ़ाने के लिए आए अध्यापक वीरेंद्र बाबू ने यमुना प्रसाद जी से अनुरोध किया कि वे अपनी कर्मठता की पिटारी से उन्हें भी कुछ शिक्षादान का गुण सौंप जाएं ताकि वे भी भविष्य में बच्चों को अनुशासन में रखकर अच्छी शिक्षा दे सकें।

वीरेंद्र बाबू के इतना कहते ही स्कूल के सभी बच्चे भय से कांप उठे। वे समझ गए कि यमुना प्रसाद जी नए अध्यापक महोदय को आखिर क्या सौंपेंगे सिवाय अपने दुखहरण के। अन्य अध्यापक महोदय भी यही सोच रहे थे।

तभी यमुना प्रसाद जी हाथों में 'दुखहरण' को थामे हुए माइक के सामने आए। उनकी आंखों में न जाने क्या सोचकर आंसू छलक आए थे। बहुत ही गंभीर होते हुए उन्होंने कहा, 'मुझे बहुत ही ग्लानि हो रही है कि मैंने अपने इस 'दुखहरण' से बच्चों को मारपीट कर अनुशासन में रखने का प्रयास किया। मेरा यह प्रयास सफल रहा या नहीं, यह तो बच्चों के अभिभावक ही बता सकेंगे, लेकिन मेरे पढ़ाए बच्चे बड़े होकर उच्च पदों पर आसीन होने के बाद जब यदा-कदा शहर, बाजारों या बस, ट्रेनों में मिलते हैं तो मुझे लगता है कि इस 'दुखहरण' ने उनकी ज़िंदगी संवारकर उनके समस्त दुखों का हरण कर लिया है। अब समय बदल गया है, शिक्षा प्राप्ति के साधनों में कंप्यूटर के आ जाने से बहुत ही सरलता हो गई है। अब वह समय नहीं रहा कि बच्चों को इस बेंत की छड़ी से मारपीट कर गलती न करने और अनुशासन में रहने को कहा जाए। समय के साथ ही आज बच्चे स्कूल आने से पहले ही अपने घर-परिवार के वातावरण में ही अच्छे संस्कार पाकर समझदार एवं जागरूक हो गए हैं। इन बच्चों को अब अध्यापकों को प्यार-दुलार की विशेष आवश्यकता है। जितने प्यार-दुलार से हम बच्चों को पाठ समझाएंगे ये उतने ही ज्यादा सीख सकेंगे। मारने-पीटने से इनके मन में अपराधबोध की भावना उत्पन्न होगी। जैसा कि पिछले महीने कक्षा पांच के बच्चों ने इस दुखहरण को चुराकर ले जाने की कोशिश की थी। वह तो संयोग ही था कि उनकी चोरी पकड़ी गई। उस समय मैंने क्रोधित होकर भले ही विनोद नामक तेज-तर्रार छात्र को दुखहरण से बुरी तरह पीट दिया परंतु बाद में मुझे बहुत ही पछतावा हुआ। ये बच्चे तो सचमुच ईश्वर का स्वरूप होते हैं। इनका मन बहुत ही कोमल होता है, आज जैसे विचार हम मन में भरेंगे ये वैसे ही विचार बड़े होकर समाज में व्यक्त करेंगे, जिसका प्रभाव देश की सभ्यता पर पड़ेगा, जिस पर ही देश की प्रगति निर्भर है। इसलिए मैं चाहूंगा कि अब भविष्य में कोई भी अध्यापक बच्चों को कभी नहीं मारे-पीटें। मैं अपने इस 'दुखहरण' को साथ में लेता जा रहा हूँ, मेरे साथ ही अब इस 'दुखहरण' का भी अवकाश ग्रहण हो गया।

गांव के उस प्राईमरी विद्यालय के बाहर एक कार खड़ी थी, जिस पर यमुना प्रसाद जी को विदा किया जाना था। यमुना प्रसाद जी ने बहुत ही गंभीर मुद्रा में सभी बच्चों व अध्यापकों की ओर देखा, सभी के चेहरे पर उनसे बिछुड़ने का दुख मौन भाव में झलक रहा था। सहसा वे मुस्करा उठे, फिर बच्चों की भीड़ के कक्षा पांच के छात्र विनोद को उन्होंने बुलाया और अपनी जेब से सौ रुपए के दो नोट निकालकर उसके हाथों में थमा दिया और अगले ही पल अपने दुखहरण से उसकी पीठ पर हल्का-सा प्रहार करते हुए हंसकर कहा, 'बेटे! इस रुपए से तुम मेरी तरफ से एक नई शर्ट जरूर खरीद लेना, मैंने तुम्हारी शर्ट फाड़ने की गलती अनजाने में कर दी थी उस दिन।'

यह कहकर यमुना प्रसाद जी कार में बैठ गए। कार सड़क पर तेज गति से भागती हुई उनके गांव की तरफ चल पड़ी। सभी लोग नम हो आई आंखों से धूल उड़ाती कार को तब तक देखते रहे जब तक कि वह उनकी आंखों से हरण नहीं हो गई। ○○○

करवा-चौथ

अंजु रंजन

"पिछली बार भी संयोग से उनके टूर के वक्त करवा चौथ पड़ा था। उन लोगो ने कालटोन हिल में चाँद देखा था और करवा चौथ मनाया था। बेहद ठंड और हवा के बावजूद सविता ने अपने विवाह के लहंगे और गहने पहने थे। बालों में परांदे गुँथे थे। रवि ने टैक्सी बुक करके पूरे समय तक रोक रखा था जिससे उसका वेटिंग चार्ज बिल बहुत अधिक आ गया था। पर रवि इन छोटी-छोटी बातों की कहाँ परवाह करता था! पूजा के बाद रवि उसे शेरेटन में खाना खिलाने ले गया।"

सम्पर्क: The Consul General of India, 1 Eton Road, Parktown, Johnnesburg, South Africa

सविता उदास है। उसका मन बहुत खिन्न है।

पहले तो करवाचौथ का प्रचार-प्रसार वाले पोस्ट देखकर और फिर उसकी बुराइयाँ पढ़कर और सुनकर। बुराई वे ही कर रहे हैं जो कभी न कभी कड़वे अनुभव से गुजर चुके हैं। जैसे तलाक शुदा लड़कियाँ, विधवाएँ, नारीवादी लेखक व लेखिकाएँ फेसबुक पर विचार- विमर्श कर रहे हैं। एक सुर से पानी पीकर कोस रहे हैं कि स्वास्थ्य की दृष्टि से और मानवीय दृष्टि से भी - करवाचौथ या तीज या फिर बट सावित्री करना बिल्कुल भी तर्क संगत नहीं है और न ही इसको बढ़ावा देना। आखिर कोई किसी के लिए उपवास क्यों रखे? क्यों किसी की लम्बी उम्र की दुआ करे-उपवास करके अपने स्वास्थ्य क्यो दाँव पर लगाए!

सविता मौन है चुप है। चुप चाप छिपकर उसने करवा-चौथ का व्रत रखा है। बच्चों को भी नहीं बताया।

आलोचकों के निशाने पर सविता जैसी पढ़ी लिखी औरतें भी हैं। इनको इस बात की चिढ़ है कि ये क्यों नहीं मॉडर्न रहतीं। क्यों परम्परागत तरीके से व्रत-त्योहार मनाती हैं। मॉडर्न होने से इनका मतलब यह है कि आप मुक्त हों- परिवार से उनकी जिम्मेदारियों से, रिश्ते निभाने से, विवाह से और बच्चों से। वरना आप प्रगतिशील हो ही नहीं सकते।

सविता कैसे मुक्त हो? सविता जैसी औरतों को तो जिम्मेदारियाँ भँवर की तरह पैरों से लिपट जाती है। पहले मायके फिर ससुराल और अब बच्चों की ज़िंद्ग़ी सेटल करना- सब कुछ उसके कन्धों पर है।

भारतीय परंपराओं की बुराई करने वाली ये वही औरतें हैं जो डायटिंग के नाम पर बिना कुछ खाए दिन और सप्ताह निकाल देती हैं पर करवा चौथ या तीज करने से इनके स्वास्थ्य की भयानक हानि हो सकती है। पुरुष भी इनके प्रशंसा की रेवड़ियाँ पाने के लिए हाँ में हाँ मिलाते हैं, भले ही घर जाकर पत्नी के साथ छत पर करवा चौथ मनायें। उससे बढ़िया कोई गॉसिप साइट खोल लेतीं तो अच्छा रहता। जहाँ अपनी परंपराओं पर,

सास- जिठानियों और पढ़ी- लिखी कमाऊँ महिलाओं पर अपनी कुंठा खुले आम निकालतीं।

सविता ने एक उच्छ्वास लिया। वह उदासी को झटक कर उठ बैठती है। सामने सूरज उग रहा है। एक पूरा दिन उसके सामने पड़ा है- पचास पौंड के करारे नोट की तरह-उसे वह जैसे चाहे वैसे खर्च कर सकती है!

खिड़की से हटकर उसने कॉफी बनायी। परकोलेटेर में कॉफी की खुशबू पूरे कमरे में भर गयी है। बेटी अदिति और बेटा आदिनाथ उठ कर बैठ जाते है। तीनों को जल्दी से स्कॉटलैंड टुरिज्म की बस पकड़नी है।

खैर, आज हाईलैंड का टूर था। पहले ही सविता थक कर चूर हो गयी थी। थकान के मारे वह बस में बार- बार जम्हाईयाँ ले रही थी। बाहर ठंड और हवा थी, पर वातानुकूलित बस बहुत कोजी और कम्टर्बल थी। सविता की आँख लग गयी।

वह अपने बच्चों के साथ स्कॉटलैंड घूमने आयी थी। उसे ऑफिस से बहुत मुश्किल से छुट्टी मिली थी। पिछले कई सालों से वे लोग कहीं नहीं जा पाए थे। इसका मुख्य कारण था रवि की बीमारी। उन्हें कैन्सर डिटेक्ट हुआ था। सविता पर तो मानो पहाड़ टूट पड़ा। एक साल तक पूरा परिवार कैन्सर के पंजे में गिरफ्त रहा। सारी जमा पूँजी इलाज में चली गयी। सविता को घर चलाने के लिए एक स्कूल में नौकरी करनी पड़ी। बच्चों की पढ़ाई छूट गयी। सविता, घर, हॉस्पिटल और स्कूल के बीच में पिस गयी। उसी समय कोढ़ में खाज उसकी किडनी की समस्या शुरू हुई। डॉक्टर का कहना था कि अब उसकी किडनी सिर्फ बारह प्रतिशत काम कर रही थी।

सविता अवाक!

वह पूरी तरह टूट चुकी थी पर हार नहीं मानती थी। अपने विल पावर से कैन्सर से अपने पति को बचा लेना चाहती थी।

पर कैसे?

एक डॉक्टर से बात हुई तो उसने सुझाया कि अगर जर्मनी जाकर इलाज कराया जाये तो ठीक होने के पूरे चान्स हैं। सविता तो मानो डूबते को तिनके का सहारा ढूँढ रही थी। उसने औने-पौने दामों में घर बेचा और पति को लेकर जर्मनी चली आयी। अस्पताल के करीब बहुत से छोटे- छोटे कमरे बने थे जहाँ रोगी के परिवारों को रखा जाता था। सविता ने वहीं अपना ठिकाना बनाया।

उसकी दिनचर्या बिल्कुल मशीनी हो गयी थी। अलस्सुबह वह उठ जाती। नहाकर तैयार हो जाती और भागकर कैन्सर वार्ड में पहुँच जाती। वहाँ हमेशा सैंडविच और कॉफी रखी रहती थीं। शुरू- शुरू में सविता को बहुत खराब लगता था - जैसे चोरी कर रही हो। पर बाद में नर्स ने बताया कि कई एनजीओ पेशेंट के परिवारों के लिए ही खाने-पीने का सामान रखते हैं।

अब तो वह घर में कभी नाश्ता नहीं करती थी- यहीं कॉफी और सैंडविच खा लेती। फिर टिप- टॉप तैयार होकर रवि के पास पहुँच जाती। रवि का हाथ थामे बैठी रहती।

कभी रवि ठीक रहता तो बड़े प्यार से बतियाता। पर कीमो के करण वह बहुत दर्द से गुजर रहा था। सिर के बाल उड़ गए थे। खाने-निगलने में परेशानी हो रही थी। कभी वह सविता को बुरी तरह झिड़क देता।

'इतना सजकर आने की क्या जरूरत है? पति मरण सेज पर है और तुम्हारा सिंगार- पटार ही कम नहीं होता!'

सविता जानती थी यह उसका फ्रस्ट्रेशन बोल रहा है- ज़िंदगी से धीरे-धीरे हारते जाने का दु:ख। मौत को प्रतिपल नजदीक आते देखने का खौफ।

सविता कभी नहीं हारती। रवि को खिला- पिला कर वह अपने इलाज के लिए जाती। उसके पास किडनी ट्रैन्स्प्लैंट का विकल्प था, पर उतने पैसे कहाँ थे। वह किसी तरह पेन किलर खाकर काम चला रही थी।

उसी दौरान पता चला कि कोई संस्था स्वयंसेविका की खोज में हैं जो मृतप्राय वृद्ध लोगों को नहलाये, धुलाए और उनकी पखाना- आदि साफ करें। सविता ने वह काम ले लिया और उसके चार घंटे हॉस्पिटल के ओल्ड एज विंग में कटने लगे।

शाम को वह इतनी थक चुकी होती कि घर पहुँचते ही उसे नींद आ जाती।

सविता और रवि को डॉक्टर ने बताया कि अगर वे लोग अपने को रीसर्च के लिए समर्पित करें तो बेहतरीन दवाइयाँ मिल सकती हैं। सविता और रवि ही वह भी मान लिया।

सविता रवि को बचाने के लिए किसी भी हद तक जा सकती थी। वह दिन-रात अजपा महामृत्युंजय पाठ करती रहती।

''हे भगवान, मेरे सुहाग को बचा लो साईं बाबा- तुम्हारे दर पर हर साल जाऊँगी। हे सती मैया- नया चूड़ी और चुनरी चढ़ाऊँगी। मेर सुहाग लौटा दो माँ! हे शंकर भगवान, पैदल काँवर उठाकर जल अभिषेक करूँगी। बस रवि को बचा लो, प्रभु!' दिन रात उसके होंठ मौन प्रार्थना बुदबुदाते रहते।

पर रवि नहीं बचा। वह काला दिन सविता कैसे भूल सकती है! वह रवि का हाथ थामे बैठी थी कि रवि को एक बड़ी हिचकी आयी और फिर सब खत्म!

रवि ने डॉक्टर को बता रखा था कि उसके मरने के बाद सविता को उसकी किडनी के बदले किसी दूसरे इंसान की किडनी जो मैच करती हो- दे दीं जाय।

जब सविता को यह बताया गया तो वह सुबकियाँ लेकर रोने लगी। रवि उसे इतना प्यार करता था?

कभी पता क्यो नहीं चला उसे? वह बेवजह उससे लड़ती रही। उसे याद आने लगा कि किन किन अवसरों पर वह रूठ गयी थी, तुनक गयी थी! भागकर मायके चली गयी थीं और रवि उसे मना- मुनूकर घर ले आया था।

'हाय रवि मैं तुम्हारे बिना कैसे रह पाऊँगी? कैसे इन बच्चों को सेटल कर पाऊँगी? कैसे सारे कर्जे तोड़ पाऊँगी? क्यों तुमने मुझे किडनी दिलाकर जीवन- दान दिया? मैं भी तुम्हारे साथ मर जाती तो अच्छा था। इतना दु:ख और जिम्मेदारी का बोझ न होता मेरे सिर पर? मैं कैसे क्या करूँगी तुम्हारे बिना?'

सविता रो-रोकर लोटती रही फर्श पर! डॉक्टर और नर्सो के लिए ये रोज का नजारा था। वे हर दिन मौत से ज़िंदग़ी को हारते देखते थे, पर वे रीसर्च जारी रखे हुए थे! क्या पता आने वाले दिनो में कैन्सर लाइलाज बीमारी न रहे और वे सबको मौत से लड़ना और जीतना सीखा दें।

सविता ने भी रवि के बिना जीना सीख लिया। जर्मनी के उसी हस्पताल में उसे आया की नौकरी मिल गयी। फिर से जीवन पटरी पर आया। दोनो बच्चे वहीं सरकारी स्कूल में पढ़ रहे थे। सविता के स्वास्थ्य में धीरे- धीरे सुधार आता गया।

और अब दो साल बाद, सविता अपने बच्चों को लेकर दुबारा स्कॉटलैंड आयी थी और स्कॉटलैंड आये कोई और हॉलैंड न जाय!

ये कैसे हो सकता है?

वह बच्चों को लेकर एक कार बुक करके हॉलैंड पहुँची।

लॉक मॉन्स्टर देखा, कैसल देखा और हर जगह पर रवि की बेतरह याद आयी। लॉक मान्स्टर देखकर कैसे बच्चों की तरह खुश हो रहा था! झील के किनारे एक दूसरे का हाथ पकड़कर दूर तक चले थे वे दोनो। अचानक एक जगह एकांत में रवि ने उसका हाथ दबाकर रोक लिया था। कंधे पकड़कर उसने सविता को अपनी तरफ मोड़ लिया था। शरारत उसकी आँखो और होंठों से टपक रही थी। सविता नवोढ़ा की तरह शरमा गयी -उसकी पलकें अपने आप झुक गयी थीं और रवि ने उन झुकी पलकों को चूम लिया था। फिर दोनो सघन आलिंगन में बंध गए थे। वापसी में दोनो हनीमून कपल की तरह चुहलबाजियाँ और शरारतें करते रहे थे पूरे रास्ते। बस में बैठे बाकी जोड़ों के साथ डान्स भी किया था- स्टर्लिंग कैसल के पास।

आज फिर करवा चौथ था।

पिछली बार भी संयोग से उनके टूर के वक्त करवा चौथ पड़ा था। उन लोगो ने कालटोन हिल में चाँद देखा था और करवा चौथ मनाया था। बेहद ठंड और हवा के बावजूद सविता ने अपने विवाह के लहंगे और गहने पहने थे। बालों में परांदे गुँथे थे। रवि ने टैक्सी बुक करके पूरे समय तक रोक रखा था जिससे उसका वेटिंग चार्ज बिल बहुत अधिक आ गया था। पर रवि इन छोटी- छोटी बातों की कहाँ परवाह करता था! पूजा के बाद रवि उसे शेरेटन में खाना खिलाने ले गया। रात में होटल वालों को झूठ बोलकर कि यह उनकी सुहागरात है, कमरे में सुगंधित मोमबत्तियाँ और फूल रखवाए थे। वाइन और दो गिलास भी दिए था होटेल ने काम्प्लमेंटरी!

सविता को लगा था कि वह कितनी खुश नसीब है, जो रवि जैसा पति मिला। उसे यह भी लगा था कि वह करवा चौथ करती रहेगी तो रवि हमेशा उसके पास रहेगा। पर मौत के क्रूर पंजे से कहाँ बच पाया वो!

हालाँकि रवि जाते- जाते सविता को जीवनदान दे गया - अपनी किडनी और अन्य अंग दान करके।

सविता पुनः उसके लिए प्यार व गर्व से भर गयी। शायद इसी लिए भारतीय विवाह को सात जन्मों का साथ माना गया है। उसे विश्वास हो चला कि वह हर जनम में रवि को वरेगी और पाएगी। रवि और सविता वैसे भी सूर्य और किरण हैं जो थोड़ी देर के लिए बिछड़ सकते हैं पर हमेशा से एक दूसरे के लिए बने हैं- शायद इसलिए सूर्य यानी रवि को सविता देव कहा गया है।

सविता ख़्यालों में गुम चलते - चलते दूर निकल गयी। बच्चे फोटोग्राफी करते हुए दूसरी तरफ चले गए थे-मोटरबोट में बैठने के लिए।

सविता वैसे भी एकांत में रहना चाहती थी थोड़ी देर।

वह, मानो दिवा स्वप्न में लॉक के किनारे- किनारे चलती हुई बर्च के उसी पेड़ के निकट पहुँची- जहाँ रवि ने उसे दृढ़ आलिंगन में बांधा था। पेड़ मौन खड़ा था। पतझड़ में लाल पीले पत्ते उसकी पैरों तले कराह उठे। उसे फिर से हॉस्पिटल में कराहता रवि याद आया। क्या रवि की आत्मा कभी यहाँ आयी होगी? शायद, हाँ!

तभी तो उसे रवि की उपस्थिति सी महसूस हो रही थी।

'देखो रवि, मैं तुम्हें खोजते- खोजते कहाँ कहाँ भटक रही हूँ। एक बार तो दिख जाओ तुम। मै कितनी अकेली हो गयी हूँ, तुम्हारे बिना!'

वह फिर से सिसक पड़ी।

आसमान में चन्द्रमा उग आया था। लॉक मान्स्टर से लाल नवजात कोमल चाँद! कितना अद्‌भुत नजारा था, इधर सूरज डूबने से वातावरण में साँवलापन फैल रहा था, उधर से चाँद उग रहा था। स्कॉटलैंड में वैसे भी दिन थोड़ा बड़ा होता है, शाम साढ़े सात तक तो सूरज चमक ही रहा था। गरमियों में तो दस बजे रात तक सूरज चमकता रहता है। ऐब्सलूट अंधेरा तो कभी होता ही नहीं।

रवि के जाने के बाद सविता ने एक कविता लिखी थी-

'मेरा चन्द्रमा डूब गया'

जो जीवन से भरपूर था

वह मौत से हार गया

जीने के मौके से चुक गया

हाँ, मेरा चन्द्रमा डूब गया।'

उसे लगा कि रवि लॉक के उस पार खड़ा है, वहीं जहाँ से चाँद उग रहा है। रवि उसे हाथ से इशारा कर रहा है। शायद उसे पास बुला रहा है या पानी से दूर जाने के लिए कह रहा है।

वह पानी के बिल्कुल करीब आ गयी और अपनी आँखे तट के उस पार गड़ा दीं। चाँद तेजी से ऊपर उठ रहा था। उसने एक अंजलि पानी हाथ में लिया और चन्द्रमा को अर्घ्य दिया। चाँद मानो मुसकुरा पड़ा और उसके साथ तट के उस पार खड़ा रवि भी। दुबारा उसने अंजलि में पानी भरा और अर्घ्य देने लगी तो ऐसा लगा कि रवि के होंठ उसकी अंजलि से चिपक गए हैं और वह पानी पी रहा है। तब सविता ने आँख खोलकर चाँद को देखा और उस पार खड़े रवि को।

सविता का करवा चौथ पूरा हुआ।

○○○

जहरबाद

इंदिरा दाँगी

जंगल जिंदा होता है; और जंगल में अकेलापन जानलेवा! निपत जब हद-बेहद हाँफ् उठता है तो साईकिल से उतरकर उसे धकेलने लगता है। बीच में दो बार रुककर उसने बच्चे को पानी पिलाया है। आस-पास घने पेड़ों, घास-झाड़ियों और धरती-आसमान में पक्षियों की चह-चह व्यापी है। एक नेवला सामने से गुजरा। एक पेड़ पर मोर बोला। एक झाड़ी के पीछे से सरसराकर कुछ, कहीं दौड़ गया। बेटा चौंक-चौंक कर पूछता है; वह दिलासा देता जाता है; हिरन होगा या कि खरगोश!

जीवन का अचानकपन ही तो उसे जीवन बनाता है।

निरपत ने पास आते बेटे से पूछा, ''हो गई छुट्टी?''

प्रश्न करते-करते उसने अचानक देखा कि दीपू का दायाँ गाल सूजा हुआ है। अपने पूछ के जवाब का इंतजार नहीं रहा अब उसे ''दीपू, तुम्हारा गाल कैसे सूज गया?''

छह बरस का दीपक अपना गाल छूकर कहता है,

''पता नहीं बाबा; पर ये गाल दुखता है।''

उसने बेटे को गोद में उठा लिया। दुकान बढ़ाकर, वह दोपहर का खाना खाने घर जा रहा था।

''मास्टरजी ने मारा क्या भइया?''

आदमी जहाँ जा बसता है, वहाँ की संस्कृति में ऐसे घुल जाना चाहता है जैसे पानी में मिल जाये। बड़े गाँव के हाटनुमा बाजार का प्रमुख बर्तन व्यापारी निरपत मूलचंदानी अपने तईं इतना स्थानीय हो चुका है कि ज्येष्ठ पुत्र को सीधे-सीधे तौर पर नाम से न पुकारकर उसे 'भइया' कहने का मनुस्मृतिय रिवाज निभाता है।

''नहीं बाबा। आज तो ऐसी कोई बात नहीं हुई।''

''तब? जरूर तुम्हारी अम्मा ने गाल खींचा होगा। घर चलो, पूछता हूँ।''

''अम्मा ने भी नहीं मारा! तब क्या कक्षा में लड़कों से फिर झगड़ा हुआ? क्या फिर कोई तुम्हें माडू कह कर चिढ़ा रहा था?''

ये प्रश्न करते-करते निरपत मूलचंदानी की आवाज न जाने कैसी हो आई! सन् सैंतालिस के दंगों में जब उसका कुनबा पाकिस्तान से भागकर अजमेर आया; वो अबोध था। चाचा-ताऊ अजमेर में ही बस गये। अपने परिवार के साथ वो मंदसौर आ गया; जहाँ बाद में, माँ-पिता के गुजर जाने पर भाईयों ने अपने-अपने घर बसा लिये, किराये के मकानों-दुकानों में। ...और बड़े गाँव आ बसा निरपत इस धरती में अपने जीवन की जड़ें आरोपित करने की कोशिशों में कितना ज्यादा अनुकूल हुआ यहाँ के।

साभार: खेड़ापति हनुमान मंदिर, लाऊखेड़ी, एयरपोर्ट रोड, भोपाल (म. प्र.)-462030, मो. 9109681599

ऊपरी से लेकर आंतरिक तौर तक जितना मुमकिन था, निरपत ने अपने आप को छीला, छाँटा, तराशा और समय के साँचे में ढाला; उसका वश चलता तो वो अपनी त्वचा का रंग तक इस मालवी मिट्टी की श्यामलता में रग लेता; फिर भी गलियों के छोटे बच्चों के झुंड स्थानीय हवा की अस्वीकृति को जब-तब जता ही देते हैं,

''सिंधी माडू! सिंधी!! ...माडू!!!''

उसका लड़का मगर इसी अक्खड़ मिट्टी-हवा-उजाले में पनपा बीज है और उसकी रंगत भी यहाँ के मूल निवासियों से मिलती-जुलती, कुछ-कुछ श्यामली है। निरपत ने फिर पूछा है,

''बेटा, कक्षा में हाथापाई फिर से? कितनी बार समझाया है, कोई चिढ़ाये तो सीधा मास्टरजी के पास जाओ। वे न सुनें तो हेडमास्टर साहब का कमरा भी स्कूल में ही है।''

''नहीं बाबा। न किसी ने कुछ कहा, न मैं किसी से लड़ा। आज तो हमारे स्कूल में बड़े सर लोग आये थे इंस्पेक्शन करने। पूरा दिन, हम सब पढ़ते ही रहे।''

''तब जरूर किसी कीड़े ने काटा है। क्या बहुत दर्द होता है?''

''हाँ बाबा।''

''तुम भी कमाल हो बड़ी साईं!''

बात-बात में घर आ गया। घर की स्वामिनी सुलक्षणा अपने रोजमर्रा के व्यापारों में लगी है। छत के कुंदे में साड़ी बाँधकर झूला बनाया गया है; उसी में दो महीने की नन्हीं बेटी विद्या अभी-अभी सोई है। अतिव्यस्त गृहणी बीच-बीच आकर उसे झुला जाती है।

सुलक्षणा जब यहाँ आई, सलवार कुर्ता पहनती थी और हर दृष्टिकोण से सिंधिन लगती थी। अब वो साड़ी, चूड़ी, बिन्दी, सिंदूर और बिछिये-पायल पहनती है। स्थानीय लहजेदार खरी हिन्दी बोलती है और हर अलस्सुबह मुहल्ले के पीपलवाले महादेव पर जल चढ़ाने जाती है; लेकिन जब कभी अपने कामकाज के बीच वो अनायास गुनगुनाती है, उसके होठों में सिंधी लोकगीत ऐसे आ रचते हैं जैसे बाँसुरी साँसों को पाते ही उन्हें संगीत में बदल देती है।

...वे तमाम लोकगीत जिन्हें सिंध से चलते वक्त उसकी लुटी-पिटी दादी अपने दिल में दौलत की तरह छुपा लाई थी।

''तुम भैया का तनिक भी ध्यान नहीं रखती हो। न जाने इसके गाल पर चोट लगी है, न जाने कई दिनों से कोई फुंसी-फोड़ा पनप रहा था। आज जब गाल इतना उठ आया, तब दिखा!''

''किसी कीड़े ने काटा होगा; कल तक बैठ जायेगा।''

नवजात बच्ची की कमजोर देह माँ, एकाकी गृहणी का ध्यान अपने रोजमर्रापन की व्यस्तता में लगा है। वो चूल्हे में रोटियाँ करारी कर-करके परोसती जाती है। निरपत एक हाथ से बेटी का झूला झुलाता, दूसरे से कौर तोड़ता, शेष एकाग्रता में बेटे के गाल पर ही आँखे जमाये है।

''दीपू की अम्मा, तनिक इसका गाल सेंक तो दो, तवे से रूमाल गर्म करके।''

माँ ने बच्चे को चूल्हे के पास बिठाया और सिकाई करने लगी। हर सेंक पर बच्चा कराहता है। पिता ने आज एक रोटी कम खाई, ''भैया, मेरे साथ दुकान चलो। वैद्य जी पास ही बैठते हैं। तुम्हें दिखा दूँगा।''

बच्चे को अपने साथ दुकान ले जाता निपत मगर ये भूल गया कि आज मंगलवार है। आज वैद्यजी व्रत रखते हैं; और अपना दिन टेकरी वाले हनुमान मंदिर में बिताते हैं। मंदिर की साफ-सफाई, सेवा-पूजा, चालीस का सहस्त्रपाठ और शाम को चोला चढ़ाने के बाद वहीं बैगन या आलू का भर्ता, चटनी और गक्कड़ बना-खाकर सो जाना; उनकी इस अटल दिनचर्या से उनका हर आम-ओ-खास मरीज और मुलाकाती परिचित है।

हर बार तो जब भी दीपू दुकान पर आता है; निरपत को उसे रोकते-टोकते रहना पड़ता है इस-उस बर्तन को उठाने से कि कहीं ऊधम मचाने में वो बर्तन को दचक-पटक न दे। आज दीपू चुप और उदास दिखता है।

''भैया, गल्ले में से पैसे ले जाओ। पसरठ की दुकान से ले आओ जो भी खाना है—कम्पट, पुंगे, नहीं तो वो जो तुम्हें बड़ा पसंद है —आमपापड़!''

''नहीं बाबा।''

वो हथेली जो गल्ले से पैसे निकालने के नाम पर खिल जानी चाहिये थी अब तक चहकते गात के साथ, वो गाल पर है। दीपू चुपचाप बाजार को ताकता है। ग्राहक को बर्तन दिखाते निरपत का मन उचाट हो गया,

—क्या बच्चे को शहर के डॉक्टर से दिखा लाऊँ?

सोचने में वो दो पल लगाता है। कस्बा-शहर यहाँ से आठ किलोमीटर दूर है और सप्ताह में एक बार तो निरपत को जरूर ही जाना होता है। उस दिन भर वो कस्बे की दुकानों पर नये-से-नये चलन के बर्तन ढूँढता-छाँटता रहता है फिर तो निरपत को जरूर ही जाना होता है। उस दिन भर वो कस्बे की दुकानों पर नय-से-नये चलन के बर्तन ढूँढ़ता-छाँटता रहता है फिर किराये की बैलगाड़ी कर उसमें भरवा लेता है और घर का सौदा-सुलफा टाँगे अपनी साईकिल से बैलगाड़ी के आगे-आगे चला आता है, उसकी यही मेहनत और व्यापारिक सूझबूझ बाजार में उसके टिक पाने का रहस्य है।

उस दिन आषाढ़ के पहले ही मेघ घिर रहे थे। उसे मूसलाधार वर्षा का तो डर था ही, फिर राह में घना जंगल भी पड़ता था। इस सुदूर अंचल के जंगलों में लकड़बग्घों और चीतों की गिनती कौन करता; कभी-कभी तो राहगीरों के सामने बाघ भी आ जाया करते। शहर जाना होता तो आदमी मुँह अंधेरे घर से निकलता; वे दोनों तो चले ही दोपहर बाद थे। गाँठ में कुछ रकम भी थी, और हाथ में साईकिल। उठाईगिरों-उचक्कों का डर अलग से लगा था। बाजार में, आये दिन राहजनी के किस्से सुनता रहता था। सुना, वे बदन के कपड़े तक लूट लेते हैं; तिस पर इतना पीटते-कूटते हैं कि आगे जीवन भर, जब भी आकाश में मेघ उतरें, हड्डियों में दर्द उभरे। उसे अपनी कम, बेटे की चिंता अधिक थी।

और अब, शांत जंगली रास्ते पर एक साईकिल जैसे दौड़ नहीं, उड़ रही है। हवा से राह में उड़ते सूखे पत्तों के सिवाय निरपत के साथ यहाँ चलने को कोई नहीं।

जंगल जिंदा होता है; और जंगल में अकेलापन जानलेवा! निपत जब हद-बेहद हाँफ् उठता है तो साईकिल से उतरकर उसे धकेलने लगता है। बीच में दो बार रुककर उसने बच्चे को पानी पिलाया है। आस-पास घने पेड़ों, घास-झाड़ियों और धरती-आसमान में पक्षियों की चह-चह व्यापी है। एक नेवला सामने से गुजरा। एक पेड़ पर मोर बोला। एक झाड़ी के पीछे से सरसराकर कुछ, कहीं दौड़ गया। बेटा चौंक-चौंक कर पूछता है; वह दिलासा देता जाता है; हिरन होगा या कि खरगोश! ...लेकिन जो न हिरन है, न खरगोश —उस किसी हिंसक के आने की आहट से जब जंगल एकाएक दम साध गया तो निरपत का अंदेशा, भय बन गया। तुरंत ही वह झाड़ियों की ओट हो गया। सवाल करता बेटा पिता को भयभीत जान खुद भी डरकर एकदम चुप हो गया। कोई अज्ञात-अकल्पित पदचाप किन्हीं चार पैरों की निरपत को जैसे सांस ही लेना भुलाये देती है। उसने बेटे को अपने में छिपा लिया। जो गुजरा उसकी न दहाड़ सुनाई दी न बेचैनी; सौभाग्य बाप-बेटे का कि उस ओर वाला भूखा न रहा होगा वर्ना क्या जंगल के सर्वश्रेष्ठ शिकारी को आदमगंध न महसूस हुई होगी?...जंगल अपने हिंसक से हिंसक रहवासी को भी उतना ही लेना सिखाता है जितना जीने के लिए जरूरी हो!

चौकन्ने पिता ने बेटे को खुद में समेटे भय और चिंता के कितने स्तब्ध पल बिता दिये हैं न जाने; और अब जब सामान्य महसूस होने लगा जंगल भी; उसने फिर साइकिल के पैडल पर अपने रिरकते पैर को जमाया। दीपू दुखते गाल पर हाथ रखकर पूछता है, ''क्या शेर था बाबा?''

चिंतित पिता जान रहा है, अब बच्चे से ठीक से बोलते भी नहीं बन रहा।

शहर में घुसते ही सरकारी अस्पताल नजर आता है। निरपत रुकता है। छोटा अस्पताल मरीजों और उनके परिजनों से खचाखच भरा है। निरपत अपने बेटे को गोद में उठाये भीड़ में से किसी तरह आगे बढ़ने की कोशिश करता है। एक कुपोषित शिशु जिसके पंजर पर खाल झुलसे कपड़े अपने पिता की गोद में न जाने सोया है न जाने अर्धमूर्छित है। एक अर्धनग्न वृद्ध बार-बार कराहता है। एक गर्भवती बरामदे के कोने की धूल में छटपटा रही है। अपने रिसते घावों को मैली, घरेलू पट्टियों से लपेटता प्रौढ़ हारा-सा बैठा अपनी बारी की प्रतीक्षा में है। परिसर, बरामदा और तकरीबन पूरा ही अस्पताल रिसते घावों और छटपटाते कुपोषितों की कराहों और प्रतीक्षा से भरा है। कतार पार कर कोई निरपत को कैसे जाने दे आगे; इस कतार में खड़े होने पर तो कल तक बारी आयेगी। निरपत सोच ही रहा है कि तभी डॉक्टर के कमरे के द्वार पर आकर चपरासी घोषणा करता है, ''डॉक्टर साहब उठ गये हैं।

अब कल आना। उठकर उसी जीप में गए हैं! हमेशा ये ही तमाशा है इस अस्पताल में! शाम वाले उसी विशेष मकसद का सफर होगा या कि फिर वही... एक फटेहाल नौजवान क्रोध में लगभग

चीखते-चीखते चुप हो गया है।

''ऐसे कैसे? ऐसे कैसे??'' बुखार में तपती एक वृद्धा अपनी लाठी को हथियार की तरह उठाती कमरे के द्वार की ओर बढ़ती है कि गिर जाती है।

''बुखार सिर चढ़ गया है।'' जनमानस के केन्द्र में आ जाने से झेंपा किसान अपनी माँ को समेटता है।

''अब चाहे बुखार सिर चढ़े या कि क्रोध; यहाँ कुछ सुनवाई नहीं; डॉक्टर साहब तो उठ गये!''

''डॉक्टर नहीं कम्पाउन्डर साहब! असली डॉक्टर साहब काहे आने लगे देहात में?''

''आयें! पर सुनते तो थे कि नये डॉक्टर साहब आ रहे हैं?''

''नये डॉक्टर साहब!!'' फटेहाल नौजवान कड़वाहट से हँसता है—''ऐसे लोग ऊँची पढ़ाई करते ही हैं अपने ऐशोआराम के लिये। लोग तो विदेश तक भाग जाते हैं, देश को बूढ़े-अपाहिज बाप की तरह भूलकर!'' निरपत बेटे को कंधे से चिपकाये अस्पताल से बाहर चला आया।

...और डॉक्टर एल.एन. सिंह की प्रायवेट डिस्पेन्सरी के बाहर जाकर साईकिल जब रुकी, कमजोर देह निरपत की साँसें सम्हाले नहीं सम्हल रही थीं। पिंडलियों में लहू भर आया था। सीने में दर्द से साँस जैसे अवरुद्ध हो उठी थी लेकिन ये हाँफने-सुस्ताने का समय नहीं है। दीपू को डॉक्टर से दिखाना है।

पर ये क्या??

''डागदर साब मरघट गये हैं। सामने जे बड़ी हवेली देखते हो, इसके मालिक सेठजी आज सबेरे मर गये। अभी ही तो अर्थी हवेली छोड़कर उठी है। तुम्हें गैल में नहीं मिली?''

सड़क किनारे बोरा बिछाकर सिंदूर, टिकुली, चूड़ियाँ बेचने वाली कूँजड़ी वृद्धा बड़े सहज—और कुछ खुश—भाव से कह रही है। उसके पोपले मुँह में किनारों के दो दाँत असामान्य रूप से बड़े हैं। कुछ भुखमरी, कुछ वृद्धावस्था और कुछ निर्मत अतीत ने अपने पंजों से खरोंचकर उसका सुंदर चेहरा जैसे मृत कर डाला है। असफल मन से निरपत डिस्पेन्सरी के बाहर बने चबूतरे पर बैठकर हाँफने-सुस्ताने लगा। बादलों से बचता-भागता सूरज अब डूब चला है। धूल भरे पथ पर अभी-अभी किसी की अंतिम यात्रा के फूल-बताशे बिखरे हैं। एकाएक कुँजड़ी की आवाज तेज और भयकारी हो उठी।

''जे का हो गया बालक को? मूरख आदमी, बैठ के सुस्ताओ नहीं और डागदर के पास काहे लिवा लाये जा को? भागो! सिद्ध-जनवा के गाँव भागो। जे तो साक्षात् मौत है—साक्षात् मौत!!''

झंग डुकरिया अपने तेज अनगढ़ उच्चारण में क्या बड़बड़ा रही है, निरपत को ठीक से समझ नहीं आया। कुँजड़ी उसके बच्चे के सूजे गाल की तरफ उँगली उठाये कुछ कहती जाती थी...कुछ जिसमें 'मौत' बड़ा साफ सुनाई देता है। इस घड़ी ये कुँजड़ी निरपत को श्मशान की उन्मत्त योगिनी जान पड़ती है।

बच्चा भयभीत होकर पिता से चिपक गया है। निरपत ने उसके सिर पर हाथ फेरा; लेकिन कुँजड़ी को डाँटने का उसे साहस न हुआ। डूबते सूरज और गहराते मेघों के पथ पर बच्चे को लिए वो आगे बढ़ चला। पीछे छूटती कुँजड़ी की अस्पष्ट बोली में से जैसे 'मौत' शब्द गति पकड़कर साथ चला आया है। क्या बच्चे को कोई ऐसी बीमारी हो गई है जिससे डरा जाना चाहिये? क्या किसी जानलेवा जहरदार कीट-पतंगे ने उसे काट लिया है? ...क्या बच्चे का जीवन संकट भरी घड़ी से गुजर रहा है??

अब उसकी हिम्मत कुछ-कुछ डिगने लगी है। घर पर पत्नी नन्ही बच्ची के साथ अकेली होगी। निरपत मूलचंदानी के इस विवश जीवन पर उसका विस्थापित मन कभी-कभी चुपचाप रो उठता है; बिल्कुल वैसे ही जैसे गली के वे छोटे बच्चे उसकी कौम पर जब-तब हँस उठते हैं। अब हताशा ने देह को ऐसा जकड़ लिया है कि पैडल पर जोर नहीं पड़ता। साइकिल रुकने-डगमगाने लगी। पीछे बैठा बच्चा घबराया,

''बाबा!!''

यह आवाज क्षण भर में निरपत को वर्तमान में लौटा लाई। साईकिल पुनः गति में है। सामने जुगनुओं-सी झिलमिल शाम है। जंगल का सौन्दर्य नीले पड़ते प्रकाश में दमकता है। सुषमा सुंदरी का कत्थई-हरा जोड़ा अद्भुत इत्र से महकता है जो वनस्पतियों, धरती, हवा और माहौल के अनुछुएपन से, उसके प्रेमी जंगल ने उसके लिए बनाया है। कितनी आवाजें इस माहौल में रची है—क्या सियार? घुग्घू? या कि...या कि कोई जिन्न? प्रेत? भूत? जिन हवाओं को सिर्फ हवायें समझा हमेशा; वे आज नाम

धारण कर-कर क्यों जहन में घूम उठी है? नही! नहीं—नहीं होता भूत जैसा कुछ! ...और अगर! —और अगर! —अपने मन के अस्पष्ट भय को साफ उत्तर दिया बच्चे के पिता ने—अगर होता है भी एकसा कुछ; और सामने आ ही गया तो लड़ेगा वो! ...दुबले-नाटे, पीपल के पत्ते सरीखी देहवाले पिता का मनोबल पहाड़ हुआ तो खूंखर जंगल किसी नन्हें, शरारती बच्चे-सा चहक कर डराने-दुबकने लगा।

कब से साईकिल चला रहा है निरपत। गहराती संध्या कालरात्रि-सी प्रतीत होती है। बादलों ने अभी फुहार-फुहार बरसना ही शुरू किया है और अरसे से तपी-झुलसी-रूठी धरती अभी आसमान के इस प्यार को अस्वीकार करती बूँदों को भाप बनाकर लौटा रही है। धरती आसमान के बीच मिट्टी से उठती सौंधी खुशबू नये-नये प्यार की तरह महकना अभी शुरू ही हो रही है; ...लेकिन इतने से भी उसे बड़ी हिम्मत मिली है। वर्षा होने लगती है तो सब जानवर अपनी-अपनी खोहों में लौट जाते हैं—क्या लट्ठमार डाकू भी?—और भूत भी? अपने भय को खारिज करने को कोई ओट तो चाहिये; और ईश्वर से बड़ी कोई ओट इंसान ने अब तक रची नहीं। अभी बजा ही क्या है; निरपत कलाई पर बंधी घड़ी में समय देखने को आँखें सिकोड़ता है।

सुलक्षणा कहती है, पीपल वाले महादेव सदा उसकी रक्षा करते हैं, जब भी वो सच्ची आत्मा से प्रार्थना करती है। उसकी बातों पर निरपत हँसता है, ''चल, इस पराये देश में कोई तो तेरा रिश्तेदार निकला!'' ...इस बे—वक्त न जाने क्यों निरपत को सुलक्षणा की बात याद आ रही है?

गाँव आ गया। इधर को बादल तो हैं पर पानी बूँद भर भी नहीं बरसा है अब तक। बाजार की दुकानें सब बंद हो चुकीं। इक्के-दुक्के ठेलों-खोमचेवालों ने लालटेनें-चिमनियाँ जला रखी हैं। उधर ऊँचे लक्ष्मीनारायण मंदिर से आती रोशनी की आभा में नीचे का ये बाजार धुँधला रोशन है। निरपत में साइकिल चलाने की अब और शक्ति शेष नहीं। पैदल साइकिल को धकेलते चलने में भी वो हाँफ रहा है। साथ में बच्चा है जो एकदम चुप है।

''बहुत दुख रहा है भइया?''

''हाँ।'' बच्चा सिसकता है।

निरपत को सच्चा अफसोस हुआ; नाहक डाँट-डपटकर चुप करा दिया बेचारे को। रोने से तो मन बहलता ही।

''कलाकंद खाना है?''

''हाँआँ!'' —उस कष्ट में भी उसकी आवाज में चहक आ गई; लेकिन वो मुस्कुरा नहीं पाया। गाल सूजकर तन गया है। निरपत ने ठेले से कलाकंद का दोना लेकर बेटे को दिया। दीपू मनपसंद मिठाई पाकर पल को अपना कष्ट भूल गया; लेकिन अब उससे ठीक से खाते नहीं बन रहा है। मुँह टेड़ा करके जैसे—तैसे खोल पा रहा है वो। कुछ कलाकंद मुँह में जा रहा है, कुछ बाहर गिर रहा है। ''आठ दोने कलाकंद बाँध दो और दो दोने यहीं खाने को दे दो।

कष्ट से कलाकंद खा रहे अपने बेटे को देख न जाने क्या-क्या सोच रहे पिता के कानों में एक परिचित आवाज आ कर टकराई और उसे हकीकत में वापिस ले आई।

''अरे अजीम!''

''निरपत! तुम्हारी दुकान से ही तो चला आ रहा हूँ। पता चला तुम दोपहर बाद दुकान बढ़ा के, बेटे के साथ शहर की तरफ को चले गये थे??''

''हाँ, वो दीपू को डॉक्टर से दिखाना था।

''क्या हुआ इसे?'' अजीम बच्चे पर गौर करता है।

अजीम डोडा-चूरा की खेती करता था। आदमी बड़ा लहीम-शहीम, बड़ा कद्दावर, बड़ा दिलदार! था तो पठान लेकिन नाम के आगे मुलतानी लिखता था। उसका परिवार पहले कभी यहाँ मुलतान से आ बसा था। वो मुलतानी मिट्टी से विस्थापित, ये सिंध की धरती स निकाल फेंका गया—यों दिल की जमीन पर दोनों एक-दूसरे को आसपास पाते थे। अगर मूलचंदानी वहाँ किसी की बात पर सचमुच भरोसा करता था तो वो सिर्फ और सिर्फ एक मुलतानी ही था। जब कभी वो बड़े गाँव आता, उसकी दुकान पर जरूर होता जाता।

''पता नहीं। ये फोड़ा उठ रहा है दिन से तो अब बढ़कर...''

निरपत की बात दोस्त के तेज चौंकने में दब गई,

''ये तो ज़हरबाद है!!''

''ज़हरबाद?''

''लगता है तुम लोगों ने पहले ख्याल नहीं किया वर्ना एक छोटा-सा फोड़ा तो पहले जरूर उठा होगा। ये इतना सुर्ख कब से हुआ?'' उसके चेहरे का सख्त अफसोस देख निरपत के होश उड़ गये।

''तब तो ये जहरबाद का सबसे आखिरी मुकाम है। इस मुकाम पर दिन-दो दिन के अंदर इलाज न मिले तो...''

''तो?''

''तब बच्चे की जान को खतरा होगा।''

इतना सुनना था कि निरपत लड़खड़ा गया। पठान ने उसे सम्हाला,

''फिकर न करो। अभी वक्त है हाथ में।''

''क्या है हाथ में?'' बच्चे का पिता हतबुद्धि-सा होकर शब्दों को पकड़ने की कोशिश करने लगा।

''सब्र रखो सबसे पहले तो! ऐसे हौसला छोड़ते हो तो बच्चे को मुझे दे दो; मैं अपने साथ लिये जाता हूँ।'' पठान ने हँसकर दोस्त का कंधा ठोका।

''नहीं; कहो तुम क्या कहते थे।''

दोस्त की आवाज साँसों और चेहरे के रंग से दोस्त समझ गया कि बच्चे से ज्यादा पिता कष्ट में है।

''मगरिब में, शायद यहाँ से पाँचेक मील आगे होगा। एक गाँव है खिलचीपुर। वहाँ जहरबाद को ठीक करते हैं—एकदम शर्तिया!''

''खिलचीपुर??'' निरपत चौंकता है। उस गाँव में कई एक स्थायी ग्राहक भी होंगे उसके।

''क्या खिलचीपुर में ऐसे डॉक्टर भी रहते हैं?''

''डॉक्टर नहीं, झाड़फूंक करने वाले। इलाज होता है जड़ी से। सबेरे के चार बजे ही लड़के को ले के निकल जाना। छह-सात बजे तक पहुँच जाओगे। फिकर न करो; मालिक ने चाहा तो बच्चा एक ही बार के इलाज से हँसता-खेलता घर लौटेगा।''

पस्त, परेशानहाल बाप-बेटे घर पहुँचे तो गृहणी देहरी पर खड़ी, राह तकती मिली। पड़ोस की शीतला काकी भी उसके बराबर खड़ी मिलीं—उसकी पीठ पर हाथ धरे, दिलासे के शब्द कहतीं।

इन दोनों को आता देख काकी ने डॉक्टर पूछा,

''निरपत, कहाँ थे? कुछ खबर है, बहू कित्ती परेशान हो रही है दिन ढले से?''

''सबेरे मुँह अंधेरे खिलचीपुर को निकलना है। इतना ही कह सका वो। गृहणी को तो एकदम से समझ नहीं आई बात लेकिन काकी ने स्थिति की गंभीरता पूरी तरह से समझ ली।

''चिंता न करना बेटा; पीपल वाले महादेव रक्षा करेंगे हमारे दीपू की।''

निरपत कुछ कहता लेकिन रुंधे गले से कुछ कहते न बना; और वो चुपचाप भीतर जाकर कपड़े बदलने लगा। बच्चा वहीं माँ-काकी के पास रुक गया; और अपने अति कष्ट भरे मुँह से जितना बोल सकता था, सब विपत्ति उसने कह सुनाई।

''ओ मेरे दीपू!''—दीपू की माँ चीख मारकर वहीं देहरी पर बैठ गई। वो देर तक रोने—बिलखने को तैयार दिखती थी लेकिन काकी ने जो फटकारा उसे,

''असगुन के आँसू? बालक आँखों के आगे है, सही-सलामत है। और उस स्थान पे तो शर्तिया तोड़ है जहरबाद का। अब ये विलाप बंद करो बहू। देखो, बिचारा बालक गीले कपड़ो में खड़ा है। भीतर लिवा ले जाओ और इसके कपड़े बदलो। कुछ खिलाओ-पिलाओ। माँ होना कोई बच्चों का खेल नहीं कि तनिक कष्ट में जान छोड़कर रो दिये। जे तो परमात्मा होने जितना कठिन करम है!''

भीतर खाट पर लेटा, अंधेरी छत ताकता निरपत इन शब्दों को सुन रहा है। ...आज माँ जिन्दा होती तो इससे अलग कोई बात न कही होती उसने भी!

रात तिल-तिल आगे सरक रही है। बच्चे को किसी तरह नींद नहीं आती। माँ सब जतन कर हार गई। अब पिता ने बच्चे को बहलाने की कोशिश में वही एकमात्र कहानी सुनाना शूरू की जो—बच्चे का तो पता नहीं—पर उसे बहुत पसंद थी। बिल्कुल अपने पिता की सी आवाज में ये पिता दोहरा रहा है,

''सिंध में हम राजा के जैसी हैसियत रखते थे। सिंध हमारा है तभी तो हम सिंधी कहलाते हैं। हम उस मिट्टी के बच्चे हैं,वहाँ के सबसे पुराने बाशिन्दे...!''

आज भी निरपत की नींद लग गई ये कहानी सुनाते-सुनाते। ...कहानी है कि लोरी?

तड़के तीन बजे वो बिस्तर से उठ खड़ा हुआ। बच्चे की माँ न जाने खड़के से जागी, या रात भर सोई ही नहीं!

देवस्थान जाना है तो स्नान पहली शर्त है। कष्ट में सोये बच्चे को भी जबरन नहलाया दोनों ने मिलकर। उसका गाल पूरी तरह पक चुके फल की तरह सुर्ख और तना हुआ है।

कपड़े की पोटली में पाथेय बाँध दिया गृहिणी ने। साईकिल से जा रहे बाप-बेटे को देखती वो देहरी पर आ खड़ी हुई है। घनघोर घटाओं से घिरते जा रहे आसमान को देख उसने प्रार्थना में दोनों हाथ जोड़ लिये—''जब तक दीपू के बाबा लौट नहीं आते, मेरा निर्जला व्रत है। तब तक बरसना नहीं है देव।''

...सामने से आँखें मीड़तीं शीतला काकी चली आ रही है,

''बहू, जब तक निरपत और दीपू लौट नहीं आते, मैं यहीं हूँ।''

निरपत क्या कहे, कुछ सूझता नहीं। काकी उसकी कृतज्ञता की झेंप को दूर करती हैं,

''अरे, विपत्ति में नई बहू-बिटिया को अकेला नहीं छोड़ते।''

''हम दिन ढले तक लौट आयेंगे।''

''राम भला करें तुम्हारा।''

निरपत घण्टे भर से पश्चिम दिशा में साइकिल चला रहा है। गाँव आया नहीं अब तक कोई भी? बरसों पहले, एक-आध बार इस तरफ को आया तो है वो, ऐसी पहचानी-सी राह जान पड़ रही है; शायद आसपास के किसी गाँव या खिलचीपुर ही आया हो कभी। फिर पठान ने दिशा तो बताई थी; रास्ता सही तो है? भटक गया क्या? अधपगलाया दिल घबराया। अब इस बियाबान में पूछे तो किससे? ओ सुलक्षणा, अपने रिश्तेदार भगवान से कहो कि मदद भेजे। तुम्हारे इस बेहोश बच्चे को लेकर अब मैं जाऊँ तो जाऊँ कहाँ?

मन-ही-मन रुँआसा निरपत साइकिल से उतरकर पैदल चलने लगा है। अलसभोर के कच्चे उजाले में चिड़ियों की चह-चह ऐसे घुल उठी है जैसे नई बहू के घुंघरु ससुराल के सूने आँगन को गुँजाते हैं पगडंडी पर सिर धरे सोया दिन जागने के प्रयास में बोझिल पलकें झपका रहा है। रात ने अपना व्यापार समेटा तो है पर अब तक विदा नहीं हुई। अचानक एक पथिक आता दिखाई देता है। लगता है, इधर को ही चला आ रहा है। बहुत ऊँचा, तगड़ा और सुर्ख काला पुरुष जैसे कोई देव! निरपत के ग्राहक उसे कितने मिथक-किस्से सुनाते हैं—आँखों देखी वारदात होने के दावे के साथ! सूनी दोपहरों और अंधेरे-उजाले में प्रेत आत्मायें मनुष्य का रूप धर, रास्तों से भटकाती हैं राहगीरों को।

कलेजा मजबूत कर बच्चे का पिता पूछता है,

''भाईसाहब, खिलचीपुर का रास्ता किधर से है?''

''खिलचीपुर? सीधे ही चले जाओ भइया। बच्चे को झड़वाने लिए जाते हो? लगता है बिल्कुल ही अंत समय निकले हो घर से।''

ये सुनना था कि निरपत की आँखों में आँसू उतर आये। दुनिया इस रोग को पहचानती है, इसकी वीभत्सता से परिचित है; बस वही एक मूर्ख है जो अब जान पाया है।

''रोते हुए जा रहे हो भइया; हँसते हुए लौटोगे। स्थान का प्रताप ही कुछ ऐसा है।''

बच्चे के सिर पर हाथ फेर, अजनबी ने अपनी राह ली। पल को निरपत दंग खड़ा रह गया; फिर साइकिल के पैडल पर अपनी कुल ताकत डाली।

खिलचीपुर पहुँचते-पहुँचते दिन चमकीला हो उठा। उस स्थान का पता पूछने की जरूरत नहीं पड़ी। सूजे चेहरे वाले बेहोश बच्चे और उसके घबराये पिता को देख लोग खुद-ब-खुद इंगित कर देते गंतव्य वीथिका की ओर।

गाँव के उस छोर पर आम रास्ते के किनारे दो झोपड़ियाँ और नीम तले एक पक्का चबूतरे पर कोई प्रतिमा न थी और बंद झोपड़ियों के आसपास गृहस्थी का कोई सामान न दिदखाई पड़ता था सिवाय उन दो भरे, ठंडे मटकों के जो राहगीरों के लिए रखे गये थे।

निरपत मूलचंदानी ने जब ये सब देखा तो उसे अपने दिल में बड़ी निराशा हुई; पर ये आखिरी उम्मीद है। उसने पलटकर उन लड़के-बच्चों की तरफ देखा जो तमाशबीन दिखते थे।

''जो झाड़फूँक करते हैं जहरबाद की, वे सिद्ध... ?''

''वे सिद्ध? ?''

''हाँ! हाँ! वे ही!!''

''उनको परलोक सिधारे तो बरस हुआ।

''क्या? ?''

''आधी बात कहके चुप हो गया बदमाश! नहीं जी, ये आपको बनाता है!'' एक दूसरा चतुर दिखता लड़का आगे आया।

''तो वो मरे नहीं है ना?''

''नहीं वे तो नहीं रहे अब; पर आपका काम हो जायेगा जी।''

''माने? ?''—निरपत मूलचंदानी को पल को लगा, ये भी गलियों के छोटे बच्चों का वही झुंड है जो स्थानीय हवा की अस्वीकृति को जब-तब जता ही देता है,

''सिंधी माडू! सिंधी माडू!! ...सिंधी माडू!!!''

वो चुप रह गया; बस चुप!

''पूरी बात क्यों नहीं बताता इन्हें? चुहल सूझती है तुझे भी हर कहीं; चाहे कोई मर ही क्यों न रहा हो?''

एक तीसरा चतुर लड़का बढ़-बढ़ के कह रहा है। निपत मूलचंदानी सब तरह से निरीह होकर अब बस ताक रहा है इन लड़कों को।

''अब उनका बेटा झाड़ता है। जब से सिद्धि उनके हाथ में आई है, वे सिद्ध कहाने लगे हैं।''

निरपत के प्राणों में प्राण लौटे, ''तो उनका वो बेटा मतलब वे सिद्ध कहाँ हैं अभी?''

''वे तो जंगल निकल गये। ग्वाला हैं ना; गाँव वालों के ढोर-डंगर चराते हैं।''

''तो मैं उन्हें ढूँढ़ने अब कहाँ जाऊँ बच्चे की हालत देखिये, कहीं देर न हो जाये! बतायें किधर को जाना है? क्या जंगल का रास्ता यही है? तब तक मेरे इस बालक को देखते रहियेगा''

बेसुध बच्चे को नीम तले चबूतरे पर लिटाकर उसका हाल-बेहाल पिता उन अपरिचित तरुणों के भरोसे है अब।

''आप तो बड़े गाँव वाले 'मूलचंदानी बर्तनवाला' हैं ना? आपकी दुकान की तो बड़ी प्रसिद्धि है जी!''

''हाँ! हाँ! मैं वही हूँ!'' क्या सिर्फ धंधा ही किया या कि इस धरती की, यहाँ के वासियों की कुछ सेवा भी हो गई है मूलचंदानी बर्तनवाला के कर्म से?

एक लड़का कह रहा है, ''मेरी बुआ की लड़की के ब्याह में दायजे के सब बर्तन आप ही की दुकान से उठाये थे। जीजी की ससुराल के गाँव में सब हमसे आपकी दुकान का पता पूछ रहे थे। आप बैठो जी। सिद्ध को हम लिवाये लाते हैं।''

अजनबी लड़के जंगल की ओर दौड़ गये। धूल भरी राह पर निरपत बेचैनी से टहलता है। खाली आसमान की ओर ताकता है फिर खेतों की ओर को, उस अज्ञात राह की तरफ जिधर से किसी देवदूत सरीखे का आना बहुत प्रचारित हो चुका उसके दिलो-दिमाग में। सिद्ध आये क्यों नहीं अब तक; क्या लौट जाये और डॉक्टर के ही पास चले फिर? ? पिता बेटे गाल को छूकर देखता है—जैसे प्रचंड आग पर हाथ रख दिया हो! अब लौटने का समय बचा कहाँ है? निरपत माथे पर हाथ टेककर बैठ जाता है। फिर राह तकता है। अब तक जो कर रहा था, अपने प्रयासों के भरोसे कर रहा था; अब आगे न प्रयास दिखते हैं, न मोहलत

—अब? ?

गला सूखता है। वह उठकर मटके से पानी निकालकर पीता है। मीठे पानी की ठंडक अपनी पूरी तरावट में उसके प्यासे गले से भीतर उतरती जाती है। सामने से वे चले आ रहे हैं सिद्ध।

सिद्ध को देख निरपत को उससे भी ज्यादा निराशा हुई जितनी इस स्थान को देखकर हुई थी। वो बीस-बाईस साल का, एक साधारण ग्रामीण युवक दिखता था। घुटनों तक धोती, बदन पर मटमैली बंडी, कंधे पर गमछा, हाथ में लाठी और पैरों में कुछ नहीं। ये उपचार करेगा मेरे बच्चे का? पर उसका डूबता दिल आशा की अंतिम डोर को मजबूती से थामे है; हो सकता है यहाँ भी कुछ चमत्कार जैसा हो, ...वैद्य जी तो कहते हैं, भारत भूमि का कौन पौधा है जो उपयोगी जड़ी न हो! और इस स्थान की जो इतनी प्रसिद्धि है, उसका भी तो कुछ-न-कुछ कारण होगा कि नहीं? निरपत अपनी अ-श्रद्धा को भरसक दबाये, होशो-हवास बनाये रखने की पूरी-पूरी कोशिश कर रहा है। दूर कहीं से जैसे श्मशान की उसी उन्मत्त योगिनी कुँजड़ी के कहे शब्द यहाँ तक पीछे-पीछे चले आये हैं—साक्षात् मौत!

चबूतरे पर बेसुध पड़े बच्चे का आधा चेहरा सूजकर अंगारा हो चुका है और प्राण बचाने की सब कोशिशों में ये अंतिम क्षण है। वो चीखा नहीं, रोया नहीं, बस जेब से रूमाल निकालकर पसीना पोंछने लगा। निरपत को डर है, कहीं उसकी मन:स्थिति

को सिद्ध भाँप न लें; लेकिन सिद्ध के पास तो आधे पल की भी फुर्सत नहीं उसकी ओर देखने की। साधक ने अपने गमछे की गाँठ खोलकर उसमें से कुछ मिट्टी—जो किसी बाँबी की प्रतीत होती थी—और जड़ों के कुछ टुकड़े निकाले जो शायद पीड़ित के आने का समाचार पाकर ही जुटाये गये लगते हैं।

सिद्ध ने पत्ते, जड़ के टुकड़े और वो मिट्टी पीसकर सूजे चेहरे पर लेप कर दिया है। अब अपनी बंडी की जेब में से एक अलग जड़ी निकाली है और मिट्टी में पीसकर बेसुध बालक को पिलाने लगे हैं। वे साथ-ही-साथ कोई मंत्र पढ़ते जाते हैं।

मंत्रोच्चार के बीच क्षण को रुककर उन्होंने निरपत को देखा,

''ये बेसुध नहीं है सो रहा है। अभी जाग जायेगा; और स्थान पर आये हो तो अब भरोसा करो।''

निरपत चौंका, कुछ डरा भी... फिर उसके मन में श्रद्धा जैसे कुछ सकारात्मक उगने लगा, अपनेआप।

''नीम पर चढ़ जाओ और एक झोंटा तोड़ लाओ।''

''पर मैं? मैं इतना नाटा-दुबला; फिर पेड़ पर कभी चढ़ा भी नहीं हूँ।''

''झोंटा तो तुम्हें ही तोड़कर लाना पड़ेगा तभी कृपा होगी। परिवार का कोई जन साथ न हो तो स्थान के सेवक ही पीड़ित का परिवार हैं; पर अभी तुम साथ आये हो, तो हमारे हाथ का न स्वीकारेंगे वे।''

निरपत पेड़ पर चढ़ने की कोशिश करने लगता है। उछलता है, गिरता है, फिर उछलता है और फिर गिरता है। सब लड़के दूर खड़े ताकते हैं। मदद को कोई आगे नहीं बढ़ता; लेकिन कोई उसके प्रयासों की असफलता पर हँसता भी नहीं। सब तरुण चेहरे इस समय मूर्तियों की तरह भावहीन हैं। ...क्या ये इस स्थान का भय है??

दो... चार... आठ फिर दस प्रयास; और अंततः निरपत पेड़ पर चढ़ गया। झोंटा तोड़ा और उतरने में, धूल में आ गिरा। चोट लगी। सब देह धूल-धूल हो उठी; पर इस समय उसे अपना होश कहाँ? झोंटा उठाकर सिद्ध को दिया और आप कुछ दूर आ बैठा।

''अपने इष्ट देव को सिमरो। वे स्थान पर आयें और बच्चे के जीवन की रक्षा करें।''

इष्टदेव?—निरपत मूचंदानी के इष्टदेव कहाँ हैं?...क्या उस महान सिंध भूमि में जहाँ की स्मृति अब कल्पना प्रतीत होती है?...क्या अजमेर के रिश्तेदारों के घरों में लगी तस्वीरों में?...क्या मंदसौर के उस किराये के कमरे में जहाँ माँ-पिताजी ने अपने आखिरी साँसें लीं?...क्या मुहल्ले के पीपल वाले महादेव को?...या उसकी दुकान के सामने, सड़क पार बने उस ऊँचे लक्ष्मीनारायण मंदिर में, जिनकी तरफ 'मूलचंदानी बर्तन वाला' की निरापद दृष्टि दिन में सैंकड़ों बार जाती है; जिन्हें लाखों बार देखा बिना किसी अपनत्व के, वे प्रतिमायें कब उसकी इष्ट हो गयीं, उसे पता भी नहीं चला।...क्या ईश्वर भी साहचर्य से जनित कल्पना है कोई?

सिद्ध झोंटे से बच्चे को झाड़ते जाते हैं और होठों में मंत्र बुदबुदाते जाते हैं। आसमान में मेघ थमे हैं जैसे किसी अटूट प्यासे ने उन्हें अपने अदृश्य बंधन में बांध रखा है।

बच्चा झोंटे के स्पर्श से अब जागता जा रहा है। निरपत को एकाएक पत्नी और बच्ची का ध्यान आता है; पर उसे उनकी चिन्ता करने की जरूरत नहीं, शीतला काकी उनके साथ होंगी।...अब निरपत ने अपने सामने खड़े अपरिचित तरुण लड़कों पर नजर डाली है—वो इस इलाके का प्रतिष्ठित स्थानीय व्यापारी है।

और अब नीम के झोंटे की झाड़-फूँक के बीच उसने अपने दीपू के चेहरे को बहुत-बहुत गौर से देखा है।

क्या बच्चे के चेहरे से सूजन उतर रही है?...क्या पिता निरपत के दिल की दीवारों पर से भी?

○○○

रिज

ज्ञानप्रकाश विवेक

दरख्तों की बात और है। वो बारिश का अपनी बाहें खोलकर अभिवादन करते हैं। पत्तों पर पानी गिरता है। कुछ पल रूकता है। कुछ पल का बेशकीमती सान्निध्य! फिर पानी जमीन की तरफ चला जाता है। पृथ्वी की यही तो खूबी है वो सबको शरण देती है। बारिश की बून्द, आकाश से टूटा सितारा, किसी बूढ़े बंजारे की थकी देह, नन्हें बच्चे का घुटनों के बल चलना देखकर पृथ्वी खिल उठती है। तब, पृथ्वी माँ बन जाती है।

तीसरे दिन की यह पहली सुबह है जो उसे अच्छी लग रही है। चन्दर सेठ रिज के खाली बेंच पर बैठा है। हल्की-हल्की बारिश हो रही है।

सुबह का वक्त है। भीड़ बिल्कुल भी नहीं। पहाड़ धुंधले-से दिखाई देते हैं। आसमान बादलों से भरा हुआ। और बादल किसी अनाम यात्रा पर। आसमान को देखते रहो तो ऐसे लगता है जैसे बादल 'आइस-पाइस' खेल रहे हों।

कम लोग हैं जो आ-जा रहे हैं, हाथों में छतरियाँ थामे। रिज साफ है। सड़क चमकीली। कहीं-कहीं पानी रूका हुआ। अभी दुकानें बंद हैं। गुफा रेस्तरां भी बंद और डाकखाना भी।

रिज के खाली बेंच पर भीगना, बारिश, बादल और धुंध को देखना किसी कहानी का चित्र हो जैसे। बचपन में भीगने के कितने सारे अनुभव थे। वो बड़ा होता गया पुराने रोमांचक अनुभव स्मृतियों में बदलते गए। बारिश में निकल पड़ना, कपड़ों का भीग जाना और माँ की फटकार उसे सब अन्दर। जैसे कोई पुराना बादल उसके दिल के किसी कोने में बरस पड़ा हो।

फिर एक वक्त ऐसा आया जब उसकी बचपन की यादों पर, ज़िंदगी का बीजगणित, लोहे के जूते पहन कर चहल कदमी करने लगा।

जैसे जैसे वो बड़ा होता गया, बारिशों से उसका रिश्ता न सिर्फ टूटता गया बल्कि बारिश, बादल, पानी की बौच्छारों से डरने लगा।

आज अचानक उसे बारिश में, रिज के खाली हरे बेंच पर बैठना अच्छा लग रहा है। मोबाईल और पर्स उसने पन्नी में जपेटकर जेब में रख लिए हैं।

बारिश में भीगते हुए उसे लग रहा है जैसे वो खुद बारिश का पानी हो गया हो या फिर बादल का कोई टुकड़ा उसकी जेब में आ गिरा हो।

रिज खाली है। वो जिस बेंच पर बैठा है वो भी खाली। उसे पहली बार महसूस हुआ है अकेले आदमी को हर शय अकेली, अपनी निर्जनता के साथ खड़ी महसूस होती है।

सम्पर्क: 1875 सेक्टर–6, बहादुर गढ़–124507, हरियाणा
मो. 09813491654, gyanpvivek@gmail.com

वो भीग चुका है और लोहे का हरा बेंच भी। बारिश की बून्दें बेंच पर बिखरी पड़ी हैं जैसे कई सारे मुसाफिर किसी अनाम रेलगाड़ी का इंतजार कर रहे हों। रिज है कि कोई मुसाफिरखाना, जिसकी छत आसमान है।

चन्दर सेठ इस नुक्कड़ को देख रहा है। कल यहां एक मोची बैठा था—सिकुड़ा, सिमटा, थोड़ी-सी जगह को घेरे हुए। वो जब किसी जूते की तुरपाई करता तो ऐसे लगता जैसे ध्यान की अवस्था में पहुँच गया हो।

कल रिज भरा-भरा-सा। सबके सब जोश में। उल्लास में। खुशी में। पिकनिक के मूड में। दुकानदारों के चेहरे पर सौदागरों जैसी जड़ता और अहंकार। सब खुश नजर आते थे लेकिन मोची उदास नजर आता था।

थोड़ा पीछे परमार साहब की प्रतिमा थी। जिन्होंने प्रदेश को तरक्की का रास्ता दिखाया। सामने महात्मा गांधी की मूर्ती। लंगोटी और लुकाठी लिए चुप खड़े, कुछ परेशान-से नजर आते हैं। समाज ने जो नए जीवन मूल्य बनाए हैं। शायद वो उनसे विचलित हों।

दरख्तों की बात और है। वो बारिश का अपनी बाहें खोलकर अभिवादन करते हैं। पत्तों पर पानी गिरता है। कुछ पल रूकता है। कुछ पल का बेशकीमती सान्निध्य! फिर पानी जमीन की तरफ चला जाता है। पृथ्वी की यही तो खूबी है वो सबको शरण देती है। बारिश की बून्द, आकाश से टूटा सितारा, किसी बूढ़े बंजारे की थकी देह, नन्हें बच्चे का घुटनों के बल चलना देखकर पृथ्वी खिल उठती है। तब, पृथ्वी माँ बन जाती है।

चन्दर सेठ को थोड़ा ठण्ड का अहसास हो रहा है बेशक, वो इस खामोश-खामोश और बारिश में भीगती हुई खाली-खाली-सी रिज को छोड़कर नहीं जाना चाहता।

एक चमत्कार-सा हुआ है। सामने से एक चायवाला आ रहा है। गरीब पहाड़ी छोकरा। हवाई चप्पल पैरों में डाले। वो लगभग भीग चुका है। जस्ती की केतली और तीन चार थर्मोकोल के कप उसके हाथ में है। उसने कंपकपाती आवाज में चाय का पूछा है। चन्दर सेठ ने 'हाँ' कहकर सिर हिलाया है। चाय का भरा थर्मोकोल का कप चन्दर सेठ के हाथ में है। उसने एक घूंट भरा है। चाय गर्म है और अच्छी।

''जनाब कैसी है चाय?'' पहाड़ी लड़के ने लरजती सी आवाज में पूछा है।

''बहुत अच्छी है। कितने पैसे हुए?''

''दस रुपये सॉब। मैंने खुद बनाई है। दालचीनी भी डाली है। और सॉब एक तुलसी का पत्ता भी डाल दिया था मैंने।''

दस का नोट देकर चन्दर सेठ ने चाय का घूंट भरा है। चाय सचमुच अच्छी है। ऐसी बारिश में कोई चाय देने चला आए-भीगते हुए। कंपकपाते हुए।

दस का थोड़ा भीगा हुआ एक और नोट निकालकर चन्दर सेठ ने पहाड़ी लड़के को देते हुए कहा है, ''इतनी अच्छी चाय के बीस रुपये तो होने ही चाहिए।''

पहाड़ी लड़के ने दस का नोट जेब में रखते हुए सलाम जैसा किया है। मुस्कुराया है। बड़ी मासूमियत से उसने कहा है, ''जनाब, आप भीग गए हैं। कप में थोड़ी-सी और चाय ले लीजिए।''

''बस, इतनी बहुत है। तुम बारिश में चाय पिलाने आए, तुम्हारी मेहरबानी।'' चन्दर ने कहा।

लड़का मुस्कुराया है। माथे पर पानी की बूँदों को उँगली से निचोड़ते हुए, उसने इधर-उधर देखा फिर चला गया।

चन्दर सेठ ने चाय के दो-चार घूंट भरे हैं। वो यहां दो दिन से हैं। उसे एक बात निरंतर महसूस होती रही है कि पहाड़ अकेले आदमी को और ज्यादा अकेला कर देते हैं। काश, उसके साथ उसकी पत्नी पूनम होती। लेकिन वो तो घर छोड़कर जा चुकी है। चन्दर सेठ की प्रॉपर्टी डीलिंग ने, पति-पत्नी के रिश्ते को भी एक 'डील' में बदल कर रख दिया था।

चन्दर सेठ अपने दफ्तर में व्यस्त तो घर आकर भी अपने चारों मोबाइल फोन मेज पर रखता। कभी इस मोबाइल से फोन तो कभी दूसर-तीसरे मोबाइल की घंटी का बज उठना। चन्दर बड़े इत्मीनान से बात करता रहता। वक्त गुजरता रहता।

पूनम के लिए उसके कुछ बेशकीमती लफ्ज बचाकर रखे थे। ''आई एम सॉरी पूनम। कुछ बिजी हो गया। एक इम्पोर्टेंट डील थी। डिनर एक क्लाइंट के साथ। सॉरी पूनम! यू आर माई लव! तुम मेरी हो पूनम...मेरा प्रेम।''

खाली डिब्बे की तरह बजते ये लफ्ज, ये वाक्य, पूनम में चिढ़ पैदा करते। वो तिलमिला जाती। उसे लगता उसका पति सिर्फ टेलीफोन नम्बरों की डायरी है।

उसकी चार टेलीफोन नम्बरों की डायरियों में से दो गुम हो। वो जरूरी थीं। इनके जरिए वो डीलिंग करता था। कई दिन तक चन्दर ढूंढता रहा। लेकिन डायरियाँ नहीं मिलीं। वो बेचैन हो उठा। उसने कई बार पूनम से पूछा। वो हर बार एक-सा जवाब देती कि उसे पता नहीं। पहले तो उसे शक हुआ फिर शक यकीन में बदल गया कि डायरियाँ पूनम ने ही कहीं छुपाई हैं। पूनम इस आरोप पर भड़क उठी। वो पहले ही चन्दर सेठ के रोजनामचे से चिढ़ी हुई थी। जब डायरियाँ चुराने का आरोप लगा तो उसे बहुत बुरा लगा। पूनम ने न लड़ाई की न तकरार, एक चुप-सी साध ली।

चन्दर भी कहां कम था। दोनों तरफ से चुप। दोनों तरफ से संवादहीनता। एक छत के नीचे दो शख्स। दोनों चुप। घर की दीवारों के कलैंडर फड़फड़ाते तो कुछ आवाज-सी होती। इसके अलावा अटूट खामोशी।

एक घटना घटी। चन्दर सेठ को दोनों डायरियां मिल गई। डायरियां उसकी अपनी अलमारी में थीं।

वो कुर्सी पर बैठा रहा। दोनों गुमशुदा डायरियां मेज पर थीं। उसे शर्मसार होना चाहिए था। वो शर्मसार नहीं था। उसे गलती का अहसास भी नहीं हुआ था। जिसे गलती का अहसास तक नहीं था वो शख्स पूनम से खेद व्यक्त कैसे करता?

ये आसमान था जो पृथ्वी पर कहीं झुकता दिखाई देता है। चन्दर सेठ तो मर्द था जिसे झुकना नहीं आता था।

मुद्दत गुजर गई। दोनों चुप। एक घर में जैसे फर्श चुप। जैसे छत चुप। वैसे वो दोनों चुप।

रिश्तों की यह चुप जंगल के सन्नाटे में बदल गई। यह चुप टूटी तो ऐसे लगा जैसे हजारों कप-प्लेट फर्श पर गिर पड़े हों।

पूनम ने कातर स्वर में चन्दर से कहा कि वो इस घर से चली जाएगी।

पूनम को मनाने के ये बहुत कीमती क्षण थे जिसे चन्दर ने गंवा दिए। वो किसी पत्थर के बुत-सा खड़ा रहा। पूनम अटैची केस में कपड़े रखती। रूक जाती। वो इंतजार करती कि चन्दर आए और उसे रोक ले। एक तरफ एक स्त्री का आत्मसम्मान था तो दूसरी तरफ पुरुषोचित अहंकार।

अटैची बंद करके पूनम खड़ी रही—चेहरे पर उदासी। आँखों में नमी। पांव शिथिल। दिल में अजीब-सी कशमकश।

खूबसूरत पूनम आज क्लांत और गमजदा लग रही थी। शादी के छः साल। इस घर की छत के नीचे। आज वो घर छोड़ रही थी। चन्दर चुप खड़ा था।

एक रिश्ते का अन्त हो रहा था। बातें बड़ी नहीं थीं। लेकिन बातें बड़ी बना दी गई थीं।

कंधे पर बैग लटकाए, हाथ में अटैची थामे पूनम घर से जा रही थी। चन्दर उसे जाते हुए देख रहा था।

पूनम ने ओला कैब ली। बैठकर चली गई।

घर में चन्दर रह गया अकेला। वो कुर्सी पर बैठता। सामने चार डायरियाँ होती। चार मोबाइल होते। क्लाइंटों से बातचीत होती।

ऐसे लगता कोई रोबोट फोन सुनता है। जवाब देता है। शाम तक चन्द्र सेठ खाली-खाली-सा। वो टिफिन मंगवाता तो खाना ठण्ड़ा और बेस्वाद। चाय बनाकर पीता तो कभी चाय ज्यादा उबल जाती, कभी चीनी डालना भूल जाता तो कभी चाय उबल कर गैस के चूल्हे पर गिर जाती।

वो रात को डबल बेड पर सोता तो उसे डबल बेड किसी खाली, वीरान टापू जैसा महसूस होता। उसे याद आता जब वो पूनम के बालों में अपनी उँगलियां घुमाता था। वो मुस्कुराती रहती थी। कभी-कभी वो उसके पैरों में अपने पांव उलझा देता तो कभी उसके हाथों में अपने हाथ डाल लेता। पूनम को आलिंगन में लेना, अदभुत अनुभव होता। बेशक, बाद में वो उसकी दिनचर्या से नाराज रहने लगी थी। बेड पर मुँह फेर के सो जाती। इसके बावजूद उसके होने का एक अर्थ था।

चन्दर को अब महसूस होने लगा था कि घर कितना गरिमाहीन हो गया था। वो घर का वैभव थी। बेशक घर का सौंदर्य थी वो। वो जितनी सुन्दर थी उतनी सुन्दर उसकी उपस्थिति। उसकी एक देहगंध थी जो अब नहीं रही।

चन्दर को अब महसूस होने लगा कि वो मोबाइल नम्बरों के जंगल में भटकता रहा। कभी बाइक से किसी के पास तो कभी कार से कोई डील करने के लिए। सब व्यर्थ। इस भागम-भाग में उसने क्या हासिल किया? वो सारी की सारी सद्भावनाएं नष्ट कर बैठा। धीरे-धीरे चन्दर परेशान रहने लगा। वो अपने मोबाइल मेज पर रखता। मोबाइल बजता। वो सुनता और काट देता। दिनभर वो एक फोन का इंतजार करता—पूनम के फोन का। इसने कई बार

पूनम को फोन किया। हर बार 'स्विच ऑफ' मिलता। शायद उसने 'सिम' बदल दिया हो।

चुपचाप। उदास। गुमसुम। मोबाइल स्विच ऑफ और डायरियां बंद। कुर्सी पर बैठा रहता चन्दर-जैसे कि कुर्सी में रख दिया गया हो।

छोटा भाई आया। भाई की हालत देखकर परेशान हो उठा। यह वो भाई था जिसकी ज्यादातर डील चन्दर सेठ 'फेल' कर देता। यह वो भाई है जिसने भाई के लिए चाय बनाई। ब्रेड आमलेट। उसे जिद करके नहलाया। कपड़े बदले। यह वो भाई था जिसने बड़े भाई चन्दर को कहा कि वो कहीं घूमने चला जाए।

वोल्वो से शिमला तक की टिकट बड़े भाई को देते हुए छोटा, भाई इन्दर मुस्कुराया। बैग में सामान पैक कराया! और बस में बिठाकर आया।

चन्दर सेठ बेंच पर अब भी बैठा है। यहाँ बैठना उसे सुखकारी लग रहा है। बेशक, कपड़े भीग चुके हैं। उसके बावजूद वो बैठा है। बारिश थम चुकी है। आसमान में बादल हैं—भागते-दौड़ते। जैसे किसी रिले रेस के भगते-हाँफते खिलाड़ी हों।

चन्दर बादलों को देख रहा है। बनते बिगड़ते सैकड़ों चेहरे। बादल किसी कृति जैसे। आसमान किसी कैनवास जैसा।

पहाड़ों को देखो तो वो जोगियों का डेरा प्रतीत होते हैं।

बारिश थम चुकी है लेकिन बेंच गीला है। वो खुद भी गीला। उसने पॉलीथीन में लिपटे मोबाइल से पॉलीथीन उतार कर मोबाइल जेब में रख लिया है। पर्स को भी पॉलीथीन से अलग किया है। पैंट की जेब में रखकर उसने पैंट की जेब में रखे दस-दस के नोट निकाले हैं। वो गीले हो चुके हैं।

सुबह सवेरे मोबाइल की रिंगटोन से चन्दर चौंक गया है। फोन छोटे भाई का है। वो सेहत का पूछ रहा है। वो चिंतित नजर आता है। वो कह रहा है कि भैया, खूब इंजॉय करना। मॉल रोड पर घूमना। अच्छा लगेगा। ड्रिंक्स मत करना। चाय-कॉफी पीना, बस!

चन्दर सेठ को अच्छा लगा कि छोटे भाई को उसकी फिक्र है। छोटे भाई के साथ उसने हमेशा खराब व्यवहार किया। उसे कभी सफल नहीं होने दिया। और छोटा भाई है कि उसके लिए मरा जा रहा है। छोटे भाई पर उसे बहुत तरस आया और प्यार भी।

बारिश रूक गई है। रिज पर लोग निकल पड़े हैं। चन्दर सेठ अब जाने का सोच रहा है।

एक आदमी बेंच के दूसरे किनारे पर आकर बैठ गया है। वो पहाड़, रेलिंग, महात्मा गांधी की मूर्ती को देखते हुए चन्दर सेठ के देख रहा है। देख रहा है और मुस्कुरा रहा है। उसने हाथ उठाकर नमस्ते जैसा कुछ कह रहा है। नमस्ते कहते-कहते वो चन्दर सेठ के पास चला आया है।

पैंतीस की उम्र का वो सेहतमंद शख्स अच्छे कपड़ों में है। वो शायद अभी-अभी कहीं से आया है—बारिश के थम जाने के बाद। शायद इसलिए उसके कपड़े सूखे हैं। बाल काले। कराने से कंघी। उसका व्यक्तित्व आकर्षक है।

चन्दर को देखते हुए उस नौजवान अजनबी ने कहा है, ''एक गुजारिश है...। वो चुप हो गया है। गुजारिश लफ्ज ने जैसे उसकी सांस रोक ली हो।

चन्दर उसे एकटक देख रहा है सवालिया नजर से कि वो अपनी बात पूरी करे।

उसने गहरी सांस लेते हुए कहा है, ''जेब में बीस-बाईस हजार लेकर निकला था घर से। कुछ होटल रिसेप्शन पर अडवांस में दिए। कुछ खर्च हो गए। बाकी दस ग्यारह हजार थे। कहीं गिर गए। आप यकीन नहीं करेंगे। लेकिन यही सच है। जेब खाली है। दस-दस के दो नोट पड़े हैं।''

''मैं क्या मदद कर सकता हूँ।'' चन्दर ने रूखे अंदाज में कहा है।

वो थोड़ी देर चुप रहने के बाद, धीर-से, अटकते हुए कहता है, ''पांच सौ रुपये की मदद चाहिए। आप अपना पता दे दीजिए मैं मनीआर्डर से भेज दूंगा। या फिर आपके अकाउंट में...।''

चन्दर चुप है सामने रेलिंग और बंद शॉप को देख रहा हो जैसे।

''मैं जानता हूँ आपको मेरा किस्सा मनगढ़ंत और झूठा लगेगा। लेकिन आप सर मुझ पर यकीन कीजिए। मेरे पैसे कहीं गिर गए हैं।'' उसने कहा है।

''आपकी जेब में मोबाइल है। आपकी जेब ए.टी.एम कार्ड होगा।'' चन्दर ने दलील दी है।

''मैं ए.टी.एम कार्ड नहीं रखता सर! आप चाहें तो मेरा मोबाइल रख सकते हैं।''

उसने मोबाइल बेंच पर रख दिया है। कहा है, ''सेमसंग का स्मार्ट फोन है। दो महीने पहले खरीदा था। नया है। वर्किंग कंडिशन में है सर! नो चीटिंग सर!''

चन्दर कुछ देर सोचता रहा। फिर उसने पर्स से पांच सौ का एक नोट निकाला और अजनबी नौजवान को देते हुए बोला, ''ये लीजिए।''

अजनबी नौजवान ने पांच सौ का नोट लेकर धन्यवाद कहा है। अपना मोबाइल बेंच पर छोड़कर दो-चार कदम दूर गया होगा कि चन्दर सेठ ने आवाज देकर वापिस बुलाया है उसे।

वो अजनबी बेंच के पास भौंचक-सा खड़ा है। चन्दर ने मोबाइल उठाकर उसे देते हुए कहा है, ''ये आपका मोबाइल।

अजनबी नौजवान पहले से ज्यादा भौंचक है। मोबाइल लेकर उसने आभार व्यक्त करते हुए थोड़ा सर झुकाया है। चला गया है वो।

फिर बूंदा बांदी होने लगी है। वो सामने रेलिंग की तरफ देख रहा है। थोड़ा आगे जाओ तो एक सड़क निकलती है लक्कड़ बाजार की तरफ। दूसरी ओर चर्च है। ढलवां सड़क। मॉल रोड से जाकर मिल जाती है। चन्दर सेठ, लिफ्ट के साथ एक होटल है—होटल कैलाश। वहां रूका है।

रेलिंग, बारिश, पहाड़। भीगे हुए पहाड़ किसी फकीर जैसे। चिलम पीते हुए धुआं छोड़ते हुए।

चन्दर कल्पना में खो गया है। काश, रिज के ऐन सामने रेलिंग के पास पूनम मिल जाए। वो भीग रही हो। चन्दर भागता हुआ जाए उसके पास। उसके सर पे छतरी तान दे। बेशक, यह एक ख्याल है। न उसके पास छतरी है न रेलिंग के पास पूनम! लेकिन अल-सुबह पूनम की याद जैसे उड़ते बादल को पकड़ने की कोशिश!

होटल में आकर उसने पूनम का नम्बर मिलाया वही—नोट रीचेबल और स्वीचऑफ की आवाज!

ब्रेकफास्ट लेकर वो मशोबरा की तरफ निकल गया। अकेला घूमता-भटकता रहा। मन उचाट ऊब और वितृष्णा। टैक्सी से वापिस। टैक्सी वाले ने दूर उतारा। वो पैदल होटल तक आया। न दूकानें अच्छी लगीं न मॉल।

रात को उसने एक लार्ज पेग लिया। कमरे में उसने चिल्ली पनीर मंगाया। टी वी देखती रहा। चैनल बदलता रहा। उसे लगा सारे के सारे चैनल पाखण्ड पर्व मना रहे हैं। चैनल हैं या अर्ध सत्य की गिरती दीवारें।

चन्दर सुबह जल्दी उठ गया। फ्रेश हुआ। कैटल में पानी उबाला। कप में डाला। टी बैग डालकर वो पानी की रंगत बदलता देखता रहा। ब्लैक टी उसे हमेशा काम चलाऊ लगती है। असली चाय वही दूध-पत्ती-चीनी वाली।

रिज के उसी बेंच पर बैठा है चन्दर सेठ। आज आसमान साफ है। पहाड़ों का दृश्य सुन्दर और आकर्षक!

अजीब इत्तेफाक है। वही पहाड़ी लड़का जस्ती की केतली और थर्मोकोल के कप लेकर, उसके सामने आ खड़ा हुआ है।

''जनाब चाय?''

''चाय!'' चन्दर ने मुस्कराते हुए कहा है। चाय लेकर उसने बीस का नोट लड़के को दिया तो लड़का बड़ी मासूमियत से बोला, ''सॉब जी, दस रुपये दीजिए। आज बारिश नहीं हो रही।''

''लेकिन चाय तो दालचीनी वाली है।'' चन्दर की आवाज में दोस्ताना लहजा है।

लड़का हंस पड़ा है। खुशी की छोटी-सी दुनिया लेकर वो जा रहा है।

अकेले बेंच पर अकेला चन्दर। जब वो चाय पी रहा था तो लगता था वो अकेला नहीं। चाय का कप उसके साथ है। वो चाय पीते हुए थर्मोकोल के रूप को ऐसे देखता जैसे उससे कोई गहरी बात कर रहा हो।

चाय का कप खाली हुआ तो उसने क्रश करके उसे डस्टबिन में डाला और फिर बेंच पर आ बैठा। चन्दर को यहां बैठना भी 'फन' करने जैसा लग रहा है।

वही कल वाला अजनबी नौजवान आज फिर चन्दर सेठ के बेंच पर, दूसरे किनारे पर आ बैठा है। उसने चन्दर को सिर हिलाकर 'नमस्ते' की है। मुस्कराया है। आज वो पहाड़ आसमान साफ-सुथरे मौसम और धूल की बात कर रहा है जो अभी ऊंचे पहाड़ों पर कहीं दिखाई दे जाती है।

कल की तरह वो थोड़ा-थोड़ा सरक कर चन्दर के पास आया है। चन्दर इस गुमान में है कि आज वो फिर वो कोई किस्सा गढ़ेगा और पैसे मांगेगा।

लेकिन बात कुछ और हुई जिसने चन्दर को हैरान कर दिया।

अजनबी नौजवन ने कमीज की जेब में रखा पांच सौ का नोट निकालकर, बड़े शिष्ट भाव से चन्दर को देते हुए बोला, ''बहुत शुक्रिया सर। कल आपसे पांच सौ लिए थे। आज लौटाने आया हूँ।''

''लेकिन आपको तो इसकी बहुत जरूरत थी।''

''जरूरत थी, लेकिन अब नहीं है।''

''ऐसा लगता है आपके गुम हुए पैसे मिल गए।''

''सर, आपको एक राज की बात बताऊं...मेरे पैसे गुम हुए ही नहीं थे।''

''क्या, पैसे गुम नहीं हूए थे फिर आपने आकर मुझसे पैसे लेने के लिए कहानी क्यों गढ़ी?''

उसने चन्दर को देखते हुए कहा है, ''मैं देखना चाहता था कि समाज में भरोसे जैसी चीज बची है?''

''आप समाज का इम्तेहान ले रहे थे?''

''मैं इम्तेहान दे भी रहा था। किसी से कुछ मांगना भी इम्तेहान होता है। मैं एक अजनबी था और दूसरे अजनबी से पांच सौ रुपये मांग रहा था। क्या ये इम्तेहान नहीं था?''

दोनों अजनबी अपनी-अपनी चुप के साथ बैठे हैं। वो नौजवान शख्स थोड़ा-सा मुस्कराकर बोला, ''मैं खेल खेलता रहता हूँ। जब आप जैसा कोई मिल जाता है तो लगता है मेरे विश्वास ने बाजी जीत ली।

अचानक वो बेंच से उठ खड़ा हुआ है, ''मैं अभी आता हूँ सर। आप थोड़ा इंतजार करना।''

वो कुछ देर बाद नमूदार हुआ। दोनों हाथों में कैफे कॉफी डे के दो कप-कैपूचीनो कॉफी के लिए कप।

''सर हम कॉफी पीते हुए रिज की शानदार सुबह को सेलीब्रेट कर सकते हैं।'' उसने कॉफी का एक कप चन्दर को देते हुए कहा।

दोनों कॉफी पीते। रहे। रूक-रूककर दोनों एक दूसरे को देख लेते, फिर सामने के पहाड़ों को। पहाड़ों के पास धूप की उजली किरणें थीं। वो उनकी आवभगत में व्यस्त थे।

कॉफी खत्म हुई। उस शख्स ने बड़े तपाक से चन्दर से हाथ मिलाया, चला गया।

वो अजनबी नौजवान जाने के बाद भी अपना अहसास छोड़ गया।

चन्दर सोच रहा है जब वापिस पहुंचेगा तो अगले दिन पूनम के घर के पास जो मार्केट है, वहां से दो अटैचियां खरीदेगा और पूनम से जाकर कहेगा, ''मैं तुम्हें मनाने आया हूँ पूनम। बहुत सारी माफियों के साथ। अटैची में कपड़े डालो। मैं ओला कैब बुक करता हूँ। ○○○

दोनों आसमानों के रंग...

ज़किया ज़ुबैरी

''ऐ मेरे खुदा हम कहाँ जाएं... किससे मदद मांगें... हम क्यों चले आए अपना घर-बार छोड़कर। बड़े चले थे आज़ाद मुल्क बनाने। हम तो इस आज़ाद मुल्क के कैदी बन कर रह गए हैं। ये कम्बख्त वढेरे ज़मींदार हुकूमत कर रहे हैं... इनको किसी की कोई परवाह ही नहीं। अपने पेट की दोज़ख भरते रहते हैं अपनी औलाद को बाहर पढ़ने को भेज देते हैं मुल्क को जो पैसा खैरात में आता है वही वो वापस ले जाकर जायदादें बनाते हैं वहां के बैंकों में छुपाकर रख लेते हैं जब गद्दी से उतरेंगे तो उसी पैसे से खुद ऐय्याशी करेंगे।

अम्मीजान...! आज इस तारीख को लिख लें और मन में बैठा लें कि 'मैं सरदार अमजद अली खान खुदा को हाज़िर-ओ-नाज़िर जानकर पाक परवरदिगार के सामने आपकी कसम खा कर कहता हूँ कि जब तक बदला नहीं लिया चैन से नहीं बैंठूंगा। अम्मीजान आप भी कसम खाइये कि किसी भी वजह से अगर मैं ऐसा न कर सका तो आप भी मुझे अपना दूध माफ नहीं करेंगी।'

''बेटा ऐसी नफरतों से क्या कभी कोई काम बना है...! कोई फायदा नहीं ऐसे जज़बाती फैसलों का। हमें तुम्हें क्या मालूम वहाँ इतनी ऊंचाई पर अकेले पड़े पड़े जवान खून उस ठंडक में भी इतना गरम और जालिम क्यों हो जाता है जो दरिंदों की तरह एक दूसरे को खा जाते हैं।

उस छोटे से घर की एक-एक वस्तु जैसे डोल गई... ताक पर रखे कलामे-पाक के वरक कांप गए... बिजली के बल्ब की रौशनी जैसे मद्धम होकर जलने बुझने लगी... सरदार अमज अली खान की सोच की तरह हर ओर वीरानी और अन्धेरा सा छा गया। मगर सरदार की सरदारियत में रत्ती भर भी लचक ना पैदा हो सकी...

''माँ तुम माएं ज्यादतियों को ऐसे ही माफ करती रहीं तो उन्होंने जो छोटा सा हिस्सा हमारे देश के नाम पर हमको अपना देश बनाने को दिया है वो भी वापस हड़प जाएंगे। हमारे देश के वजूद को सफहे-हस्ती से मिटा देंगे।... हमारा कितना खून बहा है...। एक एक का बदला गिन-गिन के लूँगा।''

''बेटा खून तो दोनों ओर का बहा है। और दोनों के खून का रंग भी लाल ही था। हाथ पैर कान नाक रंग मिजाज खाना-पीना सभी तो एक ही जैसा था...!''

''अम्मीजान आप नहीं बदल सकतीं... अपनी ही सी बोले जाएंगी... अब कान खोलकर सुन लीजिये... मेरा तबादला कश्मीर का हो गया है और... मैं जा रहा हूँ... देख लूँगा बदला लूंगा...।''

''क्या बदला... तुम्हारे जैसे लोग ही तो चले थे अपना एक नया

सम्पर्क: Zakia Zubairi-115, The Readings-mill, London, NW 7 4JP (U.K.)

संसार बसाने, उन लोगों ने तो नहीं कहा था अलग हो जाने को। अक्ल है तो आप ही देख लो क्या बना लिया है अपने देश को।''

''बस अम्मीजान बस... मेरी बीवी और मेरा बेटा... मेरी अमानत का ख्याल रखियेगा... मैं अब नहीं रुकने वाला...।''

''और मेरी अमानत का ख्याल कौन रखेगा... मेरे जिगर के टुकड़े का? मुझ विधवा ने अकेले पूरी ज़िंदग़ी तुझे पाल पोस कर बड़ा किया और आज तू इस बुढ़ापे में हम सब को अकेला छोड़ कर चला जा रहा है।''

''अम्मीजान ऊपर खुदा है वो देखभाल करेगा आप सब की।''

सरदार अमजद अली खान चल दिया... अपनीअंतरात्मा को मारकर... माँ से कड़वी कसैली बातें बघार कर कश्मीर आजाद कराने... बीवी और बेटे को रोता बिलखता... बूढ़ी माँ की लाठी बनने के बजाए बन्दूक उठाकर अपने परिवार की देख-भाल की जिम्मेदारी माँ के बूढ़े कन्धों पर लाद कर अपने जूनून की पूर्ति करने... ... नफरतों का थैला अपने जिस्म-ओ-दिमाग पर लपेटे रवाना हो गया...

ये सब पगला गये हैं... माँ ने एक ठंडी सांस के साथ सोचा... मोटी मलमल के चौड़े से दुपट्टे को पीछे से खींचकर चांदी जैसे बालों को ढांका... घुटने सिकोड़कर उसपर सर को टिकाकर दोनों घुटनों के गिर्द दोनों बाहों को जकड़ कर बैठ गई। दोनो हाथों की उंगलियों को ऐसे एक दूसरे में जकड़ लिया जैसे अब ये ताला कभी नहीं खुलेगा। मुंह को ऐसे छुपा लिया कि किसी को मालूम न होने पाए कि आज माँ भी टूट गई है... माएं टूटती हैं तो ना बन्दूक कि आवश्यक्ता होती है और ना ही बारूद की... ऐसा तूफान आता है कि गुनाहगारों को चुन चुनकर बहा ले जाता है। मगर माँ फिर भी बेटे कि रक्षा और सलामती की प्रार्थना करती रही... गिड़गिड़ाती रही भगवान के आगे... पूरा शरीर झुरझुरा रहा था प्रयत्न कर रही थी कि कोई देखने ना पाए वरना सब हिम्मत हार जाएंगे... अभी तो बहुत लम्बी यात्रा करनी है उन तीनों को एक दूसरे की लाठी बनकर।

पांच वर्ष का पुत्र बस एक ही रट लगाए हुए था, ''अब्बू जी मत जाओ... मत जाओ मेरे अब्बू जी... मुझे साथ ले चलो...।'' बेटा चीखें मारता रहा हिचकियों से रोता रहा पर अब्बू जी तो शिकार पर निकल पड़े थे... कमर पर कसी हुई पेटी, जिस्म पर कलफलगी वर्दी ऐसा महसूस होता था जैसे उका तमाम वजूद अकड़ गया हो। एक एक कदम ऐसे जमीन पर मार रहा था जैसे अपने ही देश की धरती का सीना चीरकर ढेरों खून से सिंचाई कर देगा।

जाते हुए एक बार भी मुड़ कर नहीं देखा उसने। शायद बेटे की हिरणों जैसी सहमी हुई आँखों की ताब ना ला सकता हो... माँ की गोद की मुलायम गरमी उसकी कसम ना तोड़ दे... बीवी का जवान जिस्म अपनी जुल्फों में ना गिरफ्तार कर ले...

वो चला गया...

बेटे ने खाना बंद कर दिया...

दुल्हन रानी की आँखों का काजल बह गया...

माँ टूट गई...

सेहन में मोगरे के जो फूल लगे थे अब वो खिलते और मुरझा जाते कोई न तोड़ता, न गजरा बनाता और ना ही कान के बड़े बड़े छेदों में ठूंस कर पहनता। कपड़े सुखाने की आँगन में एक सिरे से दूसरे सिरे तक बंधी हुई डोरी जो कि पहले छोटी पड़ जाती थी अब बड़ी पड़ने लगी थी... पप्पू मियां कपड़े टांगते ही उसके आगे पीछे घूमने लगते हर कपड़े की ठंडक को गालों से लगाते और अंत में उसके पीछे छुपकर कहते, ''अब्बूजी अब्बूजी मुझे ढूंढ़िये मैं कहा हूँ...।'' नीचे से टाँगें नजर आ रही होतीं फिर भी अब्बू जी पूरी तरह उसे यकीन दिलाते कि कहाँ हो बेटे दिखाई नहीं दे रहे हो... और आज कपड़े तो सूख रहे थे पर पप्पू भी नहीं गया... दूर से बैठा कपड़ों को देखता रहा। शायद इंतजार कर रहा था कि आज उसके अब्बू जान कपड़ों के पीछे से बस अभी निकल आएँगे...।

आज अब्बूजी के वापस ना आने पर पप्पू ने पूछ ही लिया कि अब्बूजी अभी तक आए क्यों नहीं... क्या मेरे लिए खिलौने लेने गए हुए हैं...?

ऐसा सवाल था जिसका जवाब कोई ना दे सका...!!

वो खिलौने लेने नहीं वो जानों से खेलने गए हुए हैं...

अम्मीजान और दुल्हन रानी ने एक साथ यही सोचा पर कह ना सकीं।

पप्पू का खाना-पीना छूटने लगा।

खाना न खाने कि वजह से दुबला होता जा रहा था।

अरे दुल्हन रानी साथ बैठकर अपने हाथ से खिलाओ तो शायद कुछ तो पेट में पड़ जाएगा वर्ना कहीं बीमार ना हो जाए। बड़ी मुश्किल होगी... बाप तो जुनून में गया हुआ है यहाँ हम औरत जात जीते जी मर जाएंगे।

दुल्हन रानी क्या करती... कैसे खिलाती... मुँह में ठूंस तो सकती थी पर निगलवा तो नहीं सकती थी। प्यार से, डांट कर, मार कर सजा देकर हर तरह से कोशिश करती पर पप्पू से खाना खाया नहीं जाता... जबरदस्ती खा लेता तो उगल देता या नहीं तो दस्त लग जाते। वो रोने लगता तो यही सवाल उठता कि बाप के चले जाने के कारण जहन पर असर हो गया है। फिर सास बहू खिलौने दिलवाने की लालच देतीं... बाहर पार्क में ले जाने के वास्ते देतीं पप्पू सब कुछ हासिल कर लेता पर मन की उबकाई को कैसे रोकता... पीला पड़ता जा रहा था...

''दुल्हन रानी, बच्चे को किसी बड़े डॉक्टर को दिखाना चाहिए। अगर हमने ऐसे ही पड़ा रहने दिया तो कहीं लेने के देने ना पड़ जाए। बाप कश्मीर जीतने गया हुआ है हम यहाँ इस जिगर के टुकड़े के जीवन से ना हाथ धो लें...!''

''अम्मीजान बड़े डॉक्टर के लिए बड़े पैसे भी तो चाहेंगे। और अम्मीजान आजकल तो बड़ा डॉक्टर जो ज्यादा पैसे मांगे वही समझा जाता है... हमारे देशों में तो डिग्री भी खरीद ली जाती है।''

''ऐ मेरे खुदा हम कहाँ जाएं... किससे मदद मांगें... हम क्यों चले आए अपना घर-बार छोड़कर। बड़े चले थे आजाद मुल्क बनाने। हम तो इस आजाद मुल्क के कैदी बन कर रह गए हैं। ये कम्बख्त वढेरे जमींदार हुकूमत कर रहे हैं... इनको किसी की कोई परवाह ही नहीं। अपने पेट की दोजख भरते रहते हैं अपनी औलाद को बाहर पढ़ने को भेज देते हैं मुल्क को जो पैसा खैरात में आता है वही वो वापस ले जाकर जायदादें बनाते हैं वहां के बैंकों में छुपाकर रख लेते हैं जब गद्दी से उतरेंगे तो उसी पैसे से खुद ऐय्याशी करेंगे। हम यहां भूखे मरते रहे... हमारे बच्चे जो हमारी खुशियों की आखिरी उम्मीद होते हैं वो या तो कश्मीर जीतने को भी भेज दिए जाते हैं या नहीं तो बीमारी निगल जाती है उनको।

''अम्मीजान आप इतनी परेशान ना हो इंशाअल्लाह पप्पू ठीक हो जाएंगे।

''कैसी मासूमियत की बातें करती हो दुल्हन रानी। बिना इलाज के तो जानवर भी नहीं सेहतमंद हो पाता है। हिन्दुस्तान में जब भैंसें बीमार हो जाती थीं तो उनको मवेशियों के अस्पताल भेजा जाता था अगर कुत्ते को चोट लग जाती थी तो उसको भी हल्दी और साबुन मिलकर गरम करके लेप लगाकर पट्टी बांध दी जाती थी। बिटिया तुम तो अभी बच्ची हो... ना समझ पाओगी इन बातों को। अच्छा चलो फोन लगाओ मेरे बेटे को मैं बात करती हूँ... तमाम सूरतेहाल बताती हूँ। बदबख्त बंदूक उठाकर दूसरों के बच्चों को अनाथ करने गया हुआ है यहाँ अपना बच्चा ज़िंदगी की बाजी हारने लगा है... पीला पड़ता जा रहा है। जैसे सरसों की कोठरी में बंद कर दिया गया हो...''

''दुल्हन रानी मेरा जी घबराने लगा है... जरा तीन कतरे कोरामीन के पिला दो... मैं कोरामीन की दवा तो हिन्दुस्तान ही से आने-जाने वालों के हाथ मंगवा लेती हूँ... यहाँ तो ना जाने क्या क्या मिला देते हैं... घरों के आंगनों में तो चॉक पीस पीस कर गोलियां बना लेते हैं... मरीज गोलियां खाता जाता और मौत के दहाने पर खड़ा हो जाता है तो लेकर भागे फिरते हैं इधर से उधर...''

''अम्मीजान, आपने फोन लगाने को कहा था मैंनें लगाया तो, मगर उठा नहीं...''

दुल्हन रानी ने अम्मीजान की और कोई बात तो सुनी नहीं... पति से बात करने को तो वो तड़प ही रही थीं जल्दी से फोन मिलाने की कोशिश करने लगीं पर असफल रहीं... घबरा सी गईं... बुरे बुरे विचार सताने लगे... कहीं किसी बेगुनाह की जान तो नहीं ले ली...! कहीं आप ही जख्मी तो नहीं हो गए... पप्पू ने लेटे-लेटे आवाज दी, 'अम्मी पानी पिला दो।'

''ऐ दुल्हन रानी बच्चे का खाली पेट है, कुछ मुँह में डाल दो फिर पानी पिलाना...''

''मुझे नहीं खाना है कुछ भी... अम्मी जल्दी से पानी दो... बहुत प्यास लगी है...'' गटागट ऐसे पानी पी गया जैसे मरुस्थल में बैठा हो... ऐसा प्यासा जैसे वर्षों से पानी न देखा हो... शायद प्यास बाबुल मिलन की थी... बड़-बड़ी आँखे पूरे चेहरे पर केवल वही

दिखाई दे रही थीं... पांच वर्ष के बच्चे की बेरौनक आँखे... आँखों की चमक कहाँ खो गई थी किसी को नहीं मालूम...

हिकमत और आयुर्वेद दोनों में हर बीमारी का इलाज जिगर से शुरु किया जाता है... दुल्हन रानी तेज कदम बढ़ाती हकीम जी के आगे-आगे घर की ओर भागती आ रही थीं कि हकीम जी भी तेज तेज चलें। हकीम जी ऊंचा सफेद पाजामा और उतना ही लम्बा ढीला-ढाला बंद गले का सफेद कुरता और सर पर सफेद टोपी ओढ़े लाठी टेकते टेकते घर के आंगन के दरवाजे से भीतर आये। हर कदम पर या-अल्लाह... बिस्मिल्लाह... जाप करते जाते। अम्मीजान को ऐसा महसूस हुआ कि कहीं दुल्हन रानी मस्जिद के इमाम को तो नहीं पकड़ लाई हैं। हकीम जी ने अंदर कदम रखते ही अम्मी जी को 'अस्सलाम-ओ-अलैकुम हमशीरा साहेबा' कहा तो अम्मीजान आवाज पहचान गईं और उनकी आवाज भर्रा गई जवाब देते हुए, रुआंसी आवाज में बोलीं ''हकीम जी अल्लाहपाक के बाद इस बच्चे की ज़िंदगी आप ही के हाथ में है। खुदारा इस बच्चे को सेहतयाब कर दीजिये। ना जाने इस मासूम को किसकी नजर लग गई है, उनको यकीन था कि हकीमजी के इलाज से उनका पप्पू जरूर ठीक हो जाएगा।

हकीम जी ने आते ही पप्पू मियां से कहा, ''ज़बान दिखाइएगा साहेबजादे... ''पप्पू रोने लगे मेरे'' अब्बूजान जबान दिखाने को मना करते थे... मैं नहीं दिखाऊंगा...'' यह सुनते ही सास बहू की आँखों से भी बेमौसम मेह बरसने लगा... हकीम जी घबरा गए कि उन्होंने क्या गलती कर दी कि सारा घर रोने लगा... ''अच्छा लाओ बेटे नब्ज दिखाओ।'' कोई पंद्रह मिनट तक हकीम जी नब्ज पकड़े बैठे रहे और फिर उसकी आँखें खींच-खींच कर देखीं और घोषणा कर दी कि बच्चे का जिगर खराब हो गया है। दिन में पांच खुराक दवा का नुस्खा लिख कर पच्चीस रुपए फीस लेकर जैसे आए थे वैसे ही चले गए। अम्मीजान और दुल्हन रानी दोनों चुप खड़ी एक दूसरे को देखती रहीं शायद एक ही बात सोचती रहीं कि 'अब क्या होगा'

अम्मी जान जैसे सोते से जागीं... और दुल्हन रानी भी झिंझोड़ा... और फिर उनका सर अपने सीने से लगा लिया और पूरी हिम्मत से आवाज में ठहराव पैदा करते हुए प्यार से कहा ''जाओ बेटी दौड़ो हकीम जी के पीछे... कहीं दवाखाना बंद करके निकल ना जायें।'' बेचारी दुल्हन रानी बेटे को लिपटा कर प्यार भी ना कर पाई सर पर दुपट्टा डाला और भागी हकीम जी के पीछे। ये दवाएं खिलाना और उसको खिलाने से पहले बच्चे को तैयार करना भी जान जोखिम का काम था। बेचारी थक जाती थी। खाना पकाना घर की सफाई करना अम्मीजान को खाना खिलाना, उनकी दवाएं भी समय पर देना... पप्पू तक पहुंचते पहुंचते बिल्कुल टूट जाती थी। पप्पू को दवा खिलाना दूभर हो जाता था। जो बच्चा एक से एक अच्छा खाना ना खा रहा हो वो हकीम जी की खट्टी, मीठी, कड़वी, कसैली दवाएं क्या खाएगा... पति बहुत याद आता... काश वो यहाँ होते कुछ बोझ बांट लेते... या शायद पप्पू बीमार ही ना होता... आाज वो भी सोचने पर मजबूर हुई कि पता नहीं ये कश्मीर आजाद कराने का जुनून क्यों सवार हुआ...!

कोई भावनात्मक बात ही जुनून का रंग धारण कर लेती है... और जुनून का कोई तोड़ नहीं होता... और ना ही उसकी कोई परिभाषा होती है... जब जुनून सर पर चढ़ जाए तो भगत सिंह पैदा हो जाते हैं... अपने देश से प्यार के नशे में मतवाले... अपने देश को चुराने वाले डाकुओं से लड़ कर अपनी कुर्बानी दे देने वाले...इनके नामों से तो इतिहास लिखा जाता है...

क्या शौक है... आज पहली बार दुल्हन रानी की सोच विद्रोही होने लगी थी... उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि ... क्या हिन्दुस्तानी इन्सान नहीं होते...! क्या उनके माँ बाप बाल-बच्चे, और दुल्हन रानियां नहीं होतीं...! उनका रंग, नाक नक्शा क्या हमारे जैसा ही नही होता...! क्या अपनों के लिये उनका मन नहीं बेचैन रहता... वो भी तो कश्मीर में बैठे सोचते होंगे कि छुट्टी मिले तो परिवार से मिलने जाएं... और... और ये मेरा पति सरदार अमजद अली सोचता है कि वे कश्मीर पर कब्जा करना चाह रहे हैं... दुल्हन रानी को आज पहली बार अपने पति की पत्नी होने पर शर्म महसूस हुई।

पप्पू भी बेसुध चुपचाप गुडमुड़ी बना बिस्तर पर लेटा हुआ था। अब तो उसका खेलने-कूदने, खाने-पीने, हंसने-रोने किसी चीज का भी तो जी नहीं चाहता।

हकीम जी की दवा का हाल संदल् जैसा था कि सर के दर्द के लिये संदल लगाना लाभदायक है पर उसको घिसने और लगाना भी तो दर्द-सिर होता है...!

अम्मीजान मोबाइल को उल्टा पकड़े बेटा बेटा बार चिल्ला रही थीं ... पप्पू उठकर बैठ गया... दादी के हाथ से फोन खींच लिया और एक सांस में अब्बूजी...अब्बूजी... की रट लगा ली... सरदार अमजद अली खान के हाथ से जैसे बन्दूक छूट गई... ''बेटे कैसे हो? कैसे हो मेरे लाल क्या हुआ मेरे जिगर के टुकड़े को... कोई बताओ मुझे... कोई बोलता क्यों नहीं... पप्पू मेरा बच्चा कैसा है तू... ठीक तो है ना मेरा चांद मेरा सूरज...!''

''अम्मी मुझे उल्टी आ रही है।'' दुल्हन रानी के सारे दिन की यही ड्यूटी होती इधर से उधर भागती फिरतीं। बाथरूम में जाकर आँसू बहा आतीं। कोई नहीं था जिससे दुख-दर्द बांट सकतीं। अम्मीजान 'उनसे' बात कर रही हैं शायद वापस आने का कोई रास्ता निकाल लें वो... दुल्हन रानी इसी आशा में धीरे से कमरे में पहुँची तो आज पहली बार जीवन में अम्मीजान को फूट-फूट कर रोते देखा।... दुल्हन रानी कमसिन होने के कारण पप्पू की बीमारी को इतना खतरनाक नहीं समझ रही थीं। अम्मीजान की एक ही रट थी, ''बेटे अगर अपने बेटे के साथ कुछ समय गुजारना है तो फौरन वापस आ जाओ।''

''सर! मेरा एक ही बेटा है उसका जिगर खराब हो गया है... सर मुझे वापस जाना है। नहीं सर मुझपर दया कीजिए, मुझे जाने दजिए... वो नहीं रहा तो मेरी जिन्दगी का कोई मतलब नहीं रह जाएगा सर''। उधर अमजद अपने अफसर से कह रहे थे।

''ये फौज की नौकरी है कोई खिलवाड़ नहीं... यहां आप किसी मकसद से आए हो पहले उसको पूरा करो...

'सर उसमें तो समय लगेगा, सर।'

''तो समय लगाओ... याद है ना जो कसम खाई थी और कॉन्ट्रेक्ट पर लम्बा सा साइन किया था। सरदार अमजद अली खान पूरी एक लाइन भर गई थी तुम्हारे हस्ताक्षर से। आए हुए अभी साल भी नही बीता और बीवी याद आने लगी... उसके लिए बेटे का बहाना बना रहे हो...'' आज अमजद अली खान पहली बार किसी के पैरों पर पड़ गया... ''सर! मेरा बेटा... मेरा बेटा...मेरा बेटा मर जाएगा... मुझे जाने दीजिये... सर जी...''

आखिर सर पिघल गए और अमजद चले घर की ओर उसका बस नहीं चल रहा था कि कश्मीर के उन रुखे-सूखे पहाड़ों से एक छलांग लगाए और बेटे को उठाकर दबोच ले गोल-गोल घूम जाए, बेटा चिल्लाता रहे अब्बूजी रुक जाइए... अब्बूजी... अमजद अली खान चौंक कर रुक गया उसे एक क्षण के लिए समझ नहीं आया कि वो कहां तक पहुँच गया है। बस तेजी से गोल गोल ऊंची-नीची सड़क पर दौड़ती जा रही थी अमजद अली खान की सोच उससे भी तेज भाग रही थी। रात हो गई बस में ऐसी खामोशी थी जैसे मुर्दा दफन करने जा रहे हों। जहां जिसकी मंजिल आती वो चुपचाप उतर कर किसी ओर को निकल जाता... आज अमजद अली खान को अपनी मंजिल दूर भागती महसूस हो रही थी।

दूर से जब दरख्तों के बीच से जुगनू की तरह चमकती रौशनी नजर आने लगी तो उनको अम्मीजान का सफेद मलमल का दुपट्टा याद आने लगा जिसमे रात को जुगनू पकड़ कर दुपट्टे में कैद कर लिया करते थे उसमें से जुगनू की रौशनी छन-छन कर आती तो पूरे सहन में नाचते फिरते और अम्मीजान दुपट्टे के लिए शोर मचाती रहतीं कि वापस करो दुपट्टा, मेरा सर खुला है तेरे अब्बा आते होंगे... बड़ी मुश्किल से अमजद अली जुगनू को आजादी की सांस लेने देता जुगनू ऐसा खो जाता अंधेरे में कि अपनी रौशनी जिसपर वो गर्व करता था उसको गुल कर देता... आज अमजद अली खान भी अंधेरे की ओर अग्रसर था उसको भविष्य का कोई पता नहीं था की क्या होने वाला है...!!

बस के रुकते ही अमजद अली तेज तेज कदमों से टैक्सी के अड्डे की ओर भागा... बिना मोल भाव किए घर की ओर रवाना हो गया... घर में सोता पड़ा हुआ था... पप्पू के कराहने की आवाज इस खामोशी को तोड़ रही थी... बाप जैसे ही पप्पू के ऊपर झुका... पप्पू ने अब्बूजी कह कर गले में हाथ डालकर उठना चाहा पर उठ ना सका। कराहने लगा। पप्पू के कमजोर हाथ... मुंह से बीमारी की महक... सूखा लकड़ी जैसा शरीर अमजद अली को रुला देने के लिए काफी था...

लम्बा चौड़ा फौजी घर के एक कोने में खड़ा आँसू बहाता रहा। अम्मीजान और दुल्हन रानी थक कर बेखबर सो रही थीं। पप्पू ने अब्बूजी को आवाज दी तो दुल्हन रानी ने उसे सो जाने को कहा।

''अम्मीजान, अब्बूजान आ गए हैं।''

''सो जा बेटे अभी तो बहुत रात पड़ी है। बातें करोगे तो अम्मीजान भी जाग जाएंगी।''

''अब्बूजान... अब्बूजान कहां गए आप?''

आज सरदार अमजद अली खान चोरों की तरह छुपा कोने में खड़ा अपने अपराध को महसूस कर रहा था कि कैसे पूरे परिवार को बेसहारा छोड़ कर बदला लेने चला गया था। पप्पू की हालत देखने के बाद अब और किसी से मिलने की हिम्मत नहीं जुट पा रही थी। कोने वाली कुर्सी जिस पर हमेशा बैठा करता था आज मिट्टी से अटी उसी तरह उसी के इन्तजार में खाली रखी हुई है। वो चुप चाप उसपर बैठ गया अपने मसले हुए यूनिफार्म में जिसकी कलफ टूट चुकी थी, चमकदार जूते मिट्टी से अटे हुए थे... जो कसी बेल्ट थी वो भी ढीली हो गई थी। दुल्हन रानी के हाथ का खाना नहीं मिलता था। रोज रोज दाल सब्जी कैसे खाई जाती रोज मांस खाने वाले से। यहां दुल्हन रानी के हाथ का खूब भुनाई किया खाना खाने के बाद कोई खाना अच्छा नहीं लग सकता था।

''अब्बूजान किधर गए आप? अब्बूजान मुझे उठाइए...'' आज पप्पू खुद उठकर चल भी नहीं सकता था। या खुदा! ये क्या हो गया है मेरे बेटे को। धीरे से उठकर पप्पू को गोद में लिया तो ऐसा लगा जैसे हड्डियां चुभ रही हों उसने घबराकर लाइट जला दी अम्मीजान और दुल्हन रानी भी पप्पू पप्पू लाइट क्यों जला दी कहती हुई उठ बैठीं... जैसे ही नजर पड़ी बाप की गोद में हड्ड़ियों का ढांचा बैठा हुआ है... दोनो रोने लगीं। पप्पू और सरदार अमजद अली खान ने भी आँसुओं से रोना शुरु कर दिया चारों रो रहे थे, चुप कराने वाला कोई नहीं था। एक तूफान था जिसके टल जाने की कोई आशा नहीं नजर आ रही थी।

''अब्बूजान प्यास लगी है पानी पिला दीजिए। दुल्हन रानी जल्दी से उठने लगीं... ''नहीं मुझे अब्बूजान के हाथ से पानी पीना है।'' अब्बूजान भूल गए थे किधर को जाएं। पप्पू ने रस्ता दिखाया अपनी पतल पतली बाहों को मुश्किल से ऊपर उठाकर। जाते-जाते अम्मीजान ने चाहा अपने बेटे को सीने से लगा लें पर वो तो अपने बेटे की चाहत में डूबा हुआ था। दुल्हन रानी हमेशा की तरह खामोश अपनी बारी का सब्र से इन्तजार करती रहीं।

''अम्मीजान आपके जिम्मे अपनी अमानत कर के गया था... आपने ये कैसी देखभाल की?''

''क्या मैंने तुमसे कहा था कि तुम जाओ और मैं तुम्हारी जिम्मेदारी निभाऊंगी? बोल, कहा था मैंने?... मैं कहती हूँ जवाब दे मेरी बात का। बहुत दुख दे लिए तूने अब मैं चुप नहीं रहूँगी... तुझको शर्म नहीं आती अपने करतूतों पर। अभी तो सो जाओ सवेरे बात होगी।''

सरदार को अम्मीजान ने कभी इस तरह नहीं डांटा था। आज उनकी सरदारियत नीलाम होती नजर आई। चुपचाप कमरे में घुस गए। दुल्हन रानी भी झपाक से पीछ-पीछे कमरे में पहुँच गई। अन्दर अंधेरे कमरे से सिसक-सिसक के रोने की आवाजें आती रहीं और सुबह के इस पहर में हर तरफ खामशी छा गई।... और फिर चिड़ियों ने अपनी चूँ-चूँ से सुबह की आमद की खबर दी।

''दुल्हन रानी उठो नाश्ता बनाओ कितना लम्बा सफर करके आया है... भूखा होगा... दुल्हन रानी मुस्काई... और लपक कर किचन में पहुंच गई। हल्की-हल्की मोगरे की खुश्बू आज बहुत अर्से बाद हवा के ठंडे झाँके के साथ दुल्हन रानी के बालों से खेलती हुई आगे बढ़ गई। आज दुल्हन रानी रसोई में गुनगुना रही थी। पप्पू बाप के सीने पर सर रखे घुटनों को जैसे तह करके सीने से चिपकाए बंद नाक से गहरी-गहरी सांस ले रहा था। कभी-कभी अपनी सूखी लकड़ी जैसी बाहें बाप के गले में डाल देता। बाप उन बाहों को हल्के-हल्के सहलाता... ये क्या हो गया मेरे खुदा मेरे बच्चे को...! आज सरदार अमजद अली खान बेबस हो गया था बच्चे की इस हालत को देख कर।

''बेटे सरदार उठो और बच्चे को किसी बड़े अंग्रेजी डॉक्टर को दिखाओ। वो ठीक से मुआयना कर के बताएगा कि अब क्या किया जाए। हकीम जी तो बस ये कह गए कि जिगर खराब है। इतनी मनो दवाएं घोल कर पीस कर पका कर पिलाने को दे गए हैं कि बच्चा दुखी हो जाता है सारे दिन दवाएं पी-पी कर। अरे भई हर काम की कोई इंतहा भी होती है...!''

पलंग पर बैठे-बैठे फिर से आवाज लगाई 'सरदार बेटे अब उठ भी जाओ वक्त कम है। जितनी जल्दी हो सके बच्चे का मुआएना करवा लो। अल्लाह का नाम लेकर ले जाओ देखो डॉक्टर क्या बताता है?'

सरदार अमजद अली खान आज कितना मजबूर लग रहा था... बेबस... बिल्कुल हारा हुआ सिपाही। कितना आसान था सोते हुए दुश्मनों को हमेशा के लिये सुला देना... मगर आज अपने एक बच्चे के जीवन की भीख मांग रहा था बिस्तर में लेटा हुआ डर रहा था डॉक्टर के नाम ही से कि ना मालूम क्या बीमारी बता देगा मेरा बच्चे को...!

''अम्मीजान गजब हो गया... अम्मीजान कुछ करिये मेरे बच्चे के लिए दुआ मांगिये कि अल्लाह मेरे पप्पू को सेहत अता करे।'' आज सरदार अमजद अली खान का लम्बा चौड़ा शरीर बेजान सा हो गया था... ठोडी कांप रही थी आँखें फाड़े हुए थे... झपक नहीं रहे थे कि कहीं आसुओं का बंध टूट ना जाए और यूं ही बहने ना लगें कांपती आवाज से दुल्हन रानी को भी आवाज दी और अम्मी के पलंग पर उनसे करीब होकर बैठ गए जैसे बचपन में घबरा कर अम्मीजान से लिपट जाया करते थे। उनकी गोद में घुस जाया करते थे अब्बा जान के खौफ से। आज फिर अमजद अली कंपंकपा रहा था चुप्पी लग गई थी... दुल्हन रानी अपने सब्र को समेटे चुपचाप खड़ी बेटे की ओर टकटकी लगाए देखे जा रही थी।

''अरे बेटे कुछ बोलो भी... मेरा जी घबरा रहा है। दिल बैठा जा रहा है। दुल्हन रानी एक घूंट पानी में तीन कतरे कोरामीनके डालकर ले आओ।''

''अम्मीजान डॉक्टरा ने कहा है पप्पू मियां के जिगर ने काम करना बंद कर दिया है।... खराब हो चुका है मेरे बेटे का जिगर। और आज सिपाही सरदार अमजद अली खान बेबस बैठा अम्मीजान के कंधों पर सिर रखे बे मौसम के मेंह बरसा रहा था।

''बेटे हिम्मत करो उठो मुंह धो लो... दुल्हन रानी इसको ठंडा पानी पिलाओ। सास को अपने बेटे की फिक्र थी और दुल्हन रानी को अपने की... किसी को क्या मालूम उस नाजुक दुल्हन रानी को अपनी अम्मी किस कदर याद आ रही थीं...''

''अब क्या होगा? क्या कहता है डॉक्टर?''

''जिगर बदलवाना पड़ेगा ये कहकर फिर माँ से लिपट गए अम्मीजान इतने पैसे कहाँ से आएंगे?''

''बेटा मालूम तो करो लगेंगे कितने...''

''बाहर के ही देशां में जिगर बदला जा सकता है।''

''और क्या यहाँ नहीं बदल सकते। यहाँ भी तो बाहर से पढ़ कर आए हुए सैंकड़ों डॉक्टर पड़े हुए हैं।''

''अम्मीजान जिगर बदलने का ऑपरेशन बहुत मुश्किल होता है यहाँ नहीं हो सकता।''

''क्या बस लंदन और अमरीका ही में हो पाता है? अम्मीजान ने और बारीकी में जाते हुए पूछा।''

आज हकलाते हुए सरदार अमजद अली खान के होंठो पर कंपकंपाते हुए एक और नाम आया पर कहीं गहरे कुँएं में जाकर गुम हो गया। खंखारने लगे... गला साफ करते हुए बोले, ''अम्मीजान वो... क्या है कि... हिन्दुस्तान... में भी होता है और दूसरे देशों के मुकाबले में आधे पैसो में हो जाता है।

दुल्हन रानी ने चैन की सांस ली और अपने दुपट्टे से खुशी के आँसुओं को खुश्क करने लगीं... उनको महसूस हुआ कि अब उनका पप्पू स्वस्थ हो जाएगा, उसको मैं खूब पढ़ाउंगी वो जो चाहेगा वही पढ़ने दूँगी, मैं उसको छूत-छात, जाति पाति, ऊँच-नीच इन सब अंधविश्वासों से बहुत दूर रखूंगी... खुशी के सपने देखते-देखते एकदम से चौंकी और जल्दी से अम्मीजान का नाश्ता लेने रसोई में भागीं।

अम्मीजान ने आगे और इंक्वाएरी की कि भारत के किस शहर में होता है ऑप्रेशन...

''अम्मीजान मैं इतना बेगैरत नहीं कि दुश्मन देश में जाऊं और अपने इकलौते बेटे के जिस्म में किसी गैर मजहब वाले का जिगर लगवा दूँ। नहीं अम्मीजान ये मुमकिन नहीं है... बल्कि नामुमकिन है... बिलकुल नामुमकिन... उस देश में तो जाउंगा ही नहीं और ना ही मेरा बेटा कदम रखेगा उस देश की जमीन पर।

दुल्हन रानी अमजद अली को जोर-जोर से बोलता सुनकर घबराकर वापस आ गई और ये सुनकर जो वो बक रहे थे उनसे चुप नहीं रहा गया। आज उनके इकलौते लाड़ले बेटे के जीवन का सवाल था। दुल्हन रानी ने फैसला कर देने के अंदाज में कहा

''मैं ले जाउंगी अपने बेटे को... ये उसकी ज़िंदगी का सवाल है। मैं झूठी दुश्मनी और फालतू के ईगो की खातिर अपने बेटे का जीवन नहीं भेट चढ़ने दूंगी...''

दुल्हनरानी आज तक कभी भी इस तरह नहीं मुखतिब हुई थीं। आज तो बेहद रोब व दबदबे के साथ फैसला सुना दिया। ममता जब बोलती है तो उसको बड़े-बड़े देवी देवता भी नहीं रोक पाते। ममता पानी का वो रेला है अगर तूफान बन जाए तो सब कुछ तहस-नहस हो जाता है। अगर यही ममता प्यार की ज्वाला उज्जवलित कर दे तो सूरज की किरणें भी ठंडी पड़ जाती हैं।

दुल्हन रानी फैसला सुना चुकी थीं और अब सब चुप बैठे हुए थे।

आज तो पप्पू ने भी मुँह खोला ''अब्बूजी आप मुझे मर जाने देना चाहते हैं?''

बाप कांप गया ''नहीं'' ये कहकर पप्पू को जोर से सीने से चिपका लिया।

''तो फिर अब इंतजार किस बात का है कार्यवाई शुरु करो। मालूमात हासिल करो, फोन लगाओ डॉक्टरों को, उनसे बातचीत करो कि उस देश के किस शहर में जिगर की बीमारी का अच्छा इलाज हो सकता है। और हाँ कहाँ सस्ता भी पड़ेगा... आजकल वहाँ का मौसम भी अच्छा होगा। भई हमारे जमाने में तो गुलाबी जाड़ों में मजा आ जाता था। सरसों फूट रही होती थी पीले-पीले फूल सारे जग को चमका देते थे। मटर के फूल भी लाजवाब होते थे। हरे-हरे पत्तों में सफेद-सफेद नाजुक से फूल और वहां की मटर भी किस कदर लजीज होती थी... मीठी और खुश्बूदार... गद्दर अमरुद हम सब दरख्तों से ही तोड़कर खाया करते थे। दरिया का पानी उतर जाता था पर गुलाबी जाड़ों की चांदनी कितनी सुहानी होती थी... हम लड़कियां सारी-सारी रात चमन में बैठे गाने गा रहे होते... आज अम्मीजान जैसे अपने अतीत में डूब जाना चाहती थीं...

दुल्हन रानी के फैसले के बाद से अमजद अली खान खामोश हो गये थे और अम्मीजान बोल रही थीं। शायद खो गई थीं अपनी जवानी की मीठी यादों में... बंटवारे में आई हुई हर जवान लड़की अपना रोमांस वापस अपनी जन्म भूमि में ही ढूंढ पाती है। वहीं महसूस कर पाती है अपने सुनहरे दिन। बला से सपनों ही में क्यों ना हो। ना जाने कब से इस चिंगारी को दबाये-दबाये आज अम्मीजान की हिम्मत हो गई थी अपने नशीले अतीत के नशे में डूब जाने की। आज दादी पोते ने मिलकर सरदार अमजद अली खान को खामोश कर दिया था वो गर्दन झुकाये बैठा हुआ था... जमीन को घूरे जा रहा था... जैसे कोई खोई हुई कीमती चीज ढूंढ रहा हो।

''अब्बूजी... मुझे ले चलिये मैं जल्दी मैं जल्दी से खेलना, दौड़ना भागना चाहता हूँ।''

सर झुकाये जमीन को पैर के अंगूठे से कुरेदते हुए अमजद अली खान किसी गहरी सोच में डूबा हुआ था।

उसने सोचा ही नहीं था कि जिन बेगुनाहों का खून कर के, उनके बच्चों को यतीम करके, उनकी औरतों को बेसहारा कर देना चाहता था आज उन्हीं के सामने हाथ फैलाने जा रहा है... बेटे के जीवन की भीख मांगने...

अभी वीजा लेने की समस्या से भी जूझना था। अमजद अली को तो वीजा मिलना असम्भव सा ही लगता था मगर समस्या यह थी कि किसी पुरुष के बिना केवल महिलायें एक इतने बीमार बच्चे को लेकर अकेली जा भी नहीं सकती थीं। अम्मीजान चिंतित थीं कि कहीं अमजद अली कोई नाटक ना खड़ा कर दे कि उसे वीजा ऑफिस नहीं जाना है... पर वो तो सवेरे चार बजे अंधेरे में बासी मुंह ही जाकर लाईन में लग गया था। आज वो बेटे के कारण भारत का वीजा लेने वाली लाईन में लगा हुआ है... प्रार्थना कर रहा है वीजा मिल जाने की। और गुजरे हुए कल... रात के अंधेरे में बिना वीजा लिये अंदर घुस गया था और चार को मौत के घाट उतार आया था।

आज तक ये नहीं मालूम हो पाता है कि अपनी-अपनी जिदें पूरी करने के लिये क्यों गरीबों के गले कटवा दिये जाते हैं। ये बेचारे जवान बच्चे जो फौज में भरती होते हैं अपने परिवार की भूख मिटाने, उनके तन को ढांकने उनको चार अक्षर पढ़ जाने के लिये, जीवन के पथ पर आगे बढ़ते हुए उन जवानों के पदचिन्ह दिखाई तो देते हैं पर वापस आते नहीं नजर आते। सारी इच्छाएं सारे अरमान दिल के दिल में लिये शहीद कर दिये जाते हैं। बच्चे अनाथ हो जाते हैं। पत्नियों के हाथों की चूडियां तोड़ दी जाती हैं

उनके अरमानों का गला घोंट दिया जाता है सफेद कपड़े शरीर पर लपेट दिये जाते हैं और विधवा का पर्चा काट दिया जाता है। मांए रो-रो कर आँखों की रौशनी खो देती हैं उनके सारे सपने अधूरे रह जाते हैं। चंद लाख रुपये उनके जीवन की कीमत उनके घर वालों को ददे दी जाती है और फिर पलट कर नहीं देखा जाता कि परिवार किस नरक में पहुंच गया है।

आज लाईन में लगे-लगे अमजद अली सोचे जा रहा था कि फॉर्म कैसे मांगेगा... लाईन धीरे-धीरे आगे को बढ़ती जा रही थी... दिल कि रफ्तार लाईन से बहुत तेज चल रही थी... हिम्मत पस्त होती जा रही थी। फॉर्म लेते हुए उसके हाथ कांप रहे थे... गले में थूक फंस गया था। कुछ कहे बिना फॉर्म अधिकारी के हाथ से झपट लिया और उसको गोल लपेट कर बंदूक की नाली की तरह बना लिया और एक आँख पर रख कर दूसरी आँख बंद कर ली कि जैसे निशाना लेने जा रहा हो... फिर आप ही चौंक कर घबरा गया और चारों ओर चोरों की तरह ताकने लगा, फिर तेज-तेज कदम उठाता हुआ घर की ओर भागा और फौरन ही फॉर्म भरने बैठ गया। जो कुछ जानकारी मांगी गई थी वो सब भरने के बाद वीजा मिलना तो सम्भव लगता था। पर उसके भारत जाने का कारण इतना भावात्मक था कि देर तो लगी पर एक एन.जी.ओ की सहायता से वीजा मिल गया।

अमजद अली खान समझ नहीं पा रहा था कि वीजा मिल कैसे गया... हो सकता है हिन्दुस्तानी डॉक्टर के पत्र के कारण मिला हो। उस पत्र में तो मेरे इस पेशे का जिक्र भी नहीं किया गया है। ये हिन्दुस्तानी किस मिट्टी के बने होते हैं जो मुझ जैसे घटिया सैनिक को अपने देश में आने दे रहे हैं...

आज घर में पप्पू के बीमार पीले चेहरे पर भी पीली सी मुस्कान फैलल गई। ''अब्बूजी अब मैं ठीक हो जाउंगा ना दादी अम्मां के घर जाकर... ?''

अमजद अली खान चौंक गया पप्पू के मुंह से उस देश का जिक्र सुनकर। ''हां बेटे, दुआ करो कि तुम्हारे लिये नए जिगर का इंतजाम हो जाये। एक सेकंड के लिये अमजद अली ये सोचकर कांप गया कि निन्नावे प्रतिशत जिगर तो किसी हिंदू ही का हो सकता है। और जो खून चढ़ाया जायेगा वो भी किसी हिंदू का ही होगा... ना मालूम जात क्या होगी...!!

दुल्हन रानी जाने की तैयारी कर चुकी थीं। वो अपना काम खामोशी से कर लिया करतीं। अम्मीजान पोते के लिये परेशान थीं पर अकेले छुट जाने के लिये अधिक घबरा रही थीं... पैसे खर्च होने का भी कारण था। अपनी दुल्हन रानी को भी ऐसे गम्भीर समय में रुकने को नहीं कह सकती थीं। अमजद अली खान इस काबिल नहीं थे कि उनसे अकेले जाने की आशा की जा सकती। दुल्हन रानी ये फैसला भी कर दिया कि अम्मीजान हमारे साथ चलेंगी। उनको भी अपना घर याद आता है...

अमजद अली खान तो भौचक्के रह गये अपनी माँ की धरती पर पहला कदम रखते ही उनको महसूस हुआ जैसे बातचीत करने के संस्कार कुछ अलग से हैं... आम तौर से एक नर्माहट सी थी सब के रवैये में। वहां कोई किसी का नाम बिना 'जी' लगाये नहीं ले रहा था। पहले तो फौजी जवान को ये बात समझ नहीं आई। वो समझे थे कि शायद ये परिवार का नाम है पर सबका एक ही नाम... ? उस समय चौकें जब उनको भी आवाज दी गई 'अमजद अली खान जी'...

अमजद अली खान भयभीत थे कि कहीं टैक्सी वाला निचोड़ ना ले। पर टैक्सी तो अस्पताल की ओर से भेजी गई थी... या खुदा ये माजरा क्या है... ये 'प्रीपेड' टैक्सी चाहे तो पैसे मांग ले पर इनसे तो आप ही बता दिया कि किराये की चिंता ना करें अस्पताल पैसे देगा। ये सब देखने में तो हमारी ही शक्ल सूरत के हैं एक ही सा रंग... आँख... कान... नाक... बाल... जिस्म सब एक सा... पर मिजाज क्यों इतना अलग... ? अब अमजद अली खान से चुप नहीं रहा गया... अम्मीजान से पूछ ही लिया कि ''ये इतने ठंडे मिजाज के क्यों हैं ?''

अम्मीजान तो अपने अतीत में डोल रही थीं बहती चली जा रही थीं... खो गई थीं उन मधुर यादों में...शांत और ठंडी लहरें उनको कहीं से कहीं बहाये लिए चली जा रही थीं। हवा का एक हल्का सा झोंका उनके चांदी जैसे बालों को छेड़ जाता तो अम्मीजान मुस्कुरा देतीं... उनके साथ तमाम कायनात झूम उठती हर ओर से कहकहे और बादामी लम्बी-लम्बी पलकों वाली आँखें गुदगुदाने लगतीं... अपने घर जो आ गई थीं...

अमजद अली की आवाज पर अम्मीजान चौंक गईं। कुछ शरम भी गईं कि कहीं बेटे को अंदाजा ना हो जाये कि वो किन ख्यालों

में गुम थीं... उनका सब कुछ तो यहीं रह गया था... जो कपड़े पहने थीं उसी में ले जाई गई थीं। कहती रहीं मुझे ना ले जाओ... यहां इतने लोग हैं मैं भी रह लूंगी पर कौन सुनता था किसी की आवाज... एक ही धुन थी सबको... अपने घर जाने की... इनसे कोई बताये कि ये मूर्ख अपना घर तो छोड़ कर जा रहे थे... मिनटों में अपने पराये हो गए... लोहे की सलाखों से सीमायें बांध दी गईं... एक दूसरे से नफरत का बढ़ावा दिया जाने लगा... जो जितनी नफरत करता जितनी अधिक गालियां देता वो उतना ही बड़ा देश भक्त समझा जाता...

घरों में बैठे काम कम बातें ज्यादा होतीं... पैर पर पैर चढ़ाकर चार लोग बैठ जाते, वातावरण खराब हो जाता। वाद-विवाद गरम होने लगता आवाजें भी तेज होने लगतीं। बहस जितनी तेज होती उतनी ही तेजी से पैरों की उंगलियां मरोड़ी जातीं। इस नये अपनाये हुए देश में आये भी बरसों बीत गये पर आज भी एक समूचा देश टूट जाने पर बहस होती रहती है। हल कुछ नहीं निकलता... खाना निकल जाता है तो खाने पर बैठकर पीछे छोड़कर आये घर और खाने की चीजों को याद करते-करते सोने का समय हो जाता और कुछ घंटों के लिये आकाशवाणी विश्राम को बंद हो जाता... जल्दी ही खुल जाने के लिये।

''हां बेटे, मैं भी तो यही समझाती रही हूँ कि कोई फर्क नहीं हम सब में। सच पूछो तो हम सब एक ही संसार के रहने वाले हैं एक ही जगह से आये हैं... जाना भी एक ही जगह है... हमारा खाना-पीना उठना-बैठना सब एक सा है। ना मालूम कौन लोग हैं जो हमको एक दूसरे से प्यार नहीं करने देते... हमारे बीच घृणा के बीच बोते और नफरत की खेती काटते रहते हैं। अगर रहने वालों के स्वभाव ठंडे, नरम और शान्त हों तो धरती माता भी उस प्रेम को समझती ठंडी रहती हैं...''

पप्पू भी यहां आकर खुल गया था... अपने घर में तो चुप पड़ा कराहता रहता था।

हवाई अड्डे पर जो टैक्सी आई थी उसके ड्राईवर साफा पहने दाढ़ी में सरदारजी को देखते ही पप्पू ने जोर से कहा, ''अस्सलाम अलैकुम मौलाना...''

''वालैकुम अस्सलाम पुत्तरा... तुसी पाकिस्तान से आये हो?''

असी भी लहोर दे हैं...''

अमजद अली खान हिल गया कि अब क्या होगा... पप्पू ने ये क्या हिमाकत की... हम सब को मरवा दिया। टैक्सी वाले को मालूम हो गया कि हम मुसलमान हैं और पड़ोसी देश से आये हैं... दुल्हन रानी तो मैके आ गई थीं। खमोशी से खुश हुए जा रही थीं अकेले-अकेले...अम्मीजान भी खामोश थीं। जैसे खुशी के हर क्षण को अपने भीतर समा लेना चाहती हों। ये भी डर था कि कहीं अमजद अली खान इन सास-बहू की खुशियों की दिल में उठती हलचल को भांप ना जाये।

ट्रैफिक बहुत था... गाड़ी धीरे-धीरे- चल रही थी। चौड़ी-चौड़ी सड़कें... ऊंचे-ऊंचे पुराने दरख्त जो अम्मीजान के जमाने में बच्चे थे आज वो भी जवान हो गये थे। मोटरें, बसें, स्कूटर्ज, और रिक्शे सभी रेस में लगे हुए थे। अमजद अली खान एकटक बाहर ही झांके जा रहा था। दुल्हन रानी का मन किया सड़क के किनारे ठेले पर बिकती पाव-भाजी खाने का पर डॉक्टर ने सख्ती से मना किया था कि कोई भी सड़क पर बिकता खाना ना खाये। जिगर में इंफेक्शन ही तो होकर इतनी भयंकर बीमारी लगी है पप्पू को।

अमजद अली गाड़ी में बैठा सोचे जा रहा था कि मैं मुसलमान हूँ पड़ोसी देश से आया हूँ कोई मुझे शक की नजरों से देख ही नहीं रहा है। कहीं ये लोग मुझे खुदानख्वास्ता हिंदू तो नहीं समझ रहे हैं... मैं तो सोच रहा था यहां हिंदुओं के बाल उस्तरा फिरे होंगे और पीछे चुटकी लटक रही होगी किसी-किसी में तो गांठ भी लगी होगी... मगर ये कैसे हो गया हम सब एक ही से लगने लगे... उसके मन में हजारों प्रश्न डूबते और उभरते रहे... वो खुद जैसे आकाश में उड़ रहा था। वहां से नीचे देख रहा था...

''आ गए आपलोग... आइए तशरीफ लाइए। इस बार अम्मीजान और दुल्हन रानी भी चौंक गईं...

''मैं डॉक्टर सिंह हूँ...''

हड़बड़ा गईं दोनो। ''इतनी अच्छी उर्दू बोलते हैं आप...!''

''ये उर्दू तो नहीं है। हिन्दुस्तानी भाषा है। यहां हम सब एक आकाश तले रहते हैं एक ही सा खाते-पीते, पहनते-ओढ़ते, और एक ही भाषा बोलते हैं।

डॉक्टर प्यार से बात करता जाता है और पप्पू से उसकी बीमारी के बारे में मालूम करता जाता। माँ बाप ने आज पहली बार पप्पू को बड़ों की तरह अपनी बीमारी के बारे में बताते सुना था। पूरी जांच के बाद डॉक्टर ने बताया कि बच्चे का आधा जिगर खत्म हो चुका है। इएलिए आधे ही ट्रांसप्लांट करने से बच्चे का जीवन सम्भल जायेगा। डॉक्टर पप्पू से खूब बातें करता रहा। जब जिगर का पूरा चेकअप हो गया तब पप्पू से डॉक्टर ने बताया कि वो किस बीमारी का डॉक्टर है... आज पप्पू की आँखों में सितारे जगमगाते दिखाई देने लगे थे। उसको भी अपने जीवन में ठंडी दूधिया चांदनी फैली दिखाई देने लगी। डॉक्टर ने पप्पू को खून के टेस्ट आल्ट्रासाउंड एम.आर.आई. वगैरा के लिये भेज दिया था।

आखिर अमजद अली ने पूछ ही लिया कि ''आधा जिगर आयेगा कहां से? ''अच्छे और समझदार लोग अपनी विल में देते हैं कि मरने के बाद अगर मेरा कोई अंग किसी के काम आ जायेगा तो मेरी आत्मा चैन से रहेगी।''

''या अल्लाह कैसे-कैसे लोग होते हैं... इतने बहादुर...इतने अजीम... इतने रहमदिल'', अमजद अली का जी व्याकुल हो उठा... आँखें भर आई... उसको नहीं समझ आया कि वो इतना भावुक क्यो हो गया। कभी-कभी जब मंजिल निकट आती नजर आती है तो इन्सान अंदरूनी खुशी को बर्दाश्त करने के लिये आँसुओ का सहारा लेता है... खुशी के आँसू, गम के आँसू... शर्मिदगी के आँसू... ये आँसू भीतर की गंदी मैल को धो देते हैं... भीतर सड़ते हुए पश्चाताप के दर्द को भीतर से बाहर निकाल देते हैं और जानवर से इन्सान बनाने में सहायता देते हैं।

अमजद अली भावुक हुए जाता था यहां के लोगों का व्यवहार महसूस कर-कर के। कुछ गिरने की आवाज सुनकर चौंक जाता... सतर्क हो जाता फिर आप ही शर्मिदा हो जाता। पश्चाताप नींदें हराम कर देता है, घुन की तरह चाटने लगता है। अमजद अली के पास पश्चाताप के अतिरिक्त और कुछ था ही नहीं। सोचता मैं इन प्रेम के व्यवहारों का कर्जा कैसे उतारूंगा...

डॉक्टर सिंह भी इस परिवार के पास दो तीन बार आता सरहद के, उस पार बसे बिछड़े हुए परिवारों के बारे में बातें करता वहां के गली-कूचे, खेत-खलियानों के बारे में पूछता उस चौड़ी हरे-हरे दरख्तों की लाइन वाली सड़क... उसपर वो सफेद घर के बारे में भी जानना चाहता जहां जल्दी में भयंकर हमले के खौफ से उसकी नानी अम्मां छूट गई थीं। काश वो इतना बड़ा होता कि उनको गोद में उठाकर भाग पाता... डॉक्टर सिंह ये सब बहुत हल्की आवाज में बिना गुस्सा किये कहता और चुप हो जाता। गहरी सांस लेकर बोलता 'काश हम सब साथ ही रह रहे होते... एक ही होते... पप्पू जी को जो जिगर लगाया है वो मेरे परिवार के बच्चे ही का है... मैंने सोचा इस बच्चे की पूरी हिस्ट्री मैं जानता हूँ... पप्पू जी से बेहतर और कौन हो सकता है जिसे मैं अपने परिवार के बच्चे का जिगर दे सकता... वो अपना बच्चा था ये अपने देश का बच्चा है...'

वो सुनसान डोरी फिर से कपड़ों से आबाद हो गई... मोगरे के फूलों की खुशबू चारों ओर फैलने लगी... हवा ने उस खुशबू को अपनी झोली में भरकर खुशी से झूम-झूम कर नाचना शुरु कर दिया। वापस आकर अम्मीजान ने भी गजरा पहनना शुरु कर दिया... दुपट्टा भी धनक के रंगों में रंगा जाने लगा।

...खूबसूरत यादें लेकर अम्मी, अमजद, पप्पू और बहूरानी वापिस अपने मुल्क अपने शहर पहुंच गये... पप्पू के चेहरे की रंगत और सेहत दोनों बेहतर हैं। आज अमजद का कोई शिकायत नहीं कि उसके बेटे के जिस्म में हिन्दू जिगर या खून प्रवाह कर रहा है।

दुल्हन रानी अमजद को चोरी-चोरी देखे जातीं कानों में फूलों की बालियां पहन कर हल्के भूरे बालों की मोटी सी चोटी आगे को डाल लेतीं। पास खड़ी होकर अम्मीजान से नजरें बचाकर चुपके से अमजद के बालों में उंगलियां फेर देतीं...

'अम्मीजान देख रही है'... अमजद डराने को कहते... और फिर दुल्हन रानी का चौंक जाना देख कर जोर से हँसते...'

अम्मीजान ने पूछ लिया 'क्या बात है...? बेटे! अब ये बताओ कब तलक बैठे हँसते रहोगे? काम वाम पर जाने का इरादा नहीं है क्या?'' ''नहीं अम्मीजान अब उस काम पर वापिस जाने का कोई इरादा नहीं... अब ज़िंदग़ी का एक ही मकसद हो सकता है... अब मैं दुनियां को आपकी निगाह से देखना चाहता हूँ... दोनों आसमानों के रंग जो एक ही हैं...।

ooo

वह लड़की

नरेंद्र कोहली

खाने के बाद बिल आया। मैं विचित्र सी मानसिकता में था। मेरा पौरुष मुझे धकिया रहा था कि मैं बिल अपनी ओर खींच लूं। उस बेचारी सत्या से सबके खाने का बिल दिलवाएंगे हम। ... पर पचासवीं वर्षगांठ तो उसके विवाह की ही थी। निमंत्रित भी उसी ने किया था। तो बिल कोई और क्यों देगा? उसकी सखियां तो बिल्कुल ही नहीं देंगी। लगता है पचास वर्ष पहले उसने विवाह नहीं किया था, कोई पाप किया था, जिसका भुगतान वह अब कर रही थी।

सम्पर्क: 175 वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली 110034

वह लड़की मेरी सहपाठी थी, मेरे साथ पढ़ती थी। नहीं। शायद यह कहना गलत है कि मेरे साथ पढ़ती थी, या मैं उसके साथ पढ़ता था। वस्तुत: हम दोनों ही एक कक्षा में, एक कमरे में बैठ कर, अन्य नब्बे लड़के- लड़कियों के साथ, अध्यापकों के व्याख्यान सुना करते थे।

हम इस प्रकार दो वर्षों तक पढ़ते रहे।

वह समय अर्थात, सन् 1961 ई. से 1963 ई., ऐसा नहीं था कि साथ पढ़ते थे तो सामना हो जाने पर गले मिलते हों या परस्पर हाथ मिलाते हों। नमस्ते करते हों या इस प्रकार का कोई भी अभिवादन करते हों। हां कुछ न कर सकने की बाध्यता में अपने हाथ ही मल सकते थे।

मैं हिंदी विभाग के कमरे में घुसा तो देखा कि एक लड़की सशब्द सिसक रही थी। उसकी सहेलियां उसे घेर कर उसके चारों ओर एक अभेद्य दीवार बनी बैठी थीं।

आप एक रोते हुए आदमी से यह भी नहीं पूछ सकते कि वह रो क्यों रहा है; और विशेष रूप से यदि रोने वाली एक लड़की हो तो...। एक रोती हुई लड़की से एक लड़का उसके रोने का कारण पूछे, इससे अधिक निर्लज्जता एक और क्या हो सकती है। फिर भी मैंने किसी से पूछ ही लिया, ''वह रो क्यों रही है? उसके परिवार में सब कुछ ठीक-ठाक है? सब लोग सकुशल तो हैं?'' ''चुप बेशरम।'' उत्तर मिला, ''उसके परिवार में अकुशलता क्यों होगी। सब लोग सकुशल हैं। यह तो यूनिवर्सिटी का मामला है।'' ''यूनिवसिर्टी में क्या हुआ है? कोई दीवार गिर गई है क्या? या गेट के बाहर, दीवार से लगकर, वह गोलगप्पे बेचने वाला कहीं भाग गया है?'' ''नहीं।'' उसने कुछ बिगड़ कर कहा, ''एक लड़के ने उससे कह दिया है कि वह उसे पसंद करता है। बेचारी बदनाम हो गई है। इसलिए रो रही है।''

''तो वह अपनी बदनामी का शोक मना रही है। अरे वह लड़का उसे पसंद ही तो करता है, कोई घृणा तो नहीं करता। न वह उसे भगा कर ले गया है। न ले जाएगा।'' ''बंद करो बकवास। समाज और जमाने को समझने का प्रयत्न करो। अलीगढ़ यूनिवर्सिटी में तो एक लड़का और लड़की एक गज की दूरी पर

खड़े होकर, परस्पर बात भी कर लें तो मान लिया जाता है कि लड़की गर्भवती हो गई है।....''

''अरे अलीगढ़ और दिल्ली' में कोई अंतर भी है या नहीं।'' पूछने का मन तो था कि दोनों में से एक अलीगढ़ में हो और दूसरा दिल्ली में ... और वे परस्पर फोन पर बात कर लें तो लड़की गर्भवती होती है या नहीं? ... पर पूछा नहीं।''

....चलो छोड़ो पिछली बातें। मैं तो केवल इतना ही कह रहा था कि हम दोनों - मैं और वह लड़की - दो वर्ष एक ही कक्षा में पढ़ते रहे किंतु कभी नमस्कार -चमत्कार तक भी नहीं हुआ। वे सारे लोग जो दो वर्ष एक ही कमरे में बैठ कर पढ़ते रहते हैं। दो वर्ष समाप्ति होने पर साथ-साथ दाना चुगने वाले कबूतरों के झुंड के समान अज्ञात दिशाओं में उड़ जाते हैं। पता ही नहीं रहता कि कौन पृथ्वी के किस छोर में समा गया।

मैं भी नहीं जानता कि एम.ए. के पश्चात् वह कहां चली गई। उसे खोजने अथवा याद करने का कोई कारण भी तो नहीं था। मैं अपनी नौकरी, लिखाई-पढ़ाई, पत्नी और बच्चों में व्यस्त था। वह मेरी प्रिया तो थी नहीं कि मैं उसे खोजने अथवा उसकी खोज-खबर रखने का प्रयत्न करता अथवा उसे स्मरण कर आंसू बहाता। सत्य तो यह है कि मेरी स्मृति के संसार में उसका कोई अस्तित्व ही नहीं था।

कितना समय बीता, उसकी गणना अब मेरे पास नहीं है। बस एक दिन एक विवाह में सम्मिलित होने का निमंत्रण मिला। उसने बताया कि उसकी बेटी का विवाह है और दिल्ली में ही है। कनॉटप्लेस के एक होटल में विवाहोपरांत उनका स्वाागत-समारोह है। वहां हमारे एम. ए. के दिनों के अनेक साथी मिलेंगे। उसकी सहेलियां तो होंगी ही। मैं अवश्य आऊं ओर सपत्नीक आऊं।

तो पहली बार मेरी चेतना में एक सूचना जुड़ी कि सत्या नाम की एक लड़की मेरी एम.ए. की कक्षा में थी। मुझे चाहे वह याद न रही हो किंतु उसे मेरी याद थी और मेरा इतना महत्व तो उसके मन में था कि उसने अपनी बेटी के विवाह में मुझे आमंत्रित किया था।

यह तो आयोजन स्थल पर जा कर पता लगा कि एम. ए. के दिनों में लेडी श्रीराम कॉलेज की लड़कियों का अपना एक गुट था, जिनमें से अनेक इस स्वागत समारोह में आई थीं। वे लोग प्रायः एक दूसरे के संपर्क में रहती थीं। मैं उनमें से केवल मल्लिका को ही पहचानता था।

मल्लिका मुझे अच्छी लगती थी। एम. ए. के दिनों में भी अच्छी लगती थी। कभी-कभार थोड़ी बात भी हो जाती थी। कभी तरस कर ही रह जाता था। पर ताक में तो रहता ही था कि उससे बात-चीत करने के लिए कुछ दिव्य क्षण प्राप्त हो जाएं। वह भी अपने प्रकार की चतुर कन्या थी। जानती थी कि बिना किसी कड़वाहट के मुझ से कैसे पीछा छुड़ाया जा सकता है। इसलिए न कभी लक्ष्मण रेखा से बाहर निकलती थी, न मुझे प्रवेश करने देती थी।

तो आज भी निमंत्रण उसी के माध्यम से आया था। वह जानती थी कि मैं उसे पसंद करता था। उसने उस बात को आज भी याद रखा था। किंतु उसके कारण वह कभी रोई नहीं थी। मैं उससे मिलने के लोभ में चला गया, नहीं तो मुझे उस शादी से क्या लेना-देना था।

मैंने वधू को आशीर्वाद दिया और मन ही मन सोचता रहा कि क्या वह जानती है कि मैं साहित्यकार हूं। यह बात मेरे लिए बहुत महत्वपूर्ण थी।

''कुछ पढ़ती-लिखती भी हो?'' मैंने पूछा। ''डेंटल सर्जन हूं।'' उसने कहा। तो अपनी दृष्टि में वह पढ़ी-लिखी तो थी ही। मेरे उपन्यास नहीं पढ़े तो क्या हुआ।... तभी उसका पति भी आ गया। हाथ मिलाया और उसे भी बधाई दी।

वह लड़की, जो मेरे साथ पढ़ती थी, उसका नाम सत्या था। उसके पति बता रहे थे कि विवाह के पश्चात् उसका नाम सावित्री कर दिया गया था। यह उनके समाज की परंपरा थी। विवाह के पहले मायके का नाम और विवाह के पश्चात् ससुराल का नाम। यह शायद इसलिए था कि विवाह के पहले के उसके मजनूं विवाह के पश्चात् उसका पता भी न पा सकें।

मेरी दृष्टि में उससे यह भेंट भी ऐसी ही थी, जो कभी शायद याद भी न रहे। मैंने उसकी तुलना में तो कहीं अधिक बात-चीत मल्लिका के साथ ही की थी।

....फिर एक दिन मल्लिका का ही फोन आया कि सत्या दिल्ली आई हुई है। वह अपनी सारी सखियों से मिलना चाहती है, इसलिए वे दोपहर के भोजन के लिए उसके घर पर एकत्रित हुई हैं। मैं समझ रहा था कि सखियों से तात्पर्य था, उसका एम. ए. का लेडी श्रीराम कॉलेज का दल। वे चाहती हैं कि मैं भी अपनी पत्नी के साथ मल्लिका के घर पहुंचूं। उनके साथ दोपहर का भोजन भी करूं।

इस बार मुझे सत्या के विषय में सब कुछ स्मरण हो आया था। सब कुछ में था ही क्या। हां, इतना स्मरण तो था कि एम. ए. की कक्षा में मैं भी था और अन्य लोगों के साथ वह भी थी। प्रस्ताव बहुत आकर्षक था। मल्लिका का घर, एम. ए. की सहपाठिनें और सत्या की उपस्थिति। उस समय मैं जहां था, वह स्थान संयोग से मल्लिका के घर से दूर भी नहीं था। किंतु उस समय मैं विचित्र स्थिति में फंसा हुआ था। मेरी भाभी अस्पताल में भर्ती थीं। वस्तुत: हम उन्हीं को मिल कर अस्पताल से लौट रहे थे। ... उधर पीछे घर पर कोई नहीं था और दोनों पोते स्कूल से लौटने वाले थे। उन्हें स्कूल बस से उतरते ही लेना था। वहां उन्हें लेने के लिए कोई नहीं होता तो उनकी बस का चपरासी उन्हें उतारता ही नहीं, लौटा कर वापस स्कूल ले जाता और हमें फोन करता कि हम उन्हें स्कूल से ले जाएं। स्कूल हमारे घर से प्राय: तीस किलोमीटर था। फिर वे भूखे भी तो बैठे रहते। ऐसे में हम दोनों मल्लिका के घर कैसे जा सकते थे। सत्या आई हो या न आई हो।... मैंने अपनी मजबूरी जता दी किंतु जानता हूं कि उन सारी सखियों ने उसके लिए मुझे आज तक क्षमा नहीं किया।

उसके बाद भी हम एक बार मिले थे। मल्लिका ने सूचना दी कि सत्या के विवाह की पचासवीं वर्षगांठ है। वह दिल्ली आई हुई है। वे सब एक रेस्ट्रां में मिल रही थीं। मैं इस बार मना न ही करूं तो मेरे स्वास्थ के लिए ठीक रहेगा। ... और अपनी पत्नी को भी ले कर आऊं। किसी पड़ौसन को लाने से भी काम नहीं चलेगा। ... यह मल्लिका का परिहास था।

मना करने का कोई कारण भी नहीं था।

अपनी समय-निष्ठाई या उन लोगों से मिलने की उत्कंठा में हम दोनों सब से पहले वहां पहुंच गए। रेस्ट्रां में कोई परिचित चेहरा दिखाई नहीं दिया। निराश, लौटने की सोच रहा था कि एक प्रौढ़ महिला सीढ़ियों से उतरती दिखाई दी; किंतु यह महिला सत्या नहीं हो सकती थी। यह वह लड़की नहीं थी। फिर भी मैंने हल्के से पुकारा, ''सत्या।'' वह मुड़ी। पर अभी तक उसकी आंखों में मेरे लिए पहचान नहीं थी।

''मैं अभिलाष।''

''ओह।'' वह हल्के से मुस्कराई, ''मेरी आंखें भी कुछ धुंधला गई हैं या स्मृति-लोप हो रहा है। या फिर समय ने तुम्हें ही कुछ बदल दिया है।... विशेष आग्रह कर बुलाया और तुम्हें ही पहचान नहीं पाई। तुम्हें मालूम है, तुम्हारे पुरस्कारों की सूचना मैं ही अपनी सखियों को देती हूं।'' ''जानता हूं। उन लोगों के पास मेरे विषय में सारे समाचार पुणे से ही आते हैं।'' ''तुम सुरभि हो?'' उसने मेरी पत्नी से पूछा।

''हां।'' ''तुम से कभी भेंट नहीं हुई। मल्लिका से सुना भर है। या शायद मेरी बेटी के विवाह के अवसर पर एक बार हम मिले हैं। .... ओह यह मेरी स्मरण शक्ति ...'' ''मैं विश्वविद्यालय में तुम लोगों से एक वर्ष पीछे थी। संयोग ही है कि मेरी दृष्टि कभी तुम पर नहीं पड़ी। कभी साक्षात्कार नहीं हुआ।'' ''सारी लड़कियों की दृष्टि तो अभिलाष पर थी; फिर मेरी ओर ध्यान कौन देता।'' सुरभि मुस्करा कर रह गई। एक-एक कर सब लोग आ गए। वे जो लड़कियां थीं, अब प्रौढ़ाएं हो चुकी थीं। किसी के पास अपनी कोई बात नहीं थी। हिंदी साहित्य में एम. ए. तो उन सब ने किया था; किंतु अब साहित्य उनके आस-पास भी नहीं फटकता था। पढ़ने-लिखने को वे जहालत मानती थीं। जो पढ़ती भी थी वह केवल अपने पति की पसंद का अंग्रेजी का अखबार पढ़ती थी।

''अभिलाष को उसकी नई पुस्तक पर एक लाख रुपयों का पुरस्कार मिला है।'' सत्या ने कहा। ''हमारे न्यूजपेपर में तो कोई ऐसा समाचार नहीं छपा।'' मालिनी ने जैसे समाचार को वीटो ही कर दिया। उसका आशय स्पष्ट था कि यदि उसके न्यूजपेपर में समाचार नहीं आया है तो वह उसे स्वीकार नहीं करेगी। ''हिंदी की पुस्तक का पुरस्कार है, अंग्रेजी वाले अपने हिंदी-द्वेष के कारण उसे नहीं छापते।'' मल्लिका ने कहा।

''ऐसा कुछ नहीं है।'' मालिनी ने कहा, ''मेरे पोते को इंटर स्कूल डिबेट में पुरस्कार मिला था। डिबेट हिंदी में ही थी। न्यूजपेपर में वह भी छपा था। ''अभिलाष का समाचार तो उसके चित्र के साथ पुणे के मराठी समाचारपत्र में भी छपा था।'' सत्या ने कहा, ''मैंने वहीं पढ़ा था। और मल्लिका को भी सूचना दी थी।'' मालिनी ने कोई उत्तर नहीं दिया। अर्थात् वह इस सूचना को सत्य न मानने पर अब भी अड़ी हुई थी। ''मेरा पोता ...''

बेटे-बेटियों से भी आगे बढ़ कर वे अपने पोते-पोतियों, दोहते-दोहतियों की चर्चाओं में लगी हुई थीं। उनके वे सारे बच्चे बहुत ''क्यूट'' थे, बहुत प्यारे थे, बुद्धिमान और प्रतिभाशाली थे। उनको गोद में लेते ही जैसे स्वर्ग धरती पर उतर आता था। वैसा आनन्द तो ब्रह्मानन्द में भी नहीं था।

.....पोते तो मेरे भी हैं; किंतु मेरा संसार उन्हीं तक सीमित नहीं

है। इसलिए मेरे पास और विषय भी थे। ''अच्छा एक और बात भी बताऊं मालिनी, शायद वह समाचार तुम्हारे अंग्रेजी के समाचारपत्र में भी छपा हो।'' ''ऐसा कौन सा समाचार है?'' नकचढ़ी मालिनी का चेहरा कुछ और विकृत हो गया। ''अभिलाष को इस वर्ष भारत सरकार ने पद्मश्री के सम्मान से अलंकृत किया है। आशा है तुमको इस में भी कोई महत्व की बात दिखाई नहीं देगी।'' सत्या ने कहा, ''हमें इस बात पर गर्व होना चाहिए कि हमारे एक मित्र को इतना बड़ा सम्मान मिला है।'' ''मित्र।'' उसने जैसे नीम के पत्ते चबा लिए थे, ''बड़ा क्यों है। पद्मा एवार्ड्स में सब से छोटा है। कोई भारत-रत्न तो है नहीं।'' ''वह भी मिल जाएगा, पर तुमको उसमें भी कोई खुशी नहीं होगी। तुम अपने पोते को खेलाओ ...'' मल्लिका ने कहा।

मैंने देखा संवाद कुछ कटु हो चला था। ''अरे कोई खाने-वाने की ओर भी ध्यान दो। सत्या को उसके विवाह की पचासवीं वर्षगांठ की बधाई दो। ...'' ''अरे हां। अभिलाष ठीक कह रहा है। मैन्यू मंगाओ।'' छिपकली ने कहा, ''मुझे भूख लग रही है।'' मैं उस लड़की का नाम भूल गया हूं। उसे हम एम. ए. के दिनों में भी छिपकली ही कहते थे। उसके सामने तो नहीं, किंतु मन में अब भी वही कहता हूं। मेरी स्मृति में उसके साथ यह नाम ऐसा चिपका है कि मिटाए नहीं मिटता।

''चलो खाना मंगाते हैं।'' सत्या ने मैन्यू के पृष्ठ उलटने आरंभ किए, ''क्या लोगे अभिलाष?''

''मेरे लिए तो सुरभि ही चुनेगी। भोजन का चुनाव मेरे लिए बहुत बड़ा सिर-दर्द है।'' ''घर में भी वही खिलाए और बाहर भी।'' ''अरे पत्नी है तो घर-बाहर सब उसी के सहारे तो है। घर में कोई और, और बाहर कोई और, यह मेरी नीति नहीं है।'' ''वाह रे जोरू के गुलाम।'' मालिनी ने कहा। ''यह आशिकी है आशिकी।'' सत्या ने कहा, ''बुल्ले शाह ने कहा है न रू तू जहान तों की लैना, तैनूं तां यार चाहिदा।''

''बड़ी देर में समझ आया।'' मैंने हंस कर बात उड़ा दी। अब इस अवस्था में इस चर्चा को आगे बढ़ाने का मेरा कोई इरादा नहीं था। पता नहीं कि एम. ए. में ''पद्मावत'' पढ़ी-लिखी इन महिलाओं को अब ''यार'' का स्वरूप समझ में आएगा भी या नहीं।

खाना मंगा लिया गया। अब महिलाओं के लिए खुला मैदान था। किस सब्जी में कौन सा मसाला पड़ा है; उसमें तड़का किस चीज का है; उसे बघारा कैसे गया है; उसे अन्य किस विधि से पकाया जा सकता है क्या; विभिन्न प्रदेशों में उसे किस प्रकार पकाया जाता है ...

जाने क्या बात है कि मेरा भोजन के साथ संबंध केवल उसे खाने मात्र से है। उसके विषय में और कोई चर्चा मुझे कभी रास नहीं आई। कमी मुझ में ही है कि मैं उससे संबंधित किसी प्रकार की भी चर्चा में रस नहीं ले पाता। ... इसलिए चुपचाप खाता रहा। ''सुरभि,'' सत्या ने कहा, ''अभिलाष का ध्यान रखना। वह भूखा ही न रह जाए।'' ''वह ध्यान रखेगी ही।'' छिपकली ने कहा, ''घर में भी तो रखती ही होगी।'' ''सत्या आतिथेय धर्म का निर्वाह कर रही है।'' मैंने कहा, ''तुम लोग अपना-अपना ध्यान रखो। मेरी ओर ताकती रहोगी तो मैं खा भी नहीं पाऊंगा।''

मन में जो वाक्य था, वह प्रकट नहीं हुआ, ''अब ऐसी तो तुम लोग रही नहीं कि तुम्हें देखता रहूं और मेरा पेट भर जाए। हम तुमको ताकें तो तुम हम को ताको।'' मालिनी ने कहा। ''उसने तुमको तब नहीं ताका, जब तुम जवान थीं...।'' मल्लिका ने कहा। ''तुमको तो ताकता था न।'' मालिनी तड़पी। उसका ईर्ष्या से जलता हृदय सामने प्लेट में आ गया था। ''मुझे तो अब भी ताकता है।'' मल्लिका बोली। ''मत जलाओ बेचारी को।'' सुरभि ने हस्तक्षेप किया। मालिनी ने बुरा सा मुंह बनाया और अपनी प्लेट पर झुक गई।

खाने के बाद बिल आया। मैं विचित्र सी मानसिकता में था। मेरा पौरुष मुझे धकिया रहा था कि मैं बिल अपनी ओर खींच लूं। उस बेचारी सत्या से सबके खाने का बिल दिलवाएंगे हम। ... पर पचासवीं वर्षगांठ तो उसके विवाह की ही थी। निमंत्रित भी उसी ने किया था। तो बिल कोई और क्यों देगा? उसकी सखियां तो बिल्कुल ही नहीं देंगी। लगता है पचास वर्ष पहले उसने विवाह नहीं किया था, कोई पाप किया था, जिसका भुगतान वह अब कर रही थी। ... देने को तो मैं बिल दे देता; किंतु इन छिपकली तथा मेंढ़की को मैं दावत क्यों खिलाता। फिर सुरभि की ओर से भी आपत्ति हो सकती थी, जब उसकी सखियों ने ही पर्स में हाथ नहीं डाला, तो हमारे हाथ में ही खुजली क्यों होने लगी।

मैंने बलात अपनी गर्दन दूसरी ओर घुमा ली। पर इसका अनुभव मुझे होता रहा कि वह जोड़-घटाव कर रही है। बैरे से कुछ संवाद भी हो रहा था। अंततः अपनी आपत्तियों को समेट कर

उसने भुगतान कर दिया। जब तक सौंफ आती, उसने पूछा, ''नई पुस्तक कौन सी आई है?'' ''तुमने कौन-कौन सी पुस्तक देखी है, जब तक यह न जान जाऊं, तब तक नई के विषय में क्या बताऊं।'' ''पुणे में हिंदी की पुस्तकें मिलती नहीं हैं। फिर भी पुस्तकालय में देखूंगी।'' वह रुकी, ''पर मेरी एक इच्छा। है अभिलाष, तुम अपनी किसी एक पुस्तक की एक हस्ताक्षरित प्रति मुझे अवश्य भेंट करो। मैं जब पुणे में किसी से तुम्हारे साथ अपनी दोस्ती की चर्चा करती हूं तो उसे प्रमाणित करने के लिए कोई तो प्रमाण होना चाहिए। आज तुम्हारे साथ एक फोटो भी खींचनी है।'' मैं हंसा, ''तुम पढ़ो, मेरे लिए यही पर्याप्त। है। नहीं तो आजकल लोग अखबार ही पढ़ते हैं।''

''मैंने तुम्हारी सारी पुस्तकें पढ़ी हैं।'' मल्लिका बोली।

''तुम्हें उपलब्ध हैं न।'' मालिनी ने कहा, ''पर तुम गर्व से उन्हें लोगों को दिखाती नहीं होगी। बल्कि कोई देखने का प्रयत्न करता होगा तो छिपा लेती होगी।'' ''क्यों? वी आर प्राउड ऑफ हिम।'' सत्या बोली, ''जिसको बताओ कि हमारे मित्र को पद्मश्री मिला है, वही धराशायी हो जाता है।'' मालिनी ने वितृष्णा से मुंह फेर लिया। ''मैं आजकल बच्चों के लिए हिंदी की कुछ पुस्तकें मराठी में अनुवाद कर रही हूं। सुना है कि तुम्हारा एक उपन्यास पेठे जी मराठी में अनुवाद कर रहे हैं।'' ''हां, कर तो रहे हैं। जाने कब तक छप कर आएगा।'' ''चलें।'' मल्लिका ने खड़े होते हुए, कुछ इस शैली में कहा, जैसे अपने आप से कह रही हो।

''अभिलाष से गले मिल लो तो चलो।'' छिपकली ने कहा।

''तुम गले मिलने का बहाना खोज रही हो।'' छिपकली से गले मिलना ... मुझे उबकाई आने लगी। मैं मल्लिका से भी गले नहीं मिला...

मुझे पुणे से एक कार्यक्रम का निमंत्रण आया था। वे विमान की टिकट और होटल का खर्च उठाने को तैयार थे। मानदेय की भी चर्चा कर रहे थे। वे लोग मेरे लिए नए थे। कौन जाने कैसा प्रबंध हो। किंतु मैंने एक परीक्षा-पद्धति निकाल ली थी। मैं कहता था, ''टिकट भेज दो और होटल का पता भी।'' टिकट आ जाने पर मैं मान लेता था कि वे लोग मुझे सचमुच बुलाना चाहते हैं या ठहराने का प्रबंध भी ठीक ही करेंगे।'' फिर पुणे में सत्या थी। वह कितनी ही बार बुला चुकी थी। एक बार मैं शोलापुर जाते हुए पुणे उतरा भी था। वहां से सड़क के रास्ते शोलापुर जाना था। चुपचाप निकल जाने का मन नहीं हुआ। उसे फोन किया था उसे सारी स्थिति बताई और पूछा कि क्या मैं चाय पीने उसके घर आ सकता हूं। .... पता चला कि समय इतना कम था और दूरियां इतनी थीं कि मैं उसके घर नहीं जा सका था।

तो फोन पर चर्चा करके ही मैं आगे बढ़ गया था। उससे मिल नहीं सका था। .... और इन दिनों तो उसकी पैर की हड्डी भी टूटी हुई थी। प्लस्तर शायद खुल गया था किंतु अभी ढंग से चल-फिर नहीं सकती थी। ऐसी अवस्था में उससे मिलना और उसका हाल-चाल जानना आवश्यक था।....

मैंने पुणे वालों का निमंत्रण स्वीकार कर लिया। उनकी भेजी हुई टिकट मिल गई तो सत्या को फोन कर दिया, ''पुणे आ रहा हूं। तीन दिन रहूंगा।'' ''पुणे आओगे तो मेरे घर आओगे न?'' कैसा विचित्र सवाल था। निमंत्रित नहीं कर रही थी कि मेरे घर आओ। पूछ रही थी कि मेरे घर आओगे न? शायद यह भिन्न प्रदेशों की शैली थी। पंजाबी होती तो विमानपत्तन पर ही आ कर मिलने की बात ही नहीं कहती; वहीं से उठा ले जाने का आदेश सुना देती।... और यह पूछ रही है कि मैं उसके घर आऊंगा क्या।

''पुणे आ कर भी तुम्हारे घर नहीं आऊंगा क्या। क्यों नहीं आऊंगा। अवश्य आऊंगा।'' ''भोजन करोगे?'' फिर वही बात। यह नहीं कह रही कि भोजन तो करना ही पड़ेगा या भोजन मेरे यहां करना। पूछ रही है, ''भोजन करोगे।'' ''अवश्य करूंगा। क्यों नहीं करूंगा। कोई असुविधा तो नहीं है न।'' ''नहीं कोई असुविधा नहीं है।'' वह बोली, ''क्या खाओगे? बोलो। हम लोग शाकाहारी हैं। आवश्यक हो तो बाजार से मांसाहार भी मंगा सकती हूं।''

''मैं भी आजकल शाकाहारी ही हूं।'' '' क्यों ऐसा क्या हो गया कि घास-पात खाने लगे।'' ''कुछ दांतों ने छुड़वा दिया, कुछ आंतों ने।''

''तो क्या खाओगे।'' ''जो खिलाओगी, खा लूंगा।''

''ओह। अच्छा पुणे पहुंच कर फोन करना।''

****

पुणे में जब होटल के कमरे में पहुंच गया, काफी बना कर पी ली और कपड़े बदल लिए तो उसे फोन किया। मन में था कि यदि वह कहेगी कि वे मुझे मिलने आ रहे हैं तो बुला लूंगा। फोन उसी ने उठाया। ''अभिलाष बोल रहा हूं। पुणे में अपने होटल

के कमरे में पहुंच गया हूं।'' ''होटल अच्छा है?'' उसने पूछा। ''कमरा तो अच्छा ही है। खुला है, साफ-सुथरा है। वाशरूम भी नया और चमकदार है।'' आवश्यकता की सारी चीजें हैं। शायद फोर स्टार होटल है।'' ''नाम क्या है और कहां है?'' मैंने बता दिया। उसने रिसीवर पर हाथ रखे बिना अपने पति से पूछा, ''यह कहां है?'' उसके पति ने किसी और प्रसिद्ध होटल का नाम लिया, ''उससे सटा हुआ है।''

सत्या ने अपने आने की कोई बात नहीं की। कहा, ''पांच छः किलोमीटर है। सुविधा से आ सकोगे। कल संभव नहीं होगा न। तुम्हारा कार्यक्रम है। परसों लंच के लिए आ जाओ।'' तो वह मेरे कार्यक्रम में भी नहीं आएगी। मेरे उत्साह की झाग बैठ गई। उसने न अपने आने की बात कही न मुझे बुलाने की। गाड़ी-ड्राइवर भेजने की बात भी नहीं की।

''ठीक है।'' इसका अर्थ था कि मुझे स्वयं ही गाड़ी का प्रबंध करना था और उसके घर पहुंचना था। अभी तो मैंने उसके घर का पता भी नहीं पूछा था। रास्ता भी जानना था।

मैंने विशाल से पूछा ''परसों मेरे लिए एक गाड़ी का प्रबंध हो जाएगा? एक मित्र से मिलने जाना है।'' उसने सहज भाव से मुस्करा कर कहा, ''आप जब कहेंगे गाड़ी और ड्राइवर आ जाएगा।'' मैंने स्वयं को समझा लिया कि फोन पर सत्या से उसके घर का पता पूछ लूंगा और ड्राइवर तो स्थानीय ही होगा। वह रास्तों से परिचित होगा। अगले दिन दोपहर तक मैं कमरे में ही रहा। दो बजे से क्रार्यकम था। गाड़ी और ड्राइवर बारह बजे ही आ गए थे। मैं खाना खा चुका था। तभी अग्रवाल का फोन आया। वह मुझे से कार्यक्रम-स्थल के विषय में पूछ रहा था। ... इसका अर्थ था कि वह कार्यक्रम में आएगा। उसका घर वहां से बहुत दूर था। फिर भी वह आएगा। और सत्या ... उसकी कार्यक्रम में कोई रुचि नहीं थी। मेरी उपलब्धियों पर गर्व करने वाली मेरी वह सखी कार्यक्रम में नहीं आएगी। मेरा व्याख्यान नहीं सुनेगी।...

अग्रवाल ने बहुत जोर लगाया था कि मैं होटल में न ठहर कर उसके घर में ठहरूं। यहां तक कि उसने यहां के प्रबंधक विशाल बाग को फोन कर कह दिया कि वह मेरे लिए होटल में बुक कराए कमरे को निरस्ति कर दे, क्यों कि मैं उनके घर में ठहरूंगा। ... पर मैंने उसकी बात नहीं मानी। पिछले दिनों के अनुभव और अपनी बढ़ती अवस्था के कारण मुझे होटल में टिकना ही सुविधाजनक लगने लगा था। जो कार्यक्रम के लिए बुला रहे थे वे होटल का बिल देने को तैयार थे तो क्यों किसी के घर में ठहर कर उनका अहसान लिया जाए और उन्हें कष्ट दिया जाए। होटल में जब फोन उठा कर किसी भी चीज की मांग की जा सकती थी तो क्यों भाभी जी या बहू रानी को कष्ट दिया जाए। जब अपना कमरा और अपना शौचालय हो सकता है तो क्यों किसी के घर रह कर उनसे पूछते रहें कि क्या अब मैं नहाने जा सकता हूं। ... मुझ से फोन पर झगड़ा करने पर भी अग्रवाल कार्यक्रम में आ रहा था। मैं जानता था कि कार्यक्रम के पश्चात् वह मुझे अपने घर ले जाने का हठ करेगा। और मैं मन ही मन यह निर्णय कर चुका था कि रात को मैं होटल से बाहर नहीं रहूंगा। प्रातः का ही तो वह समय होता है, जब मुझे अपना कमरा चाहिए। नहाना धोना, पूजा, ध्यान, नाश्ता ... सब कुछ तो प्रातः ही होता है। यदि वह सारा समय अग्रवाल के घर पर कट गया तो फिर होटल का क्या लाभ।

कार्यक्रम लगभग आध घंटे के बाद आरंभ हुआ।

मैंने देख लिया था कि अग्रवाल सपत्नीक आ गया था। पर क्या हो गया था उसको। खासा वृद्ध लग रहा था। एक सीढ़ी चढ़ने के लिए भी उसको किसी का सहारा चाहिए था। चेहरा भी काफी मुरझाया हुआ था।

कार्यक्रम के पश्चात् वे दोनों मेरे पास आ गए। ''अब क्या करना है?'' उसने पूछा। ''कुछ नहीं। खाली हूं। मैंने जान-बूझ कर न सत्या की चर्चा की, न पेठे की।'' ''तो अब मेरे घर चलोगे या होटल ही जाना है?'' उसके स्वर का कटाक्ष पर्याप्त मुखर था। ''ले चलोगे तो तुम्हारे घर चलूंगा, नहीं तो होटल।'' मैं उसके स्वर की नाराजगी पहचान रहा था।

मेरी गाड़ी आ गई थी। ''चलें?'' मैंने पूछा। ''हमारी गाड़ी बाहर खड़ी है।'' वह बोला, ''मैं वहां तक चल नहीं सकता। उसे अंदर बुलाना होगा।'' ''तो इस टैक्सी में बैठो। यह हमें तुम्हारी गाड़ी तक पहुंचा देगी। वहां इसे छोड़ देंगे।'' मैंने कहा, ''पर तुम्हारे घर से होटल तक लौटने के लिए तुम्हारी गाड़ी चाहिए होगी। रात को तुम्हारे घर नहीं रुकूंगा।'' ''ठीक है।''

हम उसके घर की ओर चले तो उसने बताना आरंभ किया कि वह जब भी किसी बैठक के लिए दिल्ली गया और उसे पांच सितारा होटल में ठहराया गया तो उसने पाया कि वहां के तौलिए गंदे थे। बिस्तर की चादरें गंदी थीं। उसे वहां का खाना भी कभी अच्छा नहीं लगा ...'' मैं समझ गया कि वह अपनी

खीज निकाल रहा था। मैं उसके घर में नहीं ठहरा था न। पर मैंने उसका प्रतिकार नहीं किया। उसका विवेक कहीं खो गया था। शायद उसके भीतर की हीन भावना बोल रही थी। उसके पास अब अपनी गाड़ी भी नहीं थी। वह स्वयं ड्राइव भी नहीं करता था। एक टैक्सी वाले से किसी प्रकार का कोई समझौता कर रखा था।

''अपनी ही गाड़ी समझो।'' वह कह रहा था, ''जब चाहो, गाड़ी उपलब्ध है।'' हम उसके घर के बरामदे में ही बैठे। वह भीतर कमरे में ले कर ही नहीं गया। ''तुम आकर मेरे पास दो महीने ठहरो। देखो, कैसी हवा आती है, सैर के लिए कितनी अच्छी जगह है।''... मैं काफी पीता रहा। कुछ बोला नहीं। क्या कहता कि मैं किसी और के घर में चार दिन भी नहीं रह सकता। दो महीने की तो बात ही क्या। ... दूसरी ओर मेरे मन में प्रश्न था कि यह मुझे खाना खिला कर ही भेजेगा या उसके पहले छोड़ देगा। मैं रात के खाने के लिए रुकना नहीं चाहता था; किंतु इंदौर हो या पटना, इस के पहले उसके घर जब भी गया, उसने भोजन कराए बिना उठने ही नहीं दिया। अधिकांशत: तो मैं ठहरता ही उसके घर में था। उसके कार्यक्रमों में जाता था। वही प्रबंधक होता था। जहां चाहे ठहराए, जो चाहे खिलाए। उसके पुणे में अपने बेटे के पास आ जाने से परिस्थितियां बदल गई थीं।

बहुत सारी इधर-उधर की बातें हुई। उसने अपनी कुछ कविताएं भी सुनाईं और इस बात का आक्रोश भी दिखाया कि मैं अपनी पत्नी को साथ क्यों नहीं लाया। मैंने कोई कारण नहीं बताया। कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया। अब किस-किस को समझाऊं कि वय बढ़ता है तो शरीर बहुत सारे कष्ट नहीं झेल सकता। और यात्रा तो यातना ही है। यदि मेरी पत्नी या कोई भी महिला चालीस वर्षों तक विभिन्न सभाओं में लोगों के भाषण सुन-सुन कर इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि अब उसे वे भाषण और नहीं सुनने हैं और होटल के कमरे में सोने के लिए वह यात्रा नहीं करना चाहती तो क्या मैं बलप्रयोग करूं। लोग कहेंगे, उसे समझाओ। और मैं अपने आप से पूछता हूं कि क्यों समझाऊं। मेरी इच्छा नहीं होती तो मैं नहीं जाता उसकी इच्छा नहीं होती तो वह नहीं जाती। इसमें समझने-समझाने को क्या है। पिछली बार हम दोनों ही मुंबई गए थे। कमरे में सामान रख तो भोजन के लिए बुला लिए गए। भोजन के पश्चात् मुझे बताया गया कि अब मेरा सत्र है और लोग हॉल में मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। सुरभि ने कहा कि वह कमरे में कपड़े बदलने जा रही है। वह थोड़ा विश्राम भी करना चाहती है। यदि उसका मन नहीं हुआ तो वह नहीं आएगी। ... मैं उसे अपने सत्र का वास्ता भी नहीं दे सका। मैं हॉल में भाषण करता रहा और वह कमरे में विश्राम करती रही।... किंतु यह सब अग्रवाल को नहीं समझाया जा सकता था। उसके लिए मेरा एक ही उत्तर था कि सुरभि की इच्छा नहीं थी। काफी भी समाप्त् हो चुकी थी और बातें भी; किंतु भोजन का प्रसंग ही नहीं आया। अंतत: मैंने विदाई की अनुमति मांगी।

''कल का क्या कार्यक्रम है?'' ''कल प्रात: पेठे होटल में आएगा और दोपहर के भोजन के लिए मैं सत्या के घर जाऊंगा। वहां से होटल और होटल से विमानपत्तन।''

''ठीक है।'' उसने मुड़ कर अपनी पत्नी की ओर देखा, ''गाड़ी लाने को कहो।''

कई लोगों की पत्नियां उनकी व्यक्तिगत चाकर होती हैं। वे कोई काम स्वयं नहीं करते। आदेश देते हैं। ''फोन मिलाना।'' ''कागज देना।'' ''मेरा कुर्ता लाना।'' इत्यादि।

लौटते हुए मेरे मन में अग्रवाल का व्यवहार घूम रहा था। इंदौर में उसका अपना घर था, अपना। वहां साहित्य और समाज में भी वह बहुत सक्रिय था। अब यहां पुत्र के पास आ गया था। अवकाशप्राप्त व्यक्ति जैसा जीवन था। पुणे में उसका महत्व अभी कोई जानता भी नहीं था। उसकी हताशा उसके व्यवहार में उतर आई थी। उसका शब्द-शब्द मुझे अपना पुराना महत्व स्मरण कराने का प्रयत्न कर रहा था। मुझसे रुष्ट था कि मैं उसकी बात मान कर अपनी पत्नी को साथ क्यों नहीं लाया। पता नहीं, वह मित्रता के नाम पर अपना अधिपत्य-संसार कहां तक फैला रहा था। मैं होटल में क्यों ठहरा उसके घर में क्यों नहीं ठहरा। उसका घर संसार के किसी भी होटल से अधिक सुविधाजनक था। इसीलिए वह जिन भी पांच तारा होटलों में ठहरा था, वे सब गंदे थे। .... उसे लग रहा था कि मैंने उसका तिरस्कार किया था।

****

प्रात: पेठे आकर जल्दी ही चला गया। उसे अपने काम पर जाना था। .... और मैं सोच रहा था कि मैं तो सत्या के घर जाने को इतना उतावला हो रहा हूं और उसने अभी तक अपने घर का पता भी नहीं दिया है। फोन नंबर से तो किसी के घर नहीं पहुंचा जा सकता। हां यदि वह मुझे अपने घर ले जाने के लिए होटल आने वाली है तो मुझे उसके घर का पता करना है। अपने-आप ले जाएगी। पर उसने यह भी तो नहीं कहा है कि वह मुझे ले जाने

के लिए आएगी या गाड़ी भेज दे गी। ... तभी फोन बजा। ''तुम आ रहे हो न?'' वह पूछ रही थी।

''आने की तैयारी में हूं।'' ''मेरे घर का पता है तुम्हारे पास?'' ''नहीं।'' ''तो कैसे आओगे?'' मैं क्या कहता। स्पष्ट था कि वह अपेक्षा कर रही थी कि मैं अपने आप पहुंचूंगा। उसने किसी प्रकार का वाहन भेजने की कोई चर्चा नहीं की थी। ''लिखो।''

कागज पैंसिल ले कर मैंने पता लिख लिया। दिशा इत्यादि समझने का भी प्रयत्न किया किंतु एकदम नए स्थान पर जाने के लिए दिशाएं समझ में भी नहीं आतीं। मैंने विशाल बाग को फोन किया, ''गाड़ी का प्रबंध हो गया क्या?'' ''गाड़ी तो कब से होटल में खड़ी है। आपको कितने बजे जाना है?'' ''जाने को तैयार खड़ा हूं।'' ''मैं आपके कमरे में आ रहा हूं।'' यह ठीक था। उसे कहूंगा कि वह ड्राइवर को वह पता समझा दे।

वह आया। उसने पता मराठी शैली में देवनागरी में लिखा। मुझे भी समझाया और नीचे आ कर ड्राइवर को भी समझाया। ड्राइवर ने कहा, वह उस स्थान को अच्छी तरह जानता है। कुल पंद्रह मिनट की दूरी पर है। वहां मेट्रो के लिए खुदाई चल रही है। यह बात सत्या ने भी कही थी। मुझे विश्वास हो गया कि ड्राइवर भटकेगा नहीं। और फिर विशाल ने ड्राइवर से कहा, ''साहब को ले जाओ। ये वहां जितनी देर रुकना चाहें, तुम प्रतीक्षा करना। इन को ले कर ही आना।'' अब इस से अच्छा प्रबंध और क्या हो सकता था... मैंने सत्या को फोन कर दिया कि मैं चल रहा हूं।

''आ जाओ। हम प्रतीक्षा कर रहे हैं।'' उसने यह भी नहीं कहा कि मैं बाहर मोड़ पर मिल जाऊंगी या मैं सोसायटी के गेट पर मिल जाऊंगी। कैसी है यह लड़की। स्वागत की गर्मजोशी कहीं नहीं। स्वागत का तो भाव ही नहीं है। .... पर अब मना भी तो नहीं किया जा सकता था। इससे तो अच्छा होता कि मैंने भोजन के लिए हामी ही न भरी होती। पर अब क्या। चलो यह भी सही।

ड्राइवर उस सारे क्षेत्र को जानता था। वह सोसायटी के गेट तक निर्विघ्न चला आया। गेट पर खड़े दरबान से कहा, ''आपटे साहब के घर जाना है।''

उसने दाएं हाथ से एक ओर संकेत कर दिया, ''डी लिखा हुआ देख रहे हो न। उसी में चौथा माला।'' ''लिफ्ट कहां है?'' ''लिफ्ट नहीं है। सीढ़ी से जाना होगा।'' मैं तिलमिला उठा। बिना लिफ्ट के चौथा माला। मैं गाड़ी से उतर गया। ड्राइवर पार्किंग की ओर चला गया। मैंने फोन मिलाया, ''मैं आ गया हूं। डी ब्लॉक के सामन खड़ा हूं।'' अपेक्षा थी कि वह कहेगी, ''मैं आती हूं।'' पर उसने कहा, ''वहीं से सीढ़ियां हैं। ऊपर आ जाओ। मैं सामने ही दिख जाऊंगी।'' ''विचित्र लड़की है।'' मैंने सोचा, ''यहां तक तो मैं आ गया हूं। अब यह नीचे भी नहीं उतरेगी। इस प्रकार के स्वागत की कल्पना तो मैंने की ही नहीं थी।'' एक क्षण को तो मन में यहां तक आया कि वापस होटल लौट जाऊं। पर फिर अपने भीतर की इस उद्दंडता को दबाया। अब आ ही गया हूं तो मिल तो लेना ही चाहिए।

सीढ़ियां खोजनी पड़ीं। चार मंजिलें .... राम-राम कर ऊपर चढ़ता चला गया। ऐसे ही अवसरों पर पता चलता है कि अभी मेरे घुटने चलते हैं। सांस तेज चलने लगती है। हांफ भी जाता हूं। फिर भी अभी चल रहा हूं।

तीन मंजिलें चढ़ चुका और आगे की सीढ़ियों पर हसरत भरी नजर डाली तो देखा कि सामने के फलैट के कपाट खुले थे और सामने ही कुर्सी डाले सत्या बैठी थी।

वह मुस्कराई पर उठी नहीं, ''आ गए। आओ।''

मैं सोच ही रहा था कि क्या कहूं कि वह बोली, ''मेरा हाथ पकड़ का उठाओ। जब से यह हड्डी टूटी है ...''

''पर तुम ने तो कहा था कि तुम अब चल-फिर लेती हो।''

मेरे सारे गिले-शिकवे धुल गए थे। मैं कैसे भूल गया कि उसकी कूल्हे की हड्डी टूट गई थी और वह अभी तक स्वयं उठ-बैठ भी नहीं सकती थी और मैं कल्पानाएं करता रहा कि वह मेरे कार्यक्रम में आएगी, होटल से मुझे लेने आएगी। सीढ़ियां उतर कर नीचे आएगी।

मैंने सहारा दे कर उसे खड़ा किया और गले मिलने की योजना बना ही रहे थे कि उसके पति दूसरे कमरे से आ गए। ''आपटे साहब।'' उसने परिचय दिया।

वह व्यक्ति अति वृद्ध था। मैं सोच रहा था कि मुझ से कुछ तो बड़ा होगा ही। एक निकर और टीशर्ट में था। नंगी टांगें खुश्की से जैसे छिल गई थीं। एक आध स्थान से रक्त निकल कर जम गया था। हम ने हाथ मिलाए और दोनों ही बैठ गए। सत्या ने कोने में रखे एक वॉकर की ओर संकेत किया। घर में तो हिल-डुल लेती हूं। बाहर निकलूं तो इसकी आवश्यकता

होती है।'' ''मुझे मालूम नहीं था कि अभी तुम पूर्णत: स्वस्थ नहीं हो।'' वह हंसी, ''अब पूर्णत: स्वस्थ क्या होना। ऐसे ही चलेगा।'' वह डगमगाती सी गई और रसोई से पानी का गिलास ले आई। मैंने खड़े हो कर गिलास पकड़ लिया और बोला, ''अब तुम बैठ जाओ।''

उसे मैंने बैठा दिया, ''तुम्हारी हालत ऐसी नहीं है कि लोगों को भोजन के लिए आमंत्रित करो।'' ''नहीं ऐसी कोई बात नहीं है। मैं स्टूल पर बैठ कर काम कर लेती हूं। कुछ सहायता बेटी भी कर देती है। बाई अभी आएगी, रोटियां वह बना देगी।'' वह रुकी, ''अच्छा देखो, मैंने जो कुछ बनाया है, इस कागज पर लिख दिया है। तुम देखो, तुम्हें। क्या खाना है।'' उसने एक कागज मेरी ओर बढ़ा दिया। ''तो यह मैन्यू है।'' मैं हंसा। कागज पर आठ सब्जियों के नाम लिखे हुए थे। आपटे साहब ने किसी प्रकार घसीट कर एक छोटी मेज मेरे सामने लगा दी। मेज पर एक थाली थी, जिसमें तीन कटोरियां लगाई गई थीं। कहां तो मैं सोच रहा था कि डायनिंग टेबल पर प्लेटें लगेंगी और हम तीनों एक साथ खाएंगे। ... और यहां केवल मेरे अकेले खाने की तैयारी थी। कई घरों में ऐसी भी परंपरा होती है कि वे अतिथियों को खिला कर स्वयं बाद में खाते हैं। पर मैंने पूछ ही लिया, ''और आप लोग?'' ''हम भी खाएंगे।'' सत्या हंसी, ''भूखे नहीं रहेंगे।''

''हम एक साथ नहीं खा सकते क्या?'' ''साथ ही खाएंगे।'' वह बोली, ''हमारी कुछ सीमाएं हैं ... शरीर की भी और फर्निचर की भी।''

वह लगातार बाहर सीढ़ियों की ओर देख रही थी।

''किसी और की प्रतीक्षा है क्या?'' मैंने पूछ ही लिया।

''हां। बाई आएगी तो रोटी बनाएगी न।'' आपटे साहब बोले, ''सत्या उतनी देर खड़ी नहीं रह सकती।'' वह हंसी, ''बस कुछ दिन और। ठीक हो जाऊंगी तो वह भी कर लूंगी।'' वह रुकी, ''वैसे मैं अपने पड़ौस की एक लड़की की भी प्रतीक्षा कर रही हूं। उसने कई बार कहा है कि तुम आओ, तो मैं उसको अवश्य बुला लूं। वह तुम से मिलने को बहुत व्याकुल है। उसने तुम्हारे दो-एक उपन्यास पढ़े हैं।'' ''तो बुला लो।''

''फोन कर दिया है।'' उसने अपनी गोद में रखा हुआ फोन उठा कर दिखाया, ''इस लंगड़ेपन में वॉकर से भी अधिक यह फोन काम आता है। उठना नहीं पड़ता और बात हो जाती है।'' उसकी दृष्टि अब भी सीढ़ियों पर टिकी हुई थी, ''लो, वह आ गई। पंजाबी लड़की है और यहां एक स्कूल में हिंदी पढ़ाती है।'' वह लड़की कमरे में प्रकट हुई। उसने हाथ जोड़े, ''मैंने ताई से कब से कह रखा है कि आप आएं तो मुझे अवश्य बताएं।'' ''क्या नाम है तुम्हारा?'' ''आशा मल्होत्रा। एक सरकारी स्कूल में हिंदी पढ़ाती हूं। सीनियर टीचर हूं। पी.जी.टी.।''

उसने अपना फोन सत्या को पकड़ा दिया, ''ताई, एक फोटो।'' उसने मेरी ओर देखा, ''आपके साथ एक फोटा खिंचवा सकती हूं?'' ''ताई से पूछो।'' मैंने कहा, ''तुमने मेरी कौन सी पुस्तक पढ़ी है?'' उसने मेरी दो तीन पुस्तकें गिना दीं। ''कुछ पूछना है?'' ''नहीं बस फोटो ...'' वह बोली, ''मेरे घर कुछ महमान आए हुए हैं। उनसे पांच मिनटों का समय ले कर आई हूं।''

वह आ कर मेरी कुर्सी के पास खड़ी हो गई। सत्या ने उसके फोन से छवि ले ली।

''अच्छा नमस्ते।'' वह भाग गई।

सत्या हंस पड़ी, ''पगली है। बरसों से कितना आग्रह था उसका, तुम से मिलने का और इस समय भाग गई। उन्हें ज्ञात है कि मैं तुमको जानती हूं, यह बात ही उन लोगों के बीच मेरा स्थान कितना ऊंचा कर देती है। वस्तुत: तुम भी नहीं जानते होगे कि अपने पाठकों के मध्य तुम्हारा क्या स्थान है। वे तुम्हें सम्मान ही नहीं पूज्य् भाव से देखते हैं। जिस सहज भाव से तुम मेरे घर चले आए, यह उनके लिए आश्चर्य का विषय है। मेरे लिए भी गर्व की बात है। मैंने भी वर्षों प्रतीक्षा की है, तुम्हारे आने की।'' मैं देख रहा था कि आपटे साहब विभिन्न कोणों से मेरे चित्र उतार रहे थे।

''बाई आ गई।'' सत्या के चेहरे पर जैसे फूलों का बगीचा खिल आया। मराठी वेशभूषा वाली एक काम करने वाली बाई आई और सीधी रसोई में चली गई। सत्या भी किसी प्रकार उठी और लंगड़ाती-डोलती हुई रसोई में चली गई। मुझे यह सब बहुत विचित्र लग रहा था किंतु मेरा मस्तिष्क मुझे स्मरण करा रहा था कि मेरे मन में चित्रों का जो एलबम था वह बहुत पुराना था। कम से कम साठ वर्ष पुराना। पर सत्या एलबम से बाहर निकल कर साठ वर्ष व्यतीत कर चुकी थी। अब न उसका चेहरा वैसा रह सकता था, न हाथ-पैर उतने समर्थ थे। मैं स्वयं भी तो अठहत्तर वर्षों का हो गया था। किंतु मन था कि बार-बार अतीत की ओर लौट जाता था। मैं चाहता था कि संसार वैसा ही

रहे, जैसा तब था। पर क्या करूं, मेरी सारी सखियां पचहत्तर से ऊपर की हो चुकी थीं। उनके विषय में वृद्धा शब्द कहने-सुनने से ही मन कांप कर रह जाता था। वे अपने विषय में कम और पोतों-दोहतों की चर्चा अधिक करती थीं।

आपटे साहब भी डोलते-डोलते अपनी कुर्सी की ओर जा रहे थे। निकर के नीचे की वे काली, खुश्की की मारी टांगें, जिन पर रक्त की लकीरें भी थीं, मेरे मन में अवसाद भर देती थीं। मनुष्य का सुंदर शरीर कैसी दुर्गति को प्राप्त होता है। वे टांगें मनुष्य की टांगों से अधिक किसी वृक्ष की छाल भरी टहनी अलग लगती थीं।

''तुम्हें पुष्पा याद है? एम.ए. में वह भी हमारे साथ थी।''

''हां। याद है। उसके दोनों बच्चें और मेरे दोनों बेटे एक ही विद्यालय में पढ़ते थे। वहीं उन से भेंट हो जाती थी।'' मैंने कहा, ''जब वे लोग पश्चिम विहार में आ गए थे और हम भी वैशाली में थे, एक-दो बार हमारा उनके घर जाना भी हुआ था। अब कहां है वह?'' ''बंगलूरु में है अपनी बेटी के साथ।'' उसने फोन मिला लिया, ''अभिलाष आया हुआ है। बात करोगी?'' उसने फोन मुझे थमा दिया। ''हां पुष्पा, कैसी हो।'' ''तुम सत्या के घर पुणे पहुंच गए।'' ''यहां एक कार्यक्रम था।'' ''तो कभी बंगलूरु का कार्यक्रम भी बना लो। हमारे यहां भी आओ।'' जाने क्यों मुझे उसका यह निमंत्रण सुखद नहीं लगा। मेरा बोलना बंद और सोचना आरंभ हो गया ... कितना आसान है कहना कि कभी आओ न। अब यात्रा में आनन्द् नहीं है, यातना है। इसलिए यात्रा का कोई बहाना मिल जाए तो प्रसन्नता नहीं होती। परिवर्तन के लिए बाहर निकलने का प्रस्ताव सुखद नहीं लगता।... फिर कार्यक्रम था तो विमान का टिकट और होटल का बिल आयोजक लोग दे रहे थे।... पचास एक हजार रुपया तो चाहिए ही। .... यह सब को समझाया नहीं जा सकता और जिस सम्मान से कार्यक्रमों में बुलाया जाता है, उसकी हमारे मित्रों-परिचितों को कल्पना भी नहीं होती है। इतनी सी बात कह भी दूं तो अगला समझता है कि भुक्खहड़ हूं, उससे आने-जाने का किराया मांग रहा हूं। मुझे कनाडा से आई एक लेखिका स्मरण हो आई। वह पारंपरिक संबंधियों के समान पीछे ही पड़ गई कि अपने बेटे के पास अमरीका आते हो तो मेरे पास कनाडा भी आओ। बहुत समझाया, बहकाया, बहलाया किंतु वह नहीं मानी। झक मार कर कहा, ''तो फिर कनाडा के वीजा के लिए कागज भिजवाइए।'' ''हां। मेरे पति देंगे न।'' ''जब आपके कागज आ जाएंगे तो सोचेंगे।'' ''सोचना नहीं है। आना है।''

मैं मौन हो गया ओर मन ही मन गणित भिड़ाता रहा कि उसके पास जाने के लिए दो-तीन दिनों में कितने रुपए चाहिए होंगे। और मेरा सारा गणित मुझे बता रहा था कि मैं कभी नहीं जाऊंगा। वैसे एक सप्ताह के बाद उनके पति ने कागज भिजवाए। एक सादे कागज पर लिखा था कि हम जब तक कनाडा में रहेंगे, रोग इत्यादि को छोड़ कर शेष सारा व्यय वे वहन करेंगे। इसको पढ़ कर कोई भी समझ सकता था कि इस प्रकार के कागज के आधार पर कभी वीजा नहीं मिलता। अत: मैंने भी उनकी ओर से भेजा गया वह कागज फाड़ कर फेंक दिया। ... वैसे वे महिला आज भी आग्रह करती हैं कि हम उसके पास कनाडा आएं। उलाहना भी देती रहती हैं कि अब तक हम उनके घर क्यों नहीं पहुंचे। कुछ लोगों का स्वभाव ही होता है उलाहना देना। यदि मैं उनसे कहता कि मैं तो अपने पुत्र से मिलने अमरीका ही नहीं गया, उनके पास कैसे आता तो वे कहतीं कि मैं उनसे मिलने आ जाऊं तब पुत्र के पास भी जा सकूंगा। ... मैं उनसे कह नहीं सकता था कि यदि पुत्र मुझे बुलाना चाहेगा तो विमान का टिकट भेज देगा, वे भेजेंगी टिकट?

''क्या कहते हो, मेरे घर आओगे?'' पुष्पा का स्वर फोन में गूंज रहा था।

कहना तो चाहता था कि दिल्ली में रहते हुए तो कभी उसने आने-जाने का इतना आग्रह नहीं किया। अब ऐसा क्या हो गया है कि पीछे पड़ गई हो। पर कहा नहीं ...

कहा, ''हां राम जी ने कोई कार्यक्रम बना दिया तो अवश्य आऊंगा।'' ''राम जी तुम्हारे सेक्रेटरी हैं क्या कि वे कार्यक्रम बनाएंगे तो ही आओगे। स्वयं कार्यक्रम बनाओ और आ जाओ।''

''वे सचिव नहीं, स्वामी हैं।'' मैंने कहा, ''आज तक सारे कार्यक्रम उन्होंने ही बनाए हैं। अब भी वे ही बनाएंगे। तुम्हारा फोन नंबर सत्या से ले लेता हूं। कार्यक्रम बनेगा तो सूचना दूंगा।''

मैंने फोन सत्या को पकड़ा दिया। इस विषय पर और बात करता तो कटुता आ जाती।

सत्या की बाई मेरे लिए थाली लगा कर ले आई। उसमें दो सूखी सब्जियां एक दाल और दो रोटियां थीं। वह थाली रख कर चली गई तो मैंने सत्या की ओर देखा, ''और तुम लोग?''

''हमारे लिए भी लाएगी।'' आपटे साहब ने हाथ बढ़ा कर, दीवार से टिका, फर्श पर रखा हुआ, लकड़ी का एक फट्टा उठा कर अपनी कुर्सी के हत्थों पर रख लिया। उनकी मेज उनकी गोद में ही बन गई थी। उनकी थाली भी आ गई थी। सत्या अपनी कुर्सी पर ही बैठी रही और थाली उसने अपनी गोद में रख ली। ''अब शरीर ऐसा हो गया है कि न तो अधिक झुका जाता है, न आड़े-तिरछे हुआ जाता है। सब से सुविधाजनक यही है।'' मैं हंस पड़ा, ''मैं तो कभी-कभी अपनी प्लेट ले कर बिस्तर में ही जा बैठता हूं। ठंढ में बिस्तर से निकलने का मन नहीं होता तो रजाई में दुबक का ही गोभी अथवा आलू के पराठे खाने का प्रबंध कर लेता हूं।'', ''यहां तो कभी उतनी ठंढ होती ही नहीं।''

''इसीलिए तो तुम लोग गोभी के पराठे नहीं खाते।'' '' हां। हम लोग भरवां पराठे के नाम पर पूरनपोली ही खाते हैं।'' वह बोली, ''तुम्हारा और किन-किन लोगों से संपर्क है दिल्ली में?'' ''पुणे में होते हुए भी तुम जितने लोगों के संपर्क में हो, मैं दिल्ली में उतने लोगों से भी नहीं मिलता। समझ लो कि जीवन शैली कुछ ऐसी बदली कि मिलना-जुलना सूक्ष्म होता गया। कुछ लोग संसार में बिखर गए हैं। कुछ अस्वस्थ हो कर घर में पड़े हैं। कुछ संसार ही छोड़ गए हैं। ...'' ''हां।...'' सत्या कुछ कहते कहते रुक गई।

''सत्य तो यह है कि मैं भी अपना जीवन जी चुका हूं। ...'' ''अभी से यह कैसे कह सकते हो।'' ''अभी से।'' मैं हंसा, ''उनासी वर्ष का जीवन हो चुका। और पांच वर्ष भी जी सका तो वह बोनस ही होगा।'' ''पांच वर्ष।'' वह बोली, ''यहां तो सोचते हैं कि अगले दो वर्ष भी बीत जाएं तो बहुत हैं।''

''खैर, जीवन का किसको पता है फिर भी इसे अनुमान कहें या इच्छो। मरना तो कोई नहीं चाहता। मनुष्य प्रत्येक अवस्था में जीना ही चाहता है।'' ''वैसे भगवान कृष्ण तो कहते हैं कि वस्त्र ही तो बदलने हैं। नया शरीर ही तो धारण करना है। नया शरीर। स्वस्थ शरीर। शक्तिशाली शरीर। यह कोई घाटे का सौदा तो नहीं है।'' ''ठीक कहते हो किंतु कृष्ण पर पूरा विश्वास नहीं होता न, कि सचमुच ऐसा ही होगा।'' ''यदि नहीं भी होगा तो हम क्या कर लेंगे। जो होगा, उसे झेलना पड़ेगा।'' ''क्या लिख रहे हो आजकल?'' वह बोली, ''गीता पर कोई उपन्यास लिख रहे हो, जा कृष्ण इतने याद आ रहे हैं?''

''लिखना चाहता हूं किंतु गीता एक शास्त्र है और शास्त्र को उपन्यास बनाना आसान नहीं है।'' मैं बोला, ''चाहता हूं कि यह काम कर सकूं। पता नहीं कृष्ण क्या चाहते हैं।'' ''वे क्या तुम को बताने आएंगे?'' मैंने थाली उठा कर बाई की ओर बढ़ा दी, ''श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है कि वे प्रेरक कर्ता हैं और हम प्रेरित करता हैं। जिस दिन वे प्रेरित करेंगे, उस दिन उपन्यास लिखा जाएगा।'' वह कुछ देर चुप रही, फिर बोली, ''मैं सोच रही हूं कि कर सकूं तो कुछ अनुवाद का काम करूं। मराठी से हिंदी में या हिंदी से मराठी में।'' ''अच्छा विचार है। दो भाषाएं जानने का कुछ लाभ तो होना ही चाहिए।'' ''अभी किया कुछ नहीं है। बस सोच ही रही हूं।'' ''विचार ही तो कर्म की पहली सीढ़ी है।'' ''सीढ़ी की बात मत करो। भय लगता है। मेरा वॉकर भी सीढ़ियां चढ़ने में सहायक नहीं है।'' तभी मेरा फोन बजा। ड्राइवर का फोन था। वह कह रहा था कि वह खाना खा कर आ गया है। नीचे मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। मुझे जब जाना हो, मैं उसे फोन कर दूं।

''कौन है? दिल्ली से सुरभि का फोन है?'' ''अरे नहीं। नीचे से गाड़ी का ड्राइवर बता रहा है कि वह आ गया है।'' मैं उठ खड़ा हुआ, ''चलूं अब। भोजन अच्छा था। स्वाादिष्ट और बिना मिर्च का। तुम से मिल कर खुशी हुई किंतु यह भी समझ में आ रहा है कि तुम को अपनी इस अवस्था में भी कितना काम करना पड़ा होगा।'' ''अच्छा है न। काम करना पड़े तो सक्रियता बनी रहती है, नहीं तो एकदम ही अपाहिज हो जाऊंगी।'' वह बोली, ''वैसे मुझे आशा नहीं है कि मैं पांच साल और चलूंगी। देखें फिर कब भेंट होती है।...'' और मैं मन ही मन उसका वाक्य पूरा कर रहा था, ''... होती भी है या नहीं।'' आपटे साहब बोले, ''हम आपको विदा करने नीचे नहीं आ सकते हैं। इसलिए यहीं से नमस्कार कर रहे हैं।'' ''मैं तुम्हारे चित्र अपनी सारी सखियों को वाट्स-अप कर रही हूं, ताकि तुम्हारे आने की खुशी सब के साथ बांट सकूं। इस ठहरे हुए जीवन में इतनी ही गति आ सकती है।'' ''तुम्हारे शब्दों में निराशा और चेहरे पर अवसाद है।'' ''हम जीवन के उस सोपान पर खड़े हैं, जहां अवसाद ही अवसाद है। कितना भी दबाएं, कितना भी छिपाएं, पर सत्य यही है।'' ''क्या, यह प्रसन्नता का विषय नहीं है कि जो सत्य है, हम उसे जानते हैं और उसका सामना कर रहे हैं।'' ''अरे छोड़ो इन बातों को।'' सत्या भीगी हुए स्वर में बोली, ''हम फिर मिलेंगे और शीघ्र मिलेंगे। दिल्लीं में मिलें या पुणे में।''

मैंने पलट कर उनकी ओर नहीं देखा। सीढ़ियां उतर गया। मैं स्वयं ही उस अवसाद का सामना नहीं कर पा रहा था। ○○○

आवारागर्द

मूलः कुर्रत-उल-ऐन हैदर
अनुवादः खुर्शीद आलम

''वहाँ सब लोग मुझसे कश्मीर के बारे में पर बड़े जोशो-खरोश से बातें करते थे। यहाँ कश्मीर और पाकिस्तान का जिक्र बहुत कम किया जाता है। यहाँ के मसाइल... '' फिर उसने हिन्दोस्तान की समस्याओं पर एक विचारोत्तेजक भाषण दिया। कुछ देर बाद उसने कहा, ''मैं दौलतमंद सैलानियों और आम यूरोपियनों और अमरीकनों की तरह मात्र ताजमहल देखने नहीं आया हूँ। मैं रात-भर दुकानों के बरामदों में सोता हूँ। किसानों की झोंपड़ियों में रहता हूँ। मजदूरों से दोस्ती करता हूँ। हालाँकि उनकी भाषा नहीं समझ सकता।''

पिछले साल, एक रोज शाम के वक्त दरवाजे की घंटी बजी। मैं बाहर गयी। एक लंबा तडंगा यूरोपीयन लड़का कैनवस का थैला कंधे पर उठाए सामने खड़ा था। दूसरा बंडल उसने हाथ में सँभाल रखा था और पैरों में मिट्टी में लिथड़े हुए पेशावरी चप्पल थे। मुझे देखकर उसने अपनी दोनों एड़ियाँ जरा सी जोड़ कर सर झुकाया। मेरा नाम पूछा और एक लिफाफा थमा दिया। ''आपके मामूं ने ये खत दिया है।'' उसने कहा।

''अंदर आ जाओ। मैंने उससे कहा और जरा अचंभे से खत पर नजर डाली। ये अल्लन मामूं का खत था और उन्होंने लिखा था—हम लोग कराची से हैदराबाद सिंध वापस जा रहे थे। माकली हिल पर कब्रों के दरमियान इस लड़के को बैठा देखा। इसने अँगूठा उठाकर लिफ्ट की फर्माइश की और हम इसे घर ले आये। ये दुनिया के सफर पर निकला है और अब हिन्दोस्तान जा रहा है। ओटो बहुत प्यारा लड़का है, मैंने इसे हिन्दोस्तान में अपने रिश्तेदारों के नाम खत दे दिये हैं। और उनके पास ठहरेगा। तुम भी इसकी मेजबानी करो। *नोट : इसके पास पैसे लगभग बिल्कुल नहीं हैं।*

लड़के ने कमरे में आकर थैले फर्श पर रख दिये और अब चुंधिया कर दीवारों पर लगी हुई तस्वीरें देख रहा था। इतने ऊँचे कद के साथ उसका बच्चों का सा चेहरा था, जिस पर हल्की-हल्की सुनहरी दाढ़ी मूँछ बहुत अजीब सी लग रही थी।

'एक और हिच हाईकर' मैंने जरा कोफ्त से सोचा। अल्लम मामूं बेचारे धर्मभीरु आदमी इसकी चिकनी चुपड़ी बातों में आ गये होंगे क्योंकि ये इन्टरनेशनल आवारागर्द अपने स्वार्थ के लिए राह चलतों से दोस्ती कर लेने का गुण खूब जानते हैं। ''शाहिदा ने भी आपको सलाम कहा है। उसने मेरी तरफ मुड़कर बड़ी अपनाईयत से कहा।

''शाहिदा?''

''आपकी कजन शाहिदा। मैं बनारस में उनके यहाँ ठहरा था और लखनऊ में आपकी फूफी के यहाँ। और चाटगाम में अंकल अनवर के यहाँ रहूँगा। और अगर दार्जिलिंग जा सका तो कजन

सम्पर्कः खुर्शीद आलम, एफ 23/6 सी, शताब्दी एन्क्लेव, बरोला सेक्टर-49, नोएडा-201301

तुतहरा के घर पर ठहरूँगा।'' उसने जेब में से और लिफाफे निकाले।

''बैठ जाओ...ओटो...चाय पियो...'' मैंने एक लंबा सांस लेकर कहा। मुझे वो दो डच हिचहाईकर याद आये, जिन्होंने कराची में लड्डन मामूं के घर पर डेरे डाल दिये थे, क्योंकि उनके पास पैसे खत्म हो गये थे।

''मैं तुर्की और ईरान होता हुआ आया हूँ और जर्मनी से यहाँ तक मैंने मोटरों और लारियों में लिफ्ट लिये हैं। अब लंका जाऊँगा। फिर थाईलैंड वगैरा। वहाँ से कारगो बोट के जरिये जापान, अमरीका और इसके बाद घर वापस। इस वक्त तो मैं औरंगाबाद से एक ट्रक पर आ रहा हूँ।

''बेहद ऐडवेंचर रहे होंगे तुम्हारे सफर में।

''हाँ, इस्तंबोल में मैं तीन रातें गलता के पुल के नीचे सोया। और ईरान में...'' फिर उसने कई छोटे-छोटे ऐडवेंचर सुनाए। ''मैं कोलोन यूनीवर्सिटी में पढ़ता हूँ। उसने आगे बताया।

''पाकिस्तान और हिन्दोस्तान में तुमने क्या फर्क पाया। खाने की मेज पर मैंने उससे पूछा।

''वहाँ सब लोग मुझसे कश्मीर के बारे में पर बड़े जोशो-खरोश से बातें करते थे। यहाँ कश्मीर और पाकिस्तान का जिक्र बहुत कम किया जाता है। यहाँ के मसाइल...'' फिर उसने हिन्दोस्तान की समस्याओं पर एक विचारोत्तेजक भाषण दिया। कुछ देर बाद उसने कहा, ''मैं दौलतमंद सैलानियों और आम यूरोपियनों और अमरीकनों की तरह मात्र ताजमहल देखने नहीं आया हूँ। मैं रात-भर दुकानों के बरामदों में सोता हूँ। किसानों की झोंपड़ियों में रहता हूँ। मजदूरों से दोस्ती करता हूँ। हालाँकि उनकी भाषा नहीं समझ सकता।

खाने के बाद उसने बंबई का नक्शा निकाल कर फर्श पर फैलाया। बेचारे अंग्रेज बंबई की वास्तु कला को विक्टोरियन गोथिक कहते थे। यहाँ क्या-क्या चीजें देखने लायक हैं?

''एलीफेंटा और अपालो बंदर। और...''

''ये सब गाईड बुक में भी मौजूद है। उसने जरा बेसब्री से मेरी बात काटी। और हिन्दोस्तान की अर्थव्यवस्था और रहन सहन के बारे में अपने विचारों से मुझे नवाजा।

''ओटो...तुम्हारी उम्र कितनी है। मैंने मुस्कुरा कर पूछा।

''मैं इक्कीस साल का हूँ। उसने बड़े गर्व से जवाब दिया। ''और जब जर्मनी वापस पहुँचूँगा तो बाईस साल का हो जाऊँगा और उसके अगले साल मुझे डॉक्टरेट मिल जाएगा। मैं यूनीवर्सिटी में जर्मन गेय शायरी का अध्ययन कर रहा हूँ। जर्मनी में सिर्फ डॉक्टरेट मिलता है। जिस तरह आपके बी.ए., एम.ए.। इसके बाद वो देर तक जर्मन गेय शायरी, विश्व राजनीति और हिन्दुस्तानी आर्ट पर रोशन डालता रहा। वो तस्वीरें भी बनाता था। किस कदर कुरात लड़का है। मैंने दिल में सोचा।

अधिकतर जर्मनों की तरह बहुत ही संजीदा, धुन का पक्का और हास्य व्यंग्य से लगभग विमुख।

''मैं रात को सोने से पहले आपकी किताबें देख सकता हूँ?''

''जरूर।''

रात गये तक बैठक के कमरे में रोशनी जलती रही। सुबह तीन बजे गुस्लखाने में पानी गिरने की आवाज आयी, तो मेरी आँख खुल गयी। वो रातों रात नहा-धोकर फारिग हो चुका था ताकि सुबह को उसकी वजह से घरवालों को जहमत न हो। नाश्ते के वक्त उसने हिन्दोस्तान के बारे में उस किताब पर अपने विचार रखे जो उसने रात-भर में पढ़ कर खत्म कर डाली थी। फिर उसने बंबई का नक्शा उठाया और सैर के लिए निकल गया। वो अपने थैले में पाँच किताबें लेकर चला था जिन पर कमरा ठीक करते वक्त मेरी नजर पड़ी। गोयटे की फाउस्ट, हाईने की नज्में, रिल्के, ब्रेख्त और इंजील मुकद्दस। शाम को जब वो थका-हारा मगर बेहद चुस्त वापस आया तो मैंने उससे कहा, ''ओटो! कल रात तुम खुदा से इन्कार करते थे, मगर इंजील साथ लेकर घूमते हो!'' इस पर ओटो ने खुदा के कल्पना में एक भावनात्मक सहारे की मानवीय जरूरत पर एक संक्षेप सा भाषण दिया।

''ओटो तुम एलीफेंटा गये थे? वहाँ की त्रिमूर्ती और देवता...''

''मैं कहीं भी नहीं गया। विक्टोरिया गार्डन में दिन-भर बैठा लोगों की भीड़ का अध्ययन करता रहा। इन्सान, इन्सान सबसे बड़ा देवता है।

''हाँ-हाँ...ये तो बिल्कुल ठीक है। मगर तुमने खाना कहाँ खाया?''

''मैंने एक दर्जन केले खरीद लिये थे।'' मुझे सहसा बहुत शर्मिंदगी

हुई कि चलते वक्त सेंडविचेस उसके साथ करने मुझे क्यों न याद रहे और मुझे अल्लन मामूं के खत का ख्याल आया जिसमें उन्होंने लिखा था कि उसके पास पैसे लगभग बिल्कुल नहीं हैं।

खाने की मेज पर उसने कहा, ''मैं बहुत दिनों बाद पेट भरके खाना खा रहा हूँ।''

उससे जर्मनी के बारे में बातें करती रही। बर्लिन की दीवार का जिक्र करते हुए उसने मुझे इत्तिला दी कि वो बहुत सख्त ऐनटी कम्युनिस्ट है। ''घर पर मेरी अम्मां भी मेरे लिए बहुत मजेदार खाने पकाती हैं। आप मेरी अम्मां से मिलकर बहुत खुश होंगी। अब उनकी उम्र ब्यालिस साल की है। मुसीबतों ने उनको वक्त से पहले बूढ़ा कर दिया है, मगर वो अब भी दुनिया की सबसे हसीन औरत हैं।

''तुम उनके इकलौते लड़के हो?''

''हाँ, मेरे पिता फौजी अफसर थे। अम्मां सत्रह साल की थीं, जब उन्होंने पिता से शादी की। अब्बा पोलैंड के युद्ध में मारे गये। उनके मरने के दूसरे महीने मैं पैदा हुआ। बमबारी से बचने के लिए मुझे कंधे से लगाए-लगाए अम्मां जाने कहाँ-कहाँ घूमती रहीं। वो मुझे गोद में उठाए, सिर पर रूमाल बाँधे, फुल बूट पहने थोड़ा-सा सामान मेरी परियम्बो लेटर में ठुँसे गाँव-गाँव फिरती थीं और खेतों खलियानों में छुपती रहती थीं। अम्मां पोलैंड में एक गाँव में छिपी हुई थीं जब पोलिश फौजी उस रात उस मकान में घुस आये। मैं उस वक्त पूरे चार साल का था। मेरे बचपन की स्पष्ट याद उस खतरनाक रात की है...मैं डर कर पलंग के नीचे घुस गया। जब ऑफिसरों ने मेरी अम्मां को पकड़ कर अपनी तरफ खींचा तो मैं जोर से रोने लगा। वो अम्मां को घसीट कर बाहर खेतों में ले गये। अम्मां कई दिन बाद वापस आयीं। वो फौजियों से बचने के लिए अतने अर्से तक एक खलियान में छुपी रही थीं और मैं उस खाली मकान में अकेला था और बाहर गोलियां चलने की आवाज पर सहम-सहम कर कोनों खद्दरों में छुपता फिरता था और बावर्चीखाने की आलमारियां खोल-खोल कर खाने की चीजें तलाश करता था और जो कुछ पड़ा मिल जाता था भूख के मारे मुँह में रख लेता था। मगर वो अलमारियाँ सब ऊँची-ऊँची थीं जिनमें खाने-पीने का सामान रखा था। वो चुप हो गया और खामोशी से खाना खाने में मसरूफ हो गया। ''ये चावल बहुत मजे के हैं।'' उसने चंद मिनट बाद आहिस्ता से कहा।

इसी वजह से मैं जंग का तकलीफ-दी जिक्र उससे न छेड़ना चाहती थी। मैं जंग के बाद बड़ी होने वाली पीढ़ी से इस तरह की मार्मिक घटनाएँ सुन चुकी थी। मुझे वो फ्रांसीसी लड़की याद आयी जिसने फ्रांस के पतन के बाद इसी ओटो के समान जर्मनों की दरिंदगी के किस्से सुनाए थे। उसी पोलैंड में जहाँ ओटो और उसकी माँ पर ये सब बीती, उसी जमाने में वो नात्सी गैस चैंबर भी दिन-रात काम कर रहे थे जहाँ रोजाना हजारों यहूदियों को मौत के भेंट चढ़ाया जाता था और...मुझे उस रूसी लड़की का किस्सा याद आया। अपने सारे खानदान को अपने सामने जर्मन मशीनगन की नजर होते देखकर पल की पल में सदमें की शिद्दत से उस रूसी लड़की के बाल सफेद हो गये थे। ये 1945 के बाद के यूरोप की नौजवान पीढ़ी थी।

''अब तुम्हारी माँ कुछ काम करती हैं?'' मैंने पूछा।

''नहीं, वो महज एक 'हाऊस कीपर' हैं। उनको फौजी विधवा की हैसियत से पेंशन मिलती है। हमारा छोटा सा दो कमरों का मकान है। मैं शाम की शिफ्ट में एक फैक्ट्री में काम करता हूँ। मेरी अम्मां बहुत भोली-भाली हैं। एस्ट्रोलोजी में यकीन रखती हैं और पाबंदी से गिरजा जाती हैं। पिछले साल मैंने साईकल पर सारे जर्मनी का चक्कर लगाया था...जर्मनी दुनिया का हसीन तरीन मुल्क है।''

''हर मुल्क उसके बाशिंदों के लिए दुनिया का हसीन तरीन मुल्क होना चाहिए। मगर तुम 'नये नात्सी' न बन जाना।''

''नहीं। मैं 'नया नात्सी' नहीं बनूँगा। मुझे यहूदियों से बहुत ज्यादा नफरत नहीं है।'' उसने सादगी से कहा। मुझे हंसी आ गयी।

''मेरे नाना और नानी अब भी पूर्वी जर्मनी में हैं। मगर हम उनसे नहीं मिल सकते...जिस तरह आपका आधा खानदान यहाँ है, और आधा पाकिस्तान में। उसने कांटा उठाकर मुझे समझाया।

दूसरे रोज उसने वादा किया कि शहर की काबिल-ए-दीद जगहें जरूर देखकर आएगा। वो उस रोज भी दिन-भर रानी बाग में बैठा रहा। चौथा दिन उसने वार्डन रोड पर भोला भाई देसाई इंस्टिट्यूट के बरामदे में बैठ कर लाओस की जंग के बारे में लेख पढ़ने में गुजारा। अंदर लड़कियां नृत्य सीख रही थीं और हाल में हुसैन की नई पेंटिंग्स की नुमाइश हो रही थी। ''लिहाजा मैं साथ-साथ आर्ट व कल्चर से भी आनंदित होता रहा।'' उसने वापस आकर कहा।

बंबई में वो सारे फासले पैदल तय करता था और वार्डन रोड से

फ्लोरा फाउंटेन तक पैदल जाता था। ''मैं आठ आने से एक रुपया रोज तक खर्च करता हूँ और ज्यादा-तर केले खाता हूँ। हर जगह बेहद मेहमान नवाज लोग मिल जाते हैं। क्या ये अजीब बात नहीं कि इन्सान व्यक्ति के रूप से इस कदर सीधा सादा और नेक है और सामूहिक हैसियत में दरिन्दा बन जाता है?'' ये सवाल करने के बाद वो मुँह लटका कर बैठ गया। उस दिन वो एक ट्रक कंपनी से तय कर आया था बैंगलोर तक उनके ट्रक पर जाएगा।

सुबह-सवेरे उसने अपने थैले में किताबें और कपड़े ठूंसे, दूसरा थैला, जो उसका सफरी खेमा और बिस्तर था, लपेट कर कंधे पर रखा, खुदा-हाफिज कहा और ट्रांसपोर्ट कंपनी के दफ्तर फ्लोरा फाउंटेन पैदल रवाना हो गया।

ओटो को गए कई महीने गुजर गये। अल्लन मामूं का खत आया तो मैंने उन्हें शिकायत लिखी कि आपके बेटे ओटो ने यहां से आकर ये भी इत्तिला न दी कि कमबख्त अब कहाँ की खाक छान रहा है। मैंने ये खत पोस्ट किया ही था कि शाम की डाक से ओटो का लिफाफा आ गया। उसके टिकटों पर लाओस के बादशाह की तस्वीर बनी थी और खत में लिखा था, ''वो जर्मन लड़का जो आपके घर पर ठहरा था आपको भूला नहीं है। आप मेरे साथ बहुत मेहरबान थीं। (अंग्रेजी कमजोर है गलतियां माफ कीजिएगा) आप मेरे साथ बड़ी बहन की स्नेह से पेश आई और मैं मुहब्बत पर बहुत यकीन रखता हूँ। इसकी वजह शायद ये है कि अभी बहुत कम उम्र हूँ, लेकिन आपने ठीक कहा था, दुनिया में सिर्फ वही लोग खुश रह सकते हैं जो ज़िंदग़ी को बिना किसी पशोपेश के और प्रश्न किये बिना मंजूर कर लें। हम जितने ज्यादा सवालात करते हैं उतना ही ज्यादा स्पष्ट होता है ज़िंदग़ी काफी दुविधापूर्ण है। लंका में मैं नेवरा ईलिया से कनेडी एक टूरिस्ट बस के द्वारा गया। बस में एक सिंघाली छात्र से मेरी दोस्ती हो गयी। उसने रास्ते में मुझे अपने साथ खाना खिलाया। उसका नाम राजा था। उसने मेरे लिए फल भी खरीदे। बस में बहुत से ढोल रखे थे। राजा खूब गाने गाता रहा। झरने बहुत खूबसूरत लग रहे थे। राजा ने मुझसे कहा चलो हम सब नहायें। चंद मिनट बाद वो मर चुका था। वो पानी में डूब गया था। दो घंटे की तलाश के बाद उसकी अकड़ी हुई लाश हमें चट्टान के नीचे मिली। ये सब क्या है। मैं सोचता रहा हूँ कि ये कैसे हुआ। हममें से कोई भी राजा को उस हादसे से बचा न सकता था। क्या ये इत्तिफाक था या इसी को किस्मत कहते हैं? राजा अपने माता-पिता का इकलौता लड़का था। उसके बहन भाई पाँच और पंद्रह की उम्रों के दरमियान मर चुके थे। उसका बाप दृष्टहीन है और माँ बहुत बीमार। राजा उन लोगों का भरण-पोषण करने वाला था।

मदुराय में एक नौजवान शायर ने मुझसे कहा कि दुनिया की वजह से वो बहुत दुखी है। मद्रास में मैंने रेडियो इंटरव्यू से कुछ रुपये कमाए। फिर मैं पेनांग गया जो बड़ा खूबसूरत द्वीप है और वहां बेशुमार चीनी रहते हैं।

एक मालगाड़ी के आखिरी डिब्बे में बैठ कर मैं बैंकाक पहुँचा और बुध मठों में रहा और बौध भिक्षुओं के साथ खाना खाता रहा। दोपहर को खूबसूरत लड़कियां, खुश-लिबास महिलाएं अपनी-अपनी किस्मत और भविष्य का हाल पूछने भिक्षुओं के पास आती थीं।

ज्यादातर भिक्षु मुहब्बत के भूखे हैं और बे-तहाशा तंबाखू पीते हैं और कोई काम नहीं करते। बूढ़ी धर्म भीरु औरतें उन्हें खाना और पैसे देती रहती हैं। बहुत से भिक्षु मठों में इसलिए बैठे हैं कि उन्हें मेहनत करना अच्छा नहीं लगता। ये लोग सख्त काहिल हैं, मगर उनके मजहब में इस काहिली का एक पवित्र आधार मौजूद है...निर्वाण की तलाश...कुछेक उनमें से वाकई संजीदगी से ध्यान-ज्ञान में व्यस्त हैं। लेकिन ज्यादातर भिक्षु खाने और महिलाओं से गप्प करने के अलावा सोते रहते हैं। नॉनकाई में मैं मेकांग दरिया में नहाया उसके बाद लाओस आ गया।

दीनतीन एक बड़े से गाँव की तरह है। धूप बहुत तेज है और सड़कें गर्द-आलूद। सिर्फ रातें खुशगवार हैं क्योंकि अंधेरा सारी बद-सूरती, अत्याचार-अहिंसा और खूँरेजी को अपने अंदर छुपा लेता है, मच्छर बहुत हैं।

सवाना तक एक जहाज में मुझे मुफ्त की लिफ्ट मिल गयी और अब मैं पकसे में मौजूद हूँ। फिर कम्बोडिया जाऊँगा। मैं अंकल अनवर के पास चटगांव न जा सका क्योंकि बर्मा से पूरबी पाकिस्तान दाखिल होने में बड़ी दिक्कतें थीं। मैंने लाल चीन और उत्तरी वियतनाम के लिए वीजा की अर्जी दी है। पिकिंग और हनोई से मुझे फोन पर जवाब मिल जाएगा। कल मैं यहाँ से दक्षिणी वियतनाम जा रहा हूँ।

इस गलत-सलत अंग्रेजी के लिए दुबारा माफी चाहता हूँ। आपका बहुत शुक्रगुजार।''

''ओटो क्रुगर''

फरवरी 1963 के एक विदेशी पत्रिका में 'वियतनाम की जंगल वार' शीर्षक से एक रंगीन तस्वीरों वाला लेख छपा है। उन तस्वीरों में गोरिल्ला सिपाहियों को बंदूको का निशाना बनाया जा रहा है। कश्तियों में बैठे हुए गोरिल्ला कैदी मेकांग दरिया के पार ले जाये जा रहे हैं और किसान औरतें ये कश्तियां खे रही हैं। किनारे पर पहुँच कर उन कैदियों को गोली मार दी जाएगी। धान के खेतों के पानी में से जंगी कैदी गुजर रहे हैं और लेख के आखिर में दो पृष्ठों पर फैली हुई एक तस्वीर है जिसमें धान के हरे खेत हैं और धान की बालियां हवा के झोंकों से झुकी जा रही हैं और लंबे पत्तों वाले दरख्त हवा में लहरा रहे हैं। क्षितिज पर दरख्तों की कतारें हैं और सब्जा और पानी। ये ऐसा दिलफरेब मंजर है। चित्रकार जिसकी तस्वीरें बनाते हैं, शायर नज्में कहते हैं और कहानीकार धरती की गौरव गाथा लिखते हैं। इन हरे-भरे दरख्तों के पीछे किसानों के शांत झोंपड़े होंगे और इस गाँव के बासी तिनकों से बनी हुई छज्जेदार नोकीली टोपियां आढ़े दिन-भर पानी में खड़े रह कर धान बोते होंगे और गीत गाते होंगे और फसल तैयार होने के बाद मंडी में जाकर मेहनत से उगाया हुआ ये धान थेड़े से पैसों में बेच कर अपनी ज़िंदग़ियां गुज़ारते होंगे। इस नदी के किनारे लड़कियां अपने चाहने वालों से मिला करती होंगी और नौजवान माएं रंग बिरंगे सैरोइंग पहने, घड़े उठाए अपने बच्चों को नहलाने के लिए दरिया पर आती होंगी।

लेकिन इस तस्वीर में जो इस वक्त मेरे सामने रखी है कटे-फटे चेहरों वाली अर्धनग्न और खूनआलूद नौजवान लाशें पड़ी हैं, दूर एक कोने में भूरे रंग का बड़ा जंगी जहाज खड़ा है और तस्वीर के नीचे लिखा है;

''मौत का खेल...वियतकांग गोरिल्ले जिनको मेकांग दरिया के धान के डेल्टा में मौत के घाट उतार दिया गया। उनके साथी एक दूसरे के साथ रस्सियों से बंधे सर झुकाए एक कोने में बैठे हैं। इस खूँ-रेज आर-पर की लड़ाई में एक नौजवान हिच हाईकर भी है जो मेकांग दरिया के किनारे से गुजर कर उत्तरी वियतनाम जा रहा था, एक इत्तिफाकीया गोली का निशाना बन गया। उस खूबसूरत मुल्क में ये भयानक गृहयुद्ध 1944 से जारी है और...''

*****

ओटो क्रूगर ज़िंदग़ी का तजुर्बा हासिल करने दुनिया के सफर पे निकला था।

○○○

बंटवारे का सामान

महावीर राजी

पिता के मरने के जब दोनों के बीच निरंतर झगड़ा बढ़ता गया तो दोनों ने अलग होने का निर्णय ले लिया।

बंटवारे के तय शुदा दिन घर के आँगन में सारा सामान इकट्ठा किया जाने लगा। बर्तन भांडे, कपडे लत्ते, गहने जेवर, अलमारी पलंग, कैश, सोना चांदी आदि इत्यादि। आँगन में सामानों का ढेर लग गया। देख कर दोनों की आँखें चुंधिया गयीं। इतना वैभव! इतना संपत्ति! सोचा भी नहीं था।

'लगभग सारा सामान आँगन में आ गया है। है न?' बड़ा फनफनाया—'फिर भी चल, एक बार सारे कमरों में झांक आते हैं। कहीं कुछ छूट न गया हो।'

छोटे को बात पसंद आई। बड़े की नियत का कोई ठिकाना नहीं। सचमुच ही कहीं कुछ छुपा कर रख लिया हो! पत्नी की ओर देखा। उसने भी इशारे से सहमति जता दी।

दो तल्ला मकान! यानी चार कमरे! ऊपर छत पर एक बरसाती! झाँकने का काम नीचे से शुरू किया गया। एक-एक ताख! दोनों थक कर चूर!

'बरसाती को भी क्यों छोड़ें? बाद में कसक रह जायेगी।' बड़े ने व्यंग्य किया।

'ठीक है, ठीक है,' छोटे ने मुँह बिचका दिया।

दोनों दनदनाते हुए ऊपर आ गये। किवाड़ उड़के हुए थे। बड़के ने झटके से खोल दिए। भीतर चारों ओर पुराना कबाड़ बिखरा हुआ था और बीच की थोड़ी सी जगह में अम्मा गुदड़ी पर लेटी हुई थी। गुड़ीमुड़ी! खटका हुआ तो आँखें खुलनी ही थीं। दोनों अम्मा को देख कर सकपका गए। मानो अप्रत्याशित कुछ सामने आ गया हाक। एक पल का मौन! दोनों के बीच संकेतों में बात हुई। फिर बड़े ने कहा—''अम्मा...आज हम अलग हो रहे हैं। घर का सारा सामान बांटे जाने के लिए आँगन में इकट्ठा किया जा रहा है। तुम्हें भी नीचे चलना होगा।

अम्मा मिचमिची आँखों से एक बड़े को निहार रही थी। अचानक एक झपाका सा हुआ और पच्चीस साल पहले के कुछ लम्हे जेहन में जुगनुओं से कौंधने लगे...काफी मनौतियों और व्रत-उपवास की अष्टावक्री गलियों से गुजरने के बाद गर्भ में भ्रूण का अंकुरण! नौ माह तक कोख की कोहकाफी गुफा में भ्रूण की भरतनाट्यमी कलाबाजियां! कलाबाजियों से उपजती मर्मान्तक चीखें! असहय वेदना! फिर ऑपरेशन थिएटर का श्मशानी कक्ष! सीजर की कठोर अग्निपरीक्षा! थोड़ी देर में ही वात्सल्य की मीठी फुहारों से तनमन को ओत प्रोत करती मासूम किलकारियाँ...

किलकारियों की स्वप्निल मिठास में खोई बूढ़ी अम्मा को पता ही नहीं चला, कब दोनों ने उसे ला कर नीचे बांटे जाने वाले सामनों के साथ लिटा दिया है। ○○○

सम्पर्क: सी/ओ, प्रिंस, केडिया मॉर्केट, आसनसोल, ई-मेल: mahabirraji@gmail.com

निर्णय

किशन लाल शर्मा

''दादी''।

''कौन''? आवाज सुनकर बोली।

''तेरी पोती।

''मेरी पोती? मेरे तो कोई पोती नहीं है'', उस आवाज को सुनकर सरला फिर बोली, ''फिर तू कौन है''?

''दादी, मैं तेरी पोती हूँ, लेकिन अभी माँ के गर्भ में ही हूँ'', कन्या भ्रूण बोला, ''दादी, तू मुझे संसार में क्यों नहीं आने देना चाहती? माँ से गर्भपात कराने को क्यों कह रही है''?

सारी बात समझ में आने पर सरला बोली, ''मुझे पोती नहीं पोता चाहिये''।

''क्यों?''

''वंश की बेल को लड़का ही आगे बढ़ाता है।

''लड़का वंश की बेल को आगे तभी बढ़ायेगा, जब उसे कोई लड़की मिलेगी''।

''नादान नहीं हूँ, जानती हूँ'', सरल बोली, ''जब मेरा पोता जवान हो जायेगा, उसके लिये सुन्दर सी बहू लाऊंगी''।

''तेरी तरह ही सब दादियाँ सोच रही होंगी, तो तेरे पोते के लिये बहू कहाँ से मिलेगी''?

''तू इसकी चिन्ता मत कर'', सरला नाराज होते हुये बोली, ''मेरा दिमाग मत चाट,''।

''लेकिन मेरे इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ लेना'', कन्या भ्रूण बोला, ''तेरी दादी ने भी तेरी माँ को जन्म से पहले तुझे मारने का हुक्म सुना दिया होता तो''?

इस प्रश्न को सुनकर सरला की आँखें खुल गई। उसने कमरे में चारों तरफ देखा। कमरे में कोई नहीं था।

सच कहा था। सपने में उसकी अजन्मी पोती ने, अगर उसकी दादी ने भी ऐसा निर्णय लिया होता तो?

सरला मन ही मन 'बड़बड़ाई। नहीं'। वह अपनी पोती को मरने नहीं देगी। वह कौन होती है, उसे दुनिया में आने से रोकने वाली।

○○○

सम्पर्क: 103, रामस्वरूप कॉलोनी, शाहगंज, आगरा-282010, मो. 09458740196

मोयली की बेटी

मृदुला श्रीवास्तव

बेटी भात-भात चिल्लाती रही अधिकारी आधार-आधार और आधार काँव-काँव।

बेटी चल निकली

पर मोयली देवी पता नहीं क्यों अब, ''लड़की-लड़की'' चिल्ला रही है।

''आधार लाई?''

''हाँ लाई।''

''तो ले जा चावल। थैला खोल।''

''नहीं चाहिए अब चावल।''

''फिर क्या चाहिए?''

''लकड़ी। अब मुझे लकड़ी चाहिए।''

''लकड़ी?, पागल हो गई है क्या ये राशन की दुकान है कोई लकड़ी की टाल नहीं।...पहले तेरी बेटी भात-भात कहते न थकी और अब तू है कि लकड़ी-लकड़ी चिल्ला रही है। लगता है अभी भी आधार नही लाई तू उसका? तेरा तो देख लिया। अब लड़की को लेकर भी आ। शक्ल भी तो मिलानी है उसकी भई।

''कहाँ से लाऊं लड़की को?...मरदूदो मर गई बिटिया मेरी। भात-भात चिल्लाती मेरी बेटी मर गई।...तुमने, तुम लोगो ने मारा है उसे। अरे अगर आधार नहीं होगा तो क्या कयामत आ जाएगी? पर नहीं आधार लाओ आधार लाओ चिल्लाते रहे और मेरी बेटी...। अब लो, मारो अपने मुंह पर ये आधार। खो गया था। मिल गया।...मिल गया तो क्या मेरी बच्ची तो न बच पाई?''

''बस कर मोयली।''

''क्यों, जब मेरी बेटी की तरह भात-भात करता अगर कोई मर जायेगा तो उसकी चिता की लकड़ी लेने उसके घर वाले किसी और दुकान पर क्यों जाएंगे? उन्हें तुम्हें इसी दुकान से लकड़ी नहीं देनी चाहिए क्या? क्योंकि जिसके पास आधार नहीं उसे जीने का हक यूं भी कहाँ है? आधार नहीं तो अंतिम संस्कार तो होना तय है ही।...चुपचाप आधार देख और मेरी बेटी के अंतिम संस्कार के लिए लकड़ी दे।

''पर लकड़ी खरीदने के लिए आधार की जरूरत नहीं होती मोयली देवी''।

''अरे वाह, क्यों नही होती। कोई आकर किसी और मरे हुए की लकड़ी ले गया तो!...अरे अरे, आधार न मांगोगे तो तुम्हे पता कैसे चलेगा कि लकड़ी किस की चिता के लिए मांगी जा रही है? कोई दो बार मर गया तो?...अरे नास्पीटो तुम्हारा दिल नहीं दुखता भात-भात चिल्लाते इंसान से आधार-आधार मांगते?''

''सरकारी नियम है मोयली देवी।''

कैसा नियम? कहो न कि चिता के लिए लकड़ी भी आधार देख कर दे।...पूछो अधिकारियों से सांस लूँ कि न लूँ या उसके लिए भी अपना आधार दिखाऊं? मेरी जगह मेरी सांस किसी और ने ले ली तो?

सम्पर्क: सी-208, सेकैंड फ्लोर, सेक्टर-3, न्यू शिमला, शिमला-171009, (हि.प्र.)

...तुम हत्यारे हो मेरी बेटी के''

कहते हुए मोयली देवी दहाड़ मार निढाल हो वहीं लढक गई।

कुछ देर बाद होश आने पर मोयली देवी लकड़ी की टाल पर बढ़ चली। राशन की दुकान पर बेटी का पड़ा आधार पीछे से एक बार फिर बुला रहा था...''अरी मुझे तो लेती जा।''

''अब क्या करना है तेरा। मेरी बेटी तो मर गई।''

''नामाकूल औरत, अभी तो तेरी बेटी के मृत्यु प्रमाणपत्र के लिए भी मेरी जरूरत पड़ने वाली है।''

मोयली देवी समझ गई थी। घर में भात पके चाहें न पके, चिता जलाने के लिए लकड़ी हो चाहे न हो पर आधार जरूर होना चाहिए। कुछ सोच उसने बेटी का आधार उठा लिया। आधार पर बेटी की तस्वीर देख एक्कारगी फिर...। आँसू थे कि रूकने का नाम ही नहीं ले रहे थे।

आधार बगल में दबाये निपट अकेली खाली हाथ मोयली देवी अपनी झोपड़ी की तरफ बढ़ रही है। नही जानती कि बेटी की बेबस पड़ी लाश अब न जाने क्यूँ, न भात-भात चिल्ला रही है और न ही लकड़ी-लकड़ी?

''दे दाता के नाम तुझको अल्लाह, लकड़ी दे दो माई बाप।''

पागल हो चुकी मोयली देवी राशन की दुकान के बाहर गोदी में बेटी की लाश को लेकर बैठ गई है धरने पर। और बस यही कहे जा रही है।

लोगों ने उसकी बेटी की लाश के ऊपर फूल माला से सजे रखे कार्ड को देख एक-एक लकड़ी लाकर सचमुच लाश के ऊपर रखनी शुरू कर दी थी। सांझ होते-होते चिता की लकड़ी का ढेर ऊंचा हो गया।...यों बना मोयली की बेटी के क्रियाकर्म का आधार।

○○○

अर्जुन या एकलव्य

रोहित कुमार 'हैप्पी'

'अर्जुन और एकलव्य' की कहानी सुनाकर मास्टर जी ने बच्चों से पूछा, ''तुम अर्जुन बनोगे या एकलव्य?''

सारी कक्षा लगभग एक स्वर में बोली, ''अर्जुन!''

मास्टर जी बच्चों की समझ पर प्रसन्न थे। तभी कोने में बैठे उस एक बच्चे पर उनकी नजर पड़ी जो उत्तर देने की जगह मौन रहा था।

''रवि, तुम अर्जुन बनोगे या एकलव्य?''

''एकलव्य!''

उसका उत्तर सुनकर कक्षा के सभी बच्चे 'हीं-हीं' करके दांत दिखा रहे थे।

''बेटा! एकलव्य क्यों, अर्जुन क्यों नहीं?''

''मास्टरजी, अर्जुन सब सुविधाएं पाकर भी भूलें कर देता था लेकिन एकलव्य सुविधाहीन होते हुए भी कभी भूल न करता था। उसका निशाना कभी नहीं चूका! गुणवान कौन अधिक हुआ?''

मास्टरजी के आगे एक नया 'एकलव्य' खड़ा था। अब मास्टर जी क्या करने वाले थे?

○○○

सम्पर्क: भारत सदन, 2/156, यूनिवर्सल ड्राइव, हेन्डेरेन, वेन्टकेरे, 0610, ऑकलैंड, न्यूजीलैंड, मो. 021-1713934

गुलशन पिपलानी की दो लघुकथाएँ

अहसास का जादू

सत्तर बच्चों की प्राईमरी कक्षा के बच्चों को पढ़ाना कितना आसान हो सकता है यह वह ही जान सकता है जो अहसास के जादू को जानता है। आशा ने हमेशा जीवन को सकारात्मक नजरिये से देखा था। ऐसा नहीं था कि उसे नकारात्मक विचार नहीं आते थे।आते तो थे, नित्य आते थे, पर उनको सकारात्मकता में बदल देना आशा की फितरत थी। उसकी यह फितरत, उसे अहसास के जादू ने ही दी थी।

आशा एक प्राइमरी स्कूल में अध्यापिका थी पर वह अहसास के जादू को जानती थी। आशा हमेशा कहती थी कि जो व्यक्ति अमीर नहीं होता दरअसल वह भी अमीर होता है पर वह नहीं जानता कि वह अमीर है। हर व्यक्ति उतना ही गरीब है जितना वह अमीर है परंतु अमीर होने का अहसास अमीर होने से अधिक आनन्द प्रदान करता है, इसी प्रकार गरीब होने से गरीब होने का अहसास अधिक दु:खदायी होता है।

उसने प्रिंसिपल से इजाज़त ले कर सब बच्चों को अपने पुराने कपड़े लेकर आने को कहा। उससे सम्भव ने पूछ ही लिया, ''मैडम आप इनका क्या करेंगी।'' आशा ने कहा ''हम सब कपड़े लेकर गरीब बच्चों को दे देंगे। जो कपड़े आपको छोटे हो गए हों पर फटे न हों या जिन्हें आप न पहनते हों वह कपड़े सब बच्चे लेकर आ सकते हैं।''

सम्भव घर पहुँचा तो अपने कुछ कपड़े निकाल कर अलग रखने लगा। चेतना ने उससे पूछा ''यह क्या कर रहे हो संभव'' ''माँ पहले यह बताओ कि हम गरीब हैं या अमीर?'' सुनकर चेतना हतप्रभ रह गयी, वह सोचने लगी कि वह उसे क्या कहे। सम्भव ने वोही प्रश्न इतनी देर में माँ से दुबारा पूछ लिया। चेतना समझदार थी वह बोली ''सम्भव बेटा गरीब वो होता है जिसके पास देने को कुछ भी न हो''।

अगले दिन सम्भव दो शर्ट्स और दो पाजामे लेकर स्कूल पहुँच गया। आज पहली बार उसे अमीर होने का अहसास हुआ था।

ब्लेसिंगस

''विवेक का फोन आया था, क्या बात हुई'' किशन चँद जी ने आशा देवी से पूछा तो वह तो रो ही पड़ीं। ''रो क्यों रही हैं आप बताती क्यों नहीं, क्या कह रहे थे आपके लाडले''। ''कुछ नहीं, प्रणाम कहा है आपको और कह रहा था कि कोई बात दिल में न रख कर, माफ कर देना उसे।

आशा की बात सुनकर किशन चन्द जी नाराज होते हुए बोले ''तुम क्यों कर रही हो उसकी पैरवी, उसे माफी मांगने में शर्म आ रही है क्या? जोश ठंडा पड़ गया है या जॉब छूट गई है'' ''ऐसा कुछ भी नहीं है, जो आप सोच रहे हो'' आशा की आँखें नम थीं।

''घर का व्यापार छोड़ कर बंगलुरू चला गया था नौकरी करने, अब आटे दाल के भाव समझ आ गये होंगे उसे। दो हजार रूपए प्रति माह देता था उसे जेब खर्च के, कम थे क्या'' आशा ने हिम्मत कर के कहा ''पैसे की बात नहीं थी। आपने गुस्से में जो थप्पड़ मारा था'' ''मैंने थप्पड़ मारा था यह किसने कहा तुम्हें?'' ''आपने

सम्पर्क: साहित्य संपादक, मित्र संगम पत्रिका,
ई-मेल: gulshan.piplani@gmail.com

कहा था न 'कि तू दो कौड़ी का भी आदमी नहीं है' यह बात उसे थप्पड़ मारने से भी ज्यादा हर्ट कर गयी थी''।

''तो क्या गलत कहा था, सारा दिन दुकान में कंप्यूटर पर बैठा पता नहीं क्या क्या करता रहता था। न कस्टमर को अटेंड करता न कस्टमर से बात करता था। ऐसे थोड़ी सीखी जाती है दुकानदारी।'' किशन चन्द जी तेश में बोलते रहे।

''पढ़ाई करता रहता था कंप्यूटर पर। बच्चे को जब इंटरेस्ट ही नहीं था दुकानदारी में तो क्या करता वोह। आप ही जबरदस्ती उसे दुकान पर बिठाना चाहते थे'' आशा देवी ने शिकायत भरे लहजे में कहा। ''भलाई ही चाहता था उसकी मैं, बाप हूँ उसका, माँ बाप चाहते ही हैं न कि बच्चे साथ रहें। फिर वोह तो हमारा इकलौता पुत्र है।'' किशन चन्द जी के स्वर में दर्द साफ झलक रहा था।''

बहन की शादी के बाद ही विवेक बंगलुरू चला गया था। आशा देवी और किशन चन्द जी की दुनियाँ ही बदल गयी थी। बदल क्या गयी थी यूँ कहो कि सिमट कर रह गयी थी। किशन चन्द जी परेशान से जमीन की तरफ एक टक लगाए चुपचाप देख रहे थे, फिर आशा ने ही चुप्पी तोड़ी।

''पन्द्रह लाख का सलाना पैकेज मिला है उसे। कह रहा था कि 'पापा से कहना कि घर आऊँगा तब जितना गुस्सा करना हो कर लें और हाँ, कह रहा था फोन पर पापा की ब्लेसिंग्स चाहियें, कल जॉइन करना है।' रात को आपको फोन करेगा''। सुनकर किशन चन्द जी की आँखें सजल हो गयीं, सोचने लगे कि उनके कहे कड़े शब्द थप्पड़ थे या ब्लेसिंगस। ○○○

नज़रिया

आशा शर्मा

सुबह से ही शर्मा जी का मूड उखड़ा हुआ था। रह-रहकर बिटिया का मासूम चेहरा आँखों के सामने आ रहा था। कितना दर्द था उसकी आवाज में जब उसने बताया कि उसका बॉस उसे बिना कारण अपने चैम्बर बुला लेता है, उसके शरीर को आँखों से टटोलते हुए उसके कपड़ों पर अनावश्यक टिप्पणी करता है और रोज देर शाम तक ऑफिस में रोकने की कोशिश करता है।

मन ही मन एक भद्दी सी गाली बिटिया के बॉस को देते हुए शर्मा जी फाईलों में दिमाग लगाने की कोशिश करने लगे। अचानक गलियारे से गुजरती मिस आरती को देख कर शर्मा जी की बांछे खिल गई। घंटी बजी चपरासी को उसे बुलाने भेजा।

''मिस आरती आज तो गजब ढा रही हो। क्या ड्रेस पहनी है। अच्छा सुनो-कल मेरी इम्पोर्टेन्ट मीटिंग है। उसके लिए आवश्यक कागजों की फाइल तैयार करनी है। तुम आज रूक कर सारी तैयारी करके जाना।'' शर्मा जी ये सब कहने ही वाले थे कि उन्हें मिस आरती में अपनी बेटी का चेहरा नजर आने लगा।

शर्मा जी अपने वातानुकूलित कक्ष में भी पसीना-पसीना हो गए। ○○○

सम्पर्क: ए-123, करणी नगर (लालगढ़), बीकानेर-334001

पर्वत राग

सुदर्शन वशिष्ठ

ऐसी ही बुलंद आवाज की धनी प्रसिद्ध गायिका रोशनी देवी (1944-1995) थीं। बाघल (जिला सोलन) रियासत के क्यार गाँव में जन्मी रोशनी देवी बचपन से ही गिद्धा नाचने और गीत गाने लग गई थी। रोशनी देवी पंचम स्वर की मंझी हुई गायिका थी। उसने एक नाटक मण्डली का गठन किया और कार्यक्रम देने लगी। रोशनी ''लोक गीत'' गाने में सिद्धहस्त भी थी। लोका का मशहूर गीत ''राती आइयां न्हेरियां, गल्ला सुणेयां मेरियां'', ''बाह्मणा रेया छोरूआ'' तथा गिद्धा गीत ''ते बे जानी मेरिए, गलो रा हार'' जैसे गीतों में समां बान्धना रोशनी का ही फन था।

सम्पर्क: 'अभिनंदन', कृष्ण निवास, लोअर पंथाघाटी, शिमला-171009 (हि.प्र.)

जिस तरह पर्वतों से कल-कल करते झरने बहे, उसी तरह यहां से अनेक राग रागनियों ने अंतरिक्ष में नाद भरा। यहां हर मनुष्य गाता है, हर मनुष्य नाचता है। पर्वतीय क्षेत्र में लोकनाच बचपन में ही घुट्टी के साथ पिलाया जाता है। इसी तरह पहाड़ी बालक या बालिका लोक गीत गुनगुनाने लगते हैं। आरम्भ में पिछड़ा प्रदेश होने के कारण लोक गायकी के स्वर पर्वतों से बाहर नहीं निकल पाए किन्तु पर्वतों द्वारा मार्ग खोलने के बाद गायकी या कलाकारी छिपी नहीं रह सकी और बहुत से कलाकारों ने पहाड़ों को लांघ दूर-दूर तक नाम कमाया। रियासती समय में राणा कुठाड़, कोटी, धामी, जुणगा, ठियोग, बाघल, बघाट आदि ने भी लोकगायकी को प्रोत्साहन दिया। गायक अनंत राम चौधरी राणा कुठाड़ के पास उस्ताद बूटे खां से संगीत सीखते थे। राणा द्वारा पर्याप्त सहायता दी जाती थी। इन्होंने राणा ठियोग के पास संगीतकार के रूप में नौकरी भी की। राणा ने इन्हें सत्रह बीघे जमीन भेंट में दी। अनंत राम चौधरी (1925-1984) वैसे होशियारपुर के थे जो ज्यादातर हिमाचल में रहे। चार वर्ष की वय में चेचक के कारण इसकी आँखें जाती रहीं। आकाशवाणी में 1952 में शास्त्रीय गायन परीक्षा पास करने के बाद वे आकाशवाणी दिल्ली, जालंधर और शिमला से गाते रहे। इनका विवाह 1953 में अरूणा देवी से हुआ था जो उस समय महाविद्यालय सोलन में सितार वादन पढ़ाती थीं।

काकू राम (1896-1956) जिला सोलन में कण्डाघाट तहसील के मही गाँव के वासी थे। इनके गीत आकाशवाणी जालन्धर से प्रसारित होते रहे। इन्हें बचपन से गाने का शौक था और जब ये अठारह वर्ष के थे, इनके गीतो को एच.एम.वी. द्वारा रिकार्ड किया गया। इन गीतों में ''बाह्मणा रेआ छोरुआ'', ''बेलुआ-बेलुआ बे'', ''लागा ढोलो रा ढमाका'' आदि थे। ये बाघल, बघाट और क्योंथल रियासतों में गाते रहे।

चम्बा के गायक प्रेम सिंह (1899-1988) लोकगीतों के साथ सुगम शास्त्रीय गीत गाने में माहिर थे। वे लोक नाट्यों, समारोहों पर गाते थे। हारमोनियम में सिद्धहस्त होने के साथ वे अर्धशास्त्रीय और आम लोकगीत गाया करते थे। चम्बा मिंजर के अवसर पर कूंजड़ी मेघ मल्हार गा कर ये श्रोताओं को मुग्ध कर देते। ये

मजहबी सिख थे और चम्बा शहर के धड़ोघ मुहल्ला के वासी थे।

लोक गायकी में कृष्ण सिंह ठाकुर का गाया ''लागा ढोलो रा ढमाका, म्हारा हिमाचल बड़ा बांका'' गाना बहुत प्रसिद्ध हुआ। यह गीत हिमाचल बनने के समय का है जब ऐसी गीतों की अपनी प्रदेश के प्रति मोह जगाने के लिए बड़ी जरूरत थी। कृष्णसिंह ठाकुर (1919-1997) जिला सिरमौर के कोटला बांगी गाँव के थे। आकाशवाणी शिमला के माध्यम से ये लोक गायकी में प्रसिद्ध हुए। इन द्वारा गाँव के समारोहों, विवाहादि के अवसर पर गायन के अतिरिक्त राज्य स्तरीय मेलों आदि में भी गाते रहे।

23 जनवरी 1927 को गाँव नटेली त. देहरा में जन्में कांगड़ा के प्रसिद्ध गीत ''जीणा कांगड़े दा'' के रचयिता तथा गायक प्रताप चंद शर्मा ने धंतारू यानि इकतारे को अपना साज बना कर लोकगायकी को नया आयाम दिया है। पहले वे मास्टर श्यामसुंदर के साथ गाया करते थे। नूरपुर के मास्टर श्यामसुंदर वायलिन बजाते थे। ये दोनों लोक सम्पर्क विभाग में कैजुअल आर्टिस्ट के तौर पर भी कार्यरत रहे और 1986 तक सेवारत रहे। सन् 1984 में वे दूरदर्शन जालन्धर से गाने लगे। इन्होंने सौ से अधिक गीत लिखे और गाए। ''दो नारां वे लोको लस्कदियां तलवारां'', खाणे जो मिलदा भत्त भटुरू, ''मैयाजी बैकुण्ड बणाया'' आदि इनके प्रसिद्ध गीत हैं।

इस परम्परा में जिला सोलन के हेतराम तनवार भी जाने माने गायक हैं जिनके ''मोहणा'', ''मामटिया बोलो दया रामा'' आदि गाने प्रसिद्ध हैं। इन्होंने म्यूजिक टुडे के लिए भी गाया और इन्हें संगीत नाटक अकादमी दिल्ली से पुरस्कृत किया गया। नंदलाल गर्ग, मोहन राठौर (ठियोग), प्रेमप्रकाश निहालटा (शिमला), कृष्णलाल सहगल (सिरमौर), पं. ज्वालाप्रसाद (बिलासपुर), इन्द्रपाल छावड़ा, अच्छर सिंह परमार (मण्डी), लेहरूराम सांख्यायन (बिलासपुर), पीयूषराज (चम्बा), करनैलराणा (कांगड़ा), धीरज (कांगड़ा), आदि के साथ कुछ नये गायक भी परम्परा को बचाए हुए हैं हालांकि बेशुमार कैसेट और सी.डी. के चलन से इनमें कुछ प्रदूषण आया है।

पुरानी लोक गायिकाओं में कुब्जा, कमला रानी, रोशनी देवी तथा वर्तमान में गम्भरी देवी, बसंती देवी के नाम उल्लेखनीय हैं।

तहसील ठियोग के पराला गाँव में जन्मी कुब्जा (1897-1977) को बचपन से ही संगीत नृत्य का शौक था। जुणगा के राजा विजय सिंह ने कुब्जा को अपने खर्चे पर गढ़शंकर के उस्ताद बूटे खां के पास प्रशिक्षण के लिए भेजा। बूटे खां के पहाड़ में तमाम शिष्यों में कुब्जा ने शीघ्र अपनी धाक जमा ली और पहाड़ी रियासतों में अपने फन का जादू बिखेरने लगी। इस पर ठियोग के राणा पद्मचंद ने उसे अपनी रियासत में बुला लिया। कुब्जा ने इन रियासतों के कई जाने माने समारोहों में भाग लिया और कई राग गा कर लोगों को मन्त्रमुग्ध किया। कुब्जा का विवाह ठियोग के ही मशहूर तूरी सिंधिया से हुआ था। हिमाचल के गठन पर डॉ. वाई.एस.परमार की अध्यक्षता में हुए समारोह में कुब्जा को नृत्य के लिए आमन्त्रित किया गया था।

कमला रानी (1920-1989) भी उस्ताद बूटे खां की शिष्या रही हैं। वे भी रियासती समय में महाराजा पटियाला, महाराजा नेपाल, राणा कुठाड़, राणा बाघल आदि के यहां अपनी बुलंद आवाज से गायकी से अपना कला कौशल दिखाती रहीं। सन् 1955 में आकाशवाणी शिमला की स्थापना पर कमला रानी ऐसी प्रथम गायिका थीं जिनहोंने यहां लोकगीत, भजन तथा गिद्धे गाकर अपनी धााक जमाई। उनका गाया गीत ''ब्राह्मणा रेया छोरूआ'' अपने में बेजोड़ था।

ऐसी ही बुलंद आवाज की धनी प्रसिद्ध गायिका रोशनी देवी (1944-1995) थीं। बाघल (जिला सोलन) रियासत के क्यार गाँव में जन्मी रोशनी देवी बचपन से ही गिद्धा नाचने और गीत गाने लग गई थी। रोशनी देवी पंचम स्वर की मंझी हुई गायिका थी। उसने एक नाटक मण्डली का गठन किया और कार्यक्रम देने लगी। रोशनी भी ''लोक गीत'' गाने में सिद्धहस्त थी। लोका का मशहुर गीत ''राती आइयां न्हेरियां, गल्ला सुणेयां मेरियां'', ''बाह्मणा रेया छोरूआ'' तथा गिद्धा गीत ''ते बे जानी मेरिए, गलो रा हार'' जैसे गीतों में समां बांधना रोशनी का ही फन था। रोशनी देवी ने बाद में वर्ष 1969 से केन्द्रीय गीत एवं नाटक प्रभाग में कलाकार के रूप में सेवा भी की। रोशनी देवी ने बाद में वर्ष 1969 से केन्द्रीय गीत एवं नाटक प्रभाग में कलाकार के रूप में सेवा भी की। रोशनी के गीत दिल्ली, श्रीनगर, मथुरा, जालंधर के साथ शिमला के आकाशवाणी केन्द्रों में बजते रहे। इन्हें म्यूजिक टूडे में गाने के साथ पं. नेहरू तथा इन्दिरा गांधी के समक्ष गाने का भी अवसर मिला।

''खाणा-पीणा नंद लैणी ओ गम्भरिए'' मशहूर गीत की रचयिता और गायिका गम्भरी देवी इस समय अस्सी के लगभग की वय में भी लोक गायिकी की मशाल बनी हुई। इसे ''बंदले री धार'' की गम्भीर कहा जाता है। जन्म बिलासपुर की बंदले की धार में

गिरदित्तू के घर हुआ, कब हुआ यह ज्ञात नहीं। गम्भीर गाँव में जन्मी-पली और नाच गाना सीखा। कुछ विद्या, उस्ताद गंगाराम खत्री से भी सीखी। फिर एक दिन बसंता नाम के पहलवान के साथ चली गई। बसंते के साथ कई कार्यक्रम दिए। जब गम्भरी ने पंजाबी गायिका सुरेन्द्र कौर के साथ जालंधर छावनी में फौजिओं के लिए कार्यक्रम दिया तो उसे 'शिमले वाली पहाड़न' कहा करते थे।

बसंती देवी का जन्म ठियोग (शिमला) के बलग गाँव में लगभग 1947 में हुआ। बसंती के पिता सरिया राम करियाला करते थे और माँ मैना देवी गायिका थी। इस विरासत से बसंती देवी बचपन से ही गायन के प्रति आसक्त हुई। बसंती का विवाह देवठी मंझगाँव के कलाकार माठा राम से हुआ। इसी बीच बसंती की कला की धुम शिमला तथा सिरमौर तक फैल गई। कुछ समय बाद माठा राम से तलाक और घूंड के कलाकार गरीबू राम से विवाह हुआ। बसंती ने आकाशवाणी शिमला से लोक गीत गाने और कई आयोजनों में कार्यक्रम देने आरम्भ किए। ''चैंखी'' गीत इनका सशक्त गीत है। ''हे रे दसिए'', ''नेगिया लच्छीरामा'' आदि इनके बेहतरीन गीत है।

अन्य प्रसिद्ध व सिद्धहस्त गायिकाओं में, जो इस समय गा रही हैं; शान्ति बिष्ट, शान्ति हेटा (शिमला), रविकांता कश्यप (मण्डी), कली देवी (करसोग), मनसा पण्डित, कौशल्या देवी (बिलासपुर), संगीता भारद्वाज, कृष्णा कपूर, मीना वर्मा, मेघा, वर्षा कटोच, निशा बिष्ट, भुबनेश्वरी तनवार आदि हैं।

लोकगीतों के कैसेट निर्माण में सोमदेव कश्यप के योगदान का उल्लेख किया जा सकता है। मण्डी के मूल वासी श्री कश्यप ने ''कोबरा'' आदि कुछ फिल्मों में भी संगीत दिया है। टी. वी. सीरियलों में भी मुख्य संगीत दिया। हिमाचल में लोकगीत कैसेट निर्माण में इन्होंने बम्बई से अपने और सविता साथी के स्वर में पहला पहाड़ी गीतों और नाटी का कैसेट बनाया जो बहुत लोकप्रिय हुआ। कुछ वर्ष पूर्व वे बम्बई छोड़ कर हिमाचल में आ गए। पहले सकरोहा में, अब पनारसा (मण्डी) में ''साउंड एण्ड साउंड'' स्टूडियो की स्थापना कर इन्होंने लोकगीतों के सैंकड़ों कैसट बनाए जिससे लोकगीतों का संरक्षण तो हुआ ही, अनेक उभरते हुए कलाकारों को भी प्रोत्साहन मिला।

○○○

रचनाकारों से विशेष अनुरोध

- कृपया अपनी मौलिक और अप्रकाशित रचना ही भेजें।
- कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें। ई-मेल द्वारा प्रेषित रचना यूनिकोड में टंकित करें या रचना के साथ टंकित फॉन्ट अवश्य भेजें।
- कृपया लेख, कहानी आदि एक से अधिक और कविता और लघुकथा दो से अधिक न भेजें।
- रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हो। शब्द-सीमा 3000 शब्दों तक है।
- रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन-परिचय भी प्रेषित करें।
- रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र (हाई रेज्योलेशन फोटो) आदि भी भेज सकते है।
- यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं वर्तनी को कृपया भली-भाँति जांच लें।
- यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।
- रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी अत: प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।
- स्वीकृत रचनाएं यथासमय प्रकाशित की जाएंगी।
- रचना के अंत में अपना पूरा पता, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।
- आप अपने सुझाव व प्रतिक्रिया कृपया pohindi.iccr@nic.in पर प्रेषित कर सकते हैं।

रामदेव धुरंधर के उपन्यास 'ढलते सूरज की रोशनी' में समसामयिक बोध

शालेहा प्रवीन

भ्रष्टाचार एक ऐसी समस्या है जो किसी भी देश की प्रगति को अवरुद्ध कर देती है। भ्रष्टाचार का स्वरूप इतना व्यापक हो गया है कि यह किसी व्यक्तिगत के आचरण तक सीमित न होकर समाज के हर क्षेत्र, राजनीतिक, धार्मिक शैक्षणिक संस्थाओं आदि में विषैली वायु की तरह फैल चुका है। परिणामस्वरूप उस समाज के लोगों को अनेक समस्याओं से जूझना पड़ता है। रामदेव धुरंधर के उपन्यास 'ढलते सूरज की रोशनी' में खुल कर भ्रष्टाचार की अभिव्यक्ति हुई है।

सम्पर्क: हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, हि.प्र.
shaleha02praveen@gmail.com मो. 8750619476

मॉरीशस के प्रख्यात साहित्यकार रामदेव धुरंधर का अधिकांश साहित्य वर्तमान समय से जुड़ा हुआ रहता है। जिसके कारण इनके अनेक उपन्यासों में समसामयिकता के दर्शन होते हैं। धुरंधर जी का ऐसा ही एक समसामयिक उपन्यास 'ढलते सूरज की रोशनी' है, जिसमें प्रबोध नामक मुख्य पात्र ही लेखक से बगावत कर बैठता है और शिक्षा मंत्री पद पर आसीन होने के कारण वह अपने भीतर के पौरुष को सर्वश्रेष्ठ मानने लगता है। धुरंधर जी ने उपन्यास के प्रबोध पात्र के माध्यम से मॉरीशस देश में फैली अराजकता का पर्दाफाश किया है। जो अपने पद के दम-खम तथा अपने निजी स्वार्थो को पूरा करने की लालसा में पूरे देश को खोखला कर डालने से भी नहीं घबराता है। दरअसल प्रबोध नामक पात्र मॉरीशस का आईना है। जिसके आईने में हम मॉरीशस के समसामयिक समाज के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक समस्याओं का प्रतिबिंब देख सकते हैं। ''समसामयिक आधुनिक कहे जाने वाले काल-खण्ड का एक अंग होते हुए भी वर्तमान समय से संचरित प्रवत्तियों का द्योतक है। किसी भी देश अथवा समाज की ज्वलंत समस्याओं का निरूपण, वहाँ के लोगों का उन समस्याओं से जूझना तथा उनके उत्थान-पतन की क्रियाएँ, प्रक्रियाएँ, प्रतिक्रियाएँ, उनकी गतिविधियाँ तथा संवेदनाएँ आदि सब मिलकर समसामायिकता का बोध कराते है।'' किसी भी देश के मनुष्य का जीवन उसके समाज की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक समसामयिक ज्वलंत समस्याओं से सम्पूर्ण रूप से असंपृक्त नहीं रह सकता। समसामयिक बोध समय से संबंधित बोध है। रामदेव धुरंधर ने अपने समय से प्रभावित होकर उपन्यास 'ढलते सूरज की रोशनी' का सृजन किया है। उपन्यास में समसामयिक बोध के विविध पहलू को परिलक्षित किया गया है। जिसमें लेखक ने राजनीतिक बोध के अंतर्गत राजनीतिक विद्रूपताएँ, शक्तिप्रदर्शन की प्रवृत्ति, राजनीतिक अधिकारों का दुरुपयोग, अवसरवादी प्रवृत्ति, चुनाव की राजनीति आदि अनेक पहलुओं का विवेचन प्रस्तुत किया है। ऐसे कई उल्लेख उपन्यास में मिलते है। ड्रग्स के बादशाह खेदन को एम.एल.ए. रचना बहादुर के नाम से जाना जाता था। वह प्रबोध की अपेक्षा ज्यादा ताकतवर राजनेता था। चुनाव से पहले बात हो गई थी कि पार्टी की जीत

हो तो उसे शिक्षा मंत्री बनाया जाएगा। चुनाव हुआ और जीत हुई, लेकिन उसे मंत्री बनाया नहीं गया। दोगला प्रधानमंत्री तो पैसे के लिए मरता है। प्रबोध ने पैसा देने के लिए प्रधानमंत्री की ओर हाथ बढ़ाया। पैसा का कीड़ा प्रधानमंत्री कैसे न लेता? सौदा हो गया और प्रबोध शिक्षा मंत्री बन गया चुनाव जीतने के लिए किस प्रकार से नेतागण विविध हथकंडों का प्रयोग करते हैं जैसी समसामयिक राजनीतिक समस्या को इस उपन्यास में उजागर किया गया है।

आज वर्तमान समय में सबसे बड़ी समस्या यह हो गई है कि आज राजनीति में भाई-भतीजावाद, गुंडागर्दी, लोगों के निजी स्वार्थ ने प्रवेश ले लिया है। कई बार तो राजनीति में लोग धर्म के नाम पर भी लोगों का शोषण करते हैं। जिसके फलस्वरूप सांप्रदायिक दंगों का जन्म होता है। कई बार ऐसा हो जाता है कि राजनीति क्षेत्र के विपक्ष नेता या उनके विरोधी विपक्षी लोग ही उनको उनके पद से हटाने के लिए षडयंत्र रचते हैं, और महिलाओं के द्वारा हनीट्रैप तथा तरह-तरह के ब्लैक मेल करने के हथकंडों को अपनाने लगते हैं जिसका वर्णन उपन्यास में इस प्रकार किया गया है। ''यह मॉरीशस का शिक्षा मंत्री है। नाम है प्रबोध सागर। दो दिन बाद मॉरीशस से इसकी रखैल आने वाली है। नाम है आनी चंद्रन। यह अपनी रखैल को बहुत चाहता है, फिर भी उससे दगा कर रहा है। तुम्हारे लाभ के लिए तुम्हें दोनों के नाम दे रहा हूँ। अपने देश के शिक्षा मंत्री प्रबोध सागर से बढ़िया ब्लैक मेल कर सकती हो। वह अभी बेहद नशे में हैं। अपनी और से इसे और नशे में निढाल करके इसके नंगे शरीर के दो-चार फोटो खींच लेना, बाप बोलकर तुम्हें लाखों रुपये देगा।'' आज भारत ही नहीं अपितु अन्य देशों में जो जहरीला प्रदार्थ लोगों की नशों में विलय हो रहा है। वह नशे का सेवन है। यह समस्या तब और विकराल रूप धारण कर लेती है जब इसका कारोबार राजनीति से जुड़ जाता है, तब इसका स्तर वैश्विक रूप ले लेता है।

रामदेव धुरंधर ने अपने उपन्यास में इस समसामयिक मुद्दे को बड़ी ही आलोचनात्मक दृष्टि से उद्धृत किया है। ''चन्द्रकला ने प्रबोध से कहा था, 'मैं और खेदन भारत के थे और तुम मॉरीशस के। हम तीनों ड्रग्स के साथी थे यहाँ हम दोनों का चरित्र जैसा था, तुम्हारा चरित्र भी वही हुआ। यह तो हम एक ही सड़े तालाब की गंदी मछली हुए। तब न मैं तुम पर हँस सकती हूँ और न तुम मुझ पर।'' उपर्युक्त पंक्तियों में रिश्वत का बोलबाला देखा जा सकता है। अत: लेखक के उपन्यास में राजनैतिक परिस्थितियों का, नेतागण के विविध हथकंडे, भ्रष्ट राजनीति का यथार्थ आदि का चित्रण हुआ है। मॉरीशस देश के राजनीतिक मूल्य किस रूप में हैं? कैसा शासन तंत्र है? आदि तमाम समस्याओं का उपन्यास में सही अंकन किया गया है। रामदेव धुरंधर जी ने अपने उपन्यास में एक ऐसी समसामयिक संक्रामण बीमारी से लोगों को अवगत किया है जिसके प्रति आज भी लोगों पूर्ण रूप से जागरूक नहीं हो पाएँ हैं। आज भी लोगों में एड्स जैसी संक्रमित बीमारी के प्रति जागरूकता की कमी दिखाई देती है। जबकि एड्स की समस्या एक सामाजिक समस्या है। वर्तमान समय में यह समस्या किशोरों के लिए अधिक चिंताजनक बनी हुई है। उपन्यास का पात्र प्रबोध सागर मॉरीशस का शिक्षा मंत्री मुम्बई जाता है जहाँ उसकी भेंट एक होटल के 'बार' में कर्णिका से होती है, जो एड्स संक्रामण से ग्रसित होती है। प्रबोध उसकी सुंदरता को देखकर उसके प्रति आसक्त हो जाता है और खेदन जैसे बिचौलिए के द्वारा कर्णिका के संपर्क में आकर उसके साथ बिना जाने समझे यौन संबंध बनाता है। जिसके कारण वह भी एड्स जैसी बीमारी से संक्रमित हो जाता है। जिसका वर्णन उपन्यास में मिलता है। ''कैंसर तो नहीं, लेकिन 'एड्स' से टूटे हुए प्रबोध ने आज अपने जीवन को अलग ही मापा। इस बड़ी उम्र में औरत के भोग से उसे एड्स था और वह बारह की उम्र से भोग जानता था।'' अत: प्रबोध अपनी ही नजरों में गिर जाता है। वह अपनी भोगलिप्सा में इतना अन्धा हो जाता है कि आनी जो उसकी प्रेमिका होती है उससेभी छल कर जाता है। जिसके कारण वह खुद की नजरों में गिर जाता है क्योंकि कर्णिका तो अपनी मर्ची से अपना देह का सौदा करके अपना जीवनयापन करती है। प्रबोध की यही हताशा, निराशा उसे कर्णिका जैसे चरित्र से भी छोटा कर देती है।

वेश्या बनने के पीछे स्त्रियों की अनेक प्रकार की विवशताएँ होती है। कोई भी स्त्री केवल वासनात्मक पूर्ति के लिए वेश्या नहीं बन जाती उसके पीछे कारण होते हैं, जो उन्हें विवश कर देते हैं। जैसे पारिवारिक समस्याएँ, स्त्रियों के प्रति पति का दुर्व्यवहार, किसी प्रेमी द्वारा विश्वघात या उसके द्वारा प्रेम के जाल में फंसने से उसका किसी और के हाथों सौदा कर देना आदि तमाम कारण है, जो स्त्रियों को वेश्यावृत्ति के बाजार में झोंक देता है। उपन्यास में कर्णिका पात्र भी ऐसी ही स्त्री है। जो अपने जीवनयापन के लिए वेशयावृत्ति का मार्ग चुनती है। ''उसने मुंबई आने पर अपना नाम 'कर्णिका' रख लिया था। उसके साथ 'पूर्णा' फिल्म की प्रसिद्धि जुड़ी हुई थी, इसीलिए उसे यहाँ फिल्म प्राप्त होने

में कोई कठिनाई नहीं हुई। उसे दो फिल्में मिलीं, लेकिन दोनों बुरी तरह पिट गयीं। यह उसकी असफलता का मानो कीर्तिमान बनकर यहां फिल्म जगत में छा गया इधर काफी वक्त बीता, लेकिन उसे एक भी फिल्म नहीं मिलीं, पर उसे यहां जीना तो है। बस सब कुछ पैसे पर आकर अटक जाने से वह गुमराह हो गई है।'' स्त्रियों की स्थिति तब और दयनीय हो जाती है जब विवाह के समय दहेज की मांग पूरी न कर पाने में उसका परिवार सक्षम नहीं हो पाता, ऐसे में उसके ससुराल वाले यहाँ तक की उसका पति भी उसको दहेज के नाम पर यातनाएँ देने लगता है, जिसका स्पष्टीकरण उपन्यास में लेखक ने किया है। ''मूछों वाला एक भीमकाय आदमी एक औरत को मार रहा था। उसने औरत को खुश करने के लिए पैसा दिया था, लेकिन औरत इस खेल में कच्ची साबित हुई थी। बाई उस आदमी से कह रही थी, वह औरत आज ही उस धन्धे में आई थे, इसीलिए पूरी कला उसे आती नहीं। कल उसकी शादी हुई थी और आज उसके पति ने उसे यहां बिठा दिया था। लड़की के बाप ने बात देकर भी दहेज देने में कोताही की थी। उसके पति का यही दंश था।'' वर्तमान में आज मानवीय नैतिकता हीन होती जा रही है। जिसके कारण पारिवारिक सम्बन्धों में परंपरागत संस्कार नष्ट होते जा रहे हैं। फलस्वरूप देह की प्रधानता अधिक उभर गई है। यही कारण है कि आज स्त्रियाँ खुद को कहीं भी सुरक्षित नहीं महसूस करतीं।

'ढलते सूरज की रोशनी' उपन्यास में समसामयिक स्त्रियों के यौन शोषण को चित्रित किया गया है। सावी नामक पात्र का व्यक्ति अपनी ही बेटी रुमिला का यौन शोषण करता है। अपनी ही बेटी से शारीरिक संबंध बनाने के लिए अपनी पत्नी से मार-पीट करने लगता है जिसका उदाहरण उपन्यास में यों मिलता है- ''सावी ने आनी को बताया उसका पति अपनी बेटी का शीलहरण करने की कोशिश करने वाला महा पापी आदमी है। इसी बात पर उसने उसे झाड़ू से मारकर घर से हमेशा के लिए दूर भगाया था। अब शादी के नाम पर वह आया था, बेटी यह मानने वाली नहीं थी। माँ भी तो नहीं चाहती, वह आदमी उसके यहाँ रहे। आँगन में बाते हो रही थी। वह नशे में चूर था। माँ-बेटी उसे घर के भीतर आने से रोक रही थीं। दिल की दु:खी सावी ने सिर झुकाकर बेहद शर्म से आनी को बताया, वह बेटी के सामने माँ को खींचकर घर के भीतर ले जाना चाहता था।''

'ढलते सूरज की रोशनी' में खुल कर भ्रष्टाचार की अभिव्यक्ति हुई है। ''इस होटल में शरीर का व्यापार चलता था। जज कामुकतावश अक्सर यहां औरतों का मजा लूटने आता था। दो-चार औरतों को यहां बिठाये रखा जाता था। किसी को पसन्द कर लें और उसे लेकर एक कमरे में चले जाएं। इस शहर की नाक पर इतनी बड़ी अवैधता रची जाती थी, लेकिन पुलिस मानो यह जानती ही नहीं थी।''

रामदेव धुरंधर अपनी सूक्ष्म दृष्टि रखने वाले प्रख्यात लेखक हैं। उन्होने अपने उपन्यास के माध्यम से समसामयिक बोध के तमाम पहलुओं पर अपनी स्वतंत्र अभिव्यक्ति की है। लेखक ने यथा स्थान मॉरीशस और भारत देश की राजनीति का पर्दाफाश किया है तथा समाज में बढ़ती वेश्यावृत्ति, विधवा जीवन की त्रासदी, बढ़ता भ्रष्टाचार, पुलिस व्यवस्था, मॉरीशस समाज में फैली विद्रूपताएँ, नशे की समस्या और एड्स जैसी गंभीर बीमारी आदि अनेकानेक समसामयिक समस्याओं को उजागर किया है।

○○○

21वीं सदी के निबंध साहित्य में संबंधों का बदलता स्वरूप

मनप्रीत सिंह संधू

आज जो अनेकमुखी अँधेरा हमारे चारों ओर सक्रिय है उसने हमारी जीवनगत आस्थाओं को खण्डित कर धूमिल किया है। विश्वास के बिरवे इस सड़ांध और सीलन भरे वातावरण में मुरझा रहे हैं। ऐसे बदलाव के समय में यह निबंध दीये की लौ को उकसाने का काम कर रहे हैं। उजाले की पक्षधरता में रचे गए इन निबंधों में जीवन का शाश्वत संदेश समाया हुआ है।

सम्पर्क: विलेज-लक्खोवाली, पोस्ट ऑफिस-चकबुओं के, तहसील-जलालाबाद, जिला: फाजिल्का (पंजाब)-152033 मो. 9815805256, ईमेल- ms4003555@gmail.com

वर्तमान समय स्वार्थ का समय है, इन स्थितियों को पैदा भी मानव ने ही किया है अपने स्वार्थ के लिए ही काम करना और धन और अपने जीवन के प्रति अधिक आधुनिक होना ही इसका प्रमुख कारण है। इस तरह वर्तमान में निबंधों का अध्ययन करके इन समस्याओं पर विचार-विमर्श करके इनके निराकरण करने के लिए कार्य किया गया है। इस शोध पत्र में शोधार्थी इस निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयास करेगा मानव चाहे व्यक्तिक, चाहे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक कोई भी मूल्य अपनाए वे सम्पूर्ण मानवीय जाति को मान्य हों, जिससे समाज एंव विश्व के कल्याण को कोई चोट न लगे।

प्रस्तावना

समाज एक से अधिक लोगों के समुदायों से मिलकर बने एक वृहद समूह को कहते हैं जिसमें सभी व्यक्ति मानवीय क्रियाकलाप करते हैं। जो मानवीय क्रियाकलाप में आचरण, सामाजिक सुरक्षा और निर्वाह आदि की क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं। समाज लोगों का एक ऐसा समूह होता है जो अपने अंदर के लोगों के मुकाबले अन्य समूहों से काफी कम मेलजोल रखता है। एक व्यक्ति से मिलकर एक परिवार बनता है और परिवार से मिलकर एक गाँव बनता है फिर सभी का समूह मिलकर एक समाज बनता है। किसी समाज के अंतर्गत आने वाले व्यक्ति एक दूसरे के प्रति परस्पर स्नेह तथा सहृदयता का भाव रखते हैं। दुनिया के सभी समाज अपनी एक अलग पहचान बनाते हुए अलग-अलग रस्मों-रिवाजों का पालन करते हैं।

समाज के अर्थ को परिभाषित करते हुए कालिका प्रसाद ने अपने ग्रन्थ 'वृहत हिन्दी कोश' में समाज का अर्थ इस प्रकार बताया है- ''समाज मिलना, एकत्र होना, समूह, संघ, दल, सभा, समिति, आधिक्य, सम्मान करने वालों का समूह, विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संगठित संस्था, ग्रहों का योग, हाथी'' (प्रसाद 441) 'साहित्य का समाजशास्त्र' पुस्तक में डॉ. नगेन्द्र के अनुसार- ''समाज का अभिप्राय सामुदायिक जीवन की ऐसी अनवरत नियामक व्यवस्था से है जिसका निर्माण व्यक्ति पारस्परिक हित तथा सुरक्षा के निमित जाने-अनजाने कर लेते हैं''(नगेन्द्र 10)

समस्या कथन

''21वीं सदी के हिंदी निबंध साहित्य में संबंधों का बदलता स्वरूप'' हमारे इस शोध पत्र का समस्या कथन है। निबंधकारों ने अपने समय की स्थितियों को अपनी लेखनी में व्यक्त किया है और वर्तमान की समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए यह बहुत बड़ा उपादान है। साहित्य से हमें बहुत ज्ञान प्राप्त होता है जिससे हम अपने समाज में एक अच्छे जीवन का निर्माण करते हैं। और यह सफल भी होता है क्योंकि हम ज्ञान साहित्य से प्राप्त करते हैं।

उद्देश्य

कोई भी कार्य करने के लिए हमारा एक उद्देश्य होता है। इस शोध पत्र में भी हमारे कुछ उद्देश्य हैं जिनको आधार बनाकर एक सफल कार्य किया जा रहा है जो हमारे सामाजिक विकास के लिए उपयोग किया जा सकता है। इस शोध पत्र के उद्देश्य निम्न हैं -

- वर्तमान समय में हिन्दी निबंधकारों द्वारा बदलते पारिवारिक संबंधों के पक्ष में किए गये प्रयासों की पहचान करना।
- प्रत्यावर्तित पारिवारिक जीवन मूल्यों को वर्तमान के हिंदी निबंधों के द्वारा विवेचित करना।
- समाज से सम्बद्ध निबंधों में वर्तमान परिवार के महत्व को रेखांकित करना।

पारिवारिक संबंध

परिवार साधारणतया पति-पत्नी और बच्चों के समूह को कहते हैं, किंतु दुनिया के अधिकांश भागों में वह सम्मिलित वासवाले रक्त संबंधियों का समूह है जिसमें विवाह और दतक प्रथा स्वीकृत व्यक्ति भी सम्मिलित हैं। जब किसी एक घर में एक साथ दो या दो से अधिक सदस्य रहते हैं उन सदस्यों के समूह को परिवार कहते हैं, पति पत्नी और बच्चों के समूह को ही परिवार कहा जाता है। परिवार के सदस्यों की संख्या के आधार पर परिवार को देखा जाता है, अगर परिवार में सदस्यों की संख्या कम है तो उसे छोटा परिवार कहा जाता है। परिवार और भी होते है जैसे मूल परिवार, बड़ा परिवार और संयुक्त परिवार। परिवार समाज की सबसे छोटी ईकाई होती है माता पिता और उनके बच्चों को मिलाकर एक परिवार बनता है। एक परिवार का जीवन में बहुत महत्व होता है। एक बच्चा अपने परिवार की छत्र-छाया में रहकर ही बड़ा होता है वहीं वह प्यार के महत्व को समझकर रिश्तों में बंधता है। परिवार के रिश्ते बच्चे को खुशी प्रदान करते हैं और जिम्मेदारी का भी एहसास दिलाते हैं। परिवार ही है जो बच्चे को सामाजिक बनाता है।

परिवार हर किसी के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण होता है। परिवार के बिना यह जीवन एक अधूरा सा लगता है। माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी, बच्चे सभी एक परिवार का हिस्सा होते हैं। हर किसी परिवार के सदस्य दुख-सुख में एक दूसरे का साथ देते हैं। हर किसी मुश्किल को एक साथ मिलकर झेलते हैं और सुलझाते भी हैं। सभी समाजों में बच्चों का जन्म और पालन पोषण परिवार में होता है। बच्चों का संस्कार करने और समाज के आचार व्यवहार में उन्हें दीक्षित करने का काम मुख्य रूप से परिवार का होता है। इसके द्वारा समाज की सांस्कृतिक विरासत एक से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती है। व्यक्ति की सामाजिक मर्यादा बहुत कुछ परिवार से ही निर्धारित होती है। नर-नारी के यौन संबंध मुख्यत: परिवार के दायरे में निबद्ध होते हैं। औद्योगिक सभ्यता से उत्पन्न जनसंकुल समाजों और नगरों को यदि छोड़ दिया जाये तो व्यक्ति का परिचय मुख्यत: परिवार और कुल के आधार पर होता है। संसार के विभिन्न प्रदेशों और विभिन्न कालों में यद्यपि रचना, आकार, संबंध और कार्य की दृष्टि से परिवार के अनेक भेद हैं किंतु उसके यह उपर्युक्त कार्य सार्वदेशिक और सार्वकालिक हैं।

परिवार के सभी सदस्यों का होना अपनी अपनी जगह पर आवश्यक है। वर्तमान में डॉ. श्यामसुंदर दुबे ने पारिवारिक संबंध और परिवार की आवश्यकता पर निबंध लिखे हैं और परिवार के बदल रहे जीवन मूल्यों की चिंता को प्रकट कर रहे हैं ताकि उनका अध्ययन करके हम आने वाली पीढ़ियों को इसका ज्ञान दें। यहाँ पर उनके निबंध संग्रह 'आलोक अनवरत' में संकलित निबंध 'पिता, आखिर पिता ही है' में एक उदाहरण प्रस्तुत है- ''जीवन के निषेध व्यापारों में रमी रहने वाली जवानी जब उतरती है, तब वह अपनी अर्जित पूँजी का हिसाब लगाना शुरू कर देती है। घर-द्वार, जमीन-जायदाद, घोड़ा-गाड़ी उसका साथ छोड़ चुके होते हैं, ये सब उसके पुत्रों के रण क्षेत्र में परिणत हो जाते हैं वह अकेला निहत्था इस रण क्षेत्र का रेफरी भी नहीं रह जाता। उसका शरीर भी उसे धोखा देने लगता है तब उसके पिता की स्मृतियाँ, उसकी शरण-स्थली बन जाती हैं। वह अपने आप को अपने पिता की स्मृति अलगनी पर टांग देता है। पिता ही तो होता है, जो हर संघर्ष में अपनी संतान का संबल बनता

है।''(दुबे 34-35)

यहाँ पर पिता के महत्व को दुबे जी ने रेखांकित किया है कि पिता का हमारे जीवन में कितना महत्व होता है जो आज कहीं न कहीं बदल रहा है आज सभी के संबंध बदल रहे हैं जिसके नकारात्मक प्रभाव हमारे जीवन और हमारी संस्कृति और समाज पर पड़ते जा रहे हैं। लोक के तहस-नहस होते जीवन मूल्यों की चिंता करते निबंधकार ने लोक परंपराओं के परीक्षण हेतु अपनी बौद्धिक प्रतिक्रियाएँ भी यहाँ प्रस्तुत की हैं। ये प्रतिक्रियाएँ लोक जीवन के उस ऊर्जा की तलाश करती हैं, जिसमें लोक को पुनर्नवा करने की विपुल संभावनाएं हैं। इन 21वीं सदी के निबंधों में भारतीय जीवन की मूल्य मान्यताओं को जिस वैचारिक परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्त किया गया है वह नए भारत के नए संकल्पों का प्रकाश आलेख है।

सुरक्षित रहने और आगे बढ़ने के लिए इस दुनिया में परिवार सभी की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है। किसी के भी जीवन में परिवार की बहुत महत्वपूर्ण भूमिकाएँ होती हैं। स्कूली परीक्षाओं या विभिन्न प्रतियोगिताओं में अक्सर विद्यार्थियों को परिवार से संबंधित विषयों पर निबंध दिए जाते हैं जिसका उद्देश्य यही है कि हमारी नई पीढ़ी को इन बातों का अच्छे से ज्ञान हो। जब हम समाज में जन्म लेते है तो सबसे पहले जो ज्ञान या शिक्षा हमें मिलती है वह परिवार से मिलती है। हम परिवार से ही कुछ आवश्यक गुण अपनी वंश परंपरा के अनुसार सीखते हैं। अपने संपूर्ण विकास और समाज में भले के लिए बच्चे को सकारात्मक परिवारिक रिश्तों की जरूरत होती है। जब किसी भी परिवार में हम एक साथ रहते हैं तो एक स्वस्थ परिवारिक रिश्ते बच्चों में अच्छी आदतें, संस्कृति और परंपरा को बढ़ावा देने में मदद करते हैं। हमारी नई पीढ़ी को पूरे जीवन में तैयार करने की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका परिवार निभाता है जिससे प्रेरणा लेकर एक आदमी अपने जीवन में अच्छे संस्कार सीखता है। संयुक्त परिवार की जितनी जरूरत बच्चों को है उतनी ही बूढ़े लोगों को भी होती है।

वर्तमान पारिवारिक संबंध

किसी भी परिवार जिसमें बहुत से सदस्य होते हैं उसको बड़ा परिवार या संयुक्त परिवार कहते हैं। संयुक्त परिवार में रहने के बहुत से लाभ है और साथ ही बहुत से नुकसान भी वर्तमान समय में पैदा हो चुके हैं। पहले समय में सभी एक साथ मिलकर रहना चाहते थे लेकिन आज एक साथ नहीं रहना चाहते जिसमें बहुत समस्याओं ने घर कर लिया है हमारी नई आधुनिक सोच ने यह समस्याओं को जन्म दिया है। बहुत से और भी कारण है जिन्होंने पारिवारिक संबंधों को प्रभावित किया है उससे पहले यहाँ पर हम कुछ संयुक्त परिवार के लाभ और नुकसान की बात करते हैं।

संयुक्त परिवार के लाभ

- ये जीने का एक बेहतर तरीका उपलब्ध कराते हैं जो उचित वृद्धि के लिए अत्यधिक योगदान करता है।
- संयुक्त परिवार के सदस्य के पास आपसी सामंजस्य की समझ होती है।
- एक बड़े संयुक्त परिवार में बच्चों को एक अच्छा माहौल और सदैव के लिए समान आयु वर्ग के मित्र मिलते हैं इस वजह से परिवार की नई पीढ़ी बिना किसी रुकावट के पढ़ाई खेल और अन्य दूसरी क्रियाओं में अच्छी सफलता प्राप्त करती हैं।
- परिवार के मुखिया की बात मानने के साथ ही संयुक्त परिवार के सदस्य जिम्मेदार और अनुशासित होते हैं।

संयुक्त परिवार के नुकसान

- संयुक्त परिवार में उचित नियमों की कमी की वजह से कई बार कुछ सदस्य कामचोर हो जाते हैं और उनकी दूसरे की कमाई पर खाने की आदत बन जाती है। वो परिवार के अन्य अच्छे और सीधे सदस्यों का शोषण करना शुरु कर देते हैं।
- आमतौर पर संयुक्त परिवार में ऊँची हैसियत और अधिक कमाने वाले सदस्य कम कमाने वालो का अपमान करते हैं जिससे रिश्तों में दरार पड़ जाती है।
- घर में बच्चों को लेकर छोटी-छोटी बातें जैसे- कुछ खाने की वस्तुओं को लेकर या अधिक पैसा कमाने वाले अपने बच्चों को अच्छे और महँगे स्कूलों में पढ़ाते हैं और घर में ही दूसरे बच्चों का बोझ कभी नहीं बांटते इस तरह से बच्चों में भेदभाव की भावना आ जाती है।

इस तरह से वर्तमान में हमारे पारिवारिक संबंध पहले जैसे नहीं है। आज परिवार में पति-पत्नी, माता पिता और बच्चे, स्त्री पुरुष, छोटे और बढ़े सभी में रिश्ते बदल चुके हैं इन सब को

बहुत से पहलुओं ने प्रभावित किया है। आज वर्तमान नकारात्मक सोच, भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण, बाजारवाद, मोबाईल फोन इन सभी ने हमारे संस्कार, संस्कृति, हमारे संबंध और हमारे समाज को बहुत प्रभावित किया है। आज पति पत्नी के बीच पहले जैसे संबंध नहीं है। आज लोगों को किसी से कुछ नहीं लेना है वह मोबाईल फोन पर दिन भर लगे रहते हैं तो इसने भी बहुत प्रभावित किया है। इसी मोबाईल को लेकर कुछ लोगों का तलाक हो चुका है। स्त्री द्वारा घर का काम न करना, पूरा दिन अपने मायके के साथ बाते करते रहना जिससे घर में लड़ाई-झगड़ा होता है। इसी तरह की बहुत खबरें अखबारों में देखने को मिलती रही हैं। आज पत्नी कहती है मेरे पास समय नहीं है घर का काम करने का और पूरा दिन मोबाईल पे लगी रहती है इससे घर में झगड़ा का होना अनिवार्य है।

डॉ. श्यामसुंदर दुबे ने अपने निबंध संग्रह 'अलोक अनवरत' में बदलते हुए पारिवारिक संबंधों को लेकर कहा है कि- ''लोकगीतों में हमारे सामाजिक संबंधों की न जाने कितनी भंगिमाएँ प्रकट होती है। पति-पत्नी, भाई-बहन, देवर-भौजाई, जीजा-साली जैसे सबंधों को आधार बनाकर अनेक लोकगीतों की रचनाएँ हुई हैं। मुझे अचरज हुआ जब पिता-पुत्र जैसे संबंध-युग्म पर रचे गए लोकगीतों में खोजने के बाद भी नहीं पा सका। इन संबंधों में क्या काव्यात्मक होने की गुंजाईश कम है इस संबंध में व्याप्त संवेदन ऊष्मा में उतना ताप नहीं है जितने पर पिघलकर यह संबंध काव्य की श्रेणी में एक नया आकार ले सकें। आयु के बढ़ते कर्म मर पिता-पुत्र के बीच औपचारिकता का फासला बढ़ना शुरू हो जाता है।''(दुबे 36) निबंधकार ने यहाँ पर पिता पुत्र के संबंध को दर्शाया है कि आयु बढ़ जाने से पुत्र पिता से बड़ा नहीं होता पिता तो पिता ही होता है उसके लिए आज भी पुत्र का मोह वैसा ही है।

आज जो अनेकमुखी अँधेरा हमारे चारों ओर सक्रिय है उसने हमारी जीवनगत आस्थाओं को खण्डित कर धूमिल किया है। विश्वास के बिरवे इस सड़ांध और सीलन भरे वातावरण में मुरझा रहे हैं। ऐसे बदलाव के समय में यह निबंध दीये की लो को उकसाने का काम कर रहे हैं। उजाले की पक्षधरता में रचे गए इन निबंधों में जीवन का शाश्वत संदेश समाया हुआ है। उजाला कभी भी पराजित नहीं होता है वह हमेंशा सतत है। इन निबंधों को आधार बनाकर आज प्रचलित समस्याओं को लोगों तक पहुंचाना और इसका निराकरण करना ही हमारा उद्देश्य है ताकि हमारे समाज के लिए हम कुछ नया कर सकें।

महानगरों में पड़ोसी एक दूसरे को जानते नहीं है, लोग अजनबी की तरह रहते हैं। समय का ऐसा दौर चल रहा है कि किसी के पास कोई फुरसत नहीं है। पहले समय में कोई भी अनहोनी हो जाती थी तो सभी झट से साथ मिल जाते थे लेकिन आज कोई किसी के साथ अनहोनी हो जाए तो किसी का साथ या सहयोग मिल पाएगा इसका कोई भरोसा नहीं है। आदमी यह समझता है कि आज उसके पास सभ कुछ है यह सच भी है लेकिन सब कुछ पा लेने के बाद भी आदमी अकेला है। कहीं भी वास्तविक टिकाऊ खुशी देखने को नहीं मिलती है। आज हर कोई असंतुष्ट ही दिख रहा है। जहाँ पर इतना अजनबीपन हो वहां पर अपराध का घटित होना आवश्यक हो जाता है, अक्सर यह कहावत है कि जब आदमी अकेला होता है वह शैतान का घर होता है उसके मन में कुछ गलत प्रश्न चलने शुरू हो जाते हैं। आज सामाजिक संबंधों के साथ-साथ परिवार के आत्मीय रिश्तों में जुड़े सरोकार भी बहुत कमजोर पड़ रहे हैं।

सही बात तो यह है कि इस वैश्विक दौर में रक्त संबंधों के साथ में अब नातेदारी तथा रिश्ते भी स्वार्थ की आग में झुलसने को मजबूर हैं। परिवार के आत्मीय संबंधों पर चोट करने वाली बहुत घटनाएँ आज हमें देखने को मिल रही है। आखिर पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-बहन, और सभी पारिवारिक संबंधों वह समाज के आत्मीय संबंधों से जुड़ी ये सभी घटनाएँ सीधे-सीधे सामाजिक ढाँचे की दीवारों के दरकने के ही संकेत हैं। छोटे-छोटे स्वार्थ के लिए आज भाई-भाई जमीन का काम हो या कोई घर का बंटवारा हो लड़ते-झगड़ते हैं। किसी को भाई से कोई लगाव नहीं है एक भाई कमजोर है तथा दूसरे के पास पैसा अच्छा है तो वह उनके बोझ को कम नहीं करता बल्कि अपना पूरा हक मांगता है, ऐसे खून के रिश्ते हो गए हैं। सामुदायिक रिश्तों की मिसाल माने जाने वाले गाँवों में भी अब परिवारों की संयुक्तता विभाजित हो रही है। संपति से जुड़े रिश्ते भी अब बहुत कमजोर होते जा रहे हैं। कहीं-कहीं संपति से जुड़े यह रिश्ते इंच-प्रति-इंच जमीन को लेकर खून की होली खेल रहे हैं। अदालतों में अधिकतर मुकदमे जमीन-जायदाद को लेकर ही दर्ज हैं। परिवार की संयुक्तता कमजोर होने के पीछे सबसे बड़ी समस्या संपति के बंटवारे और उससे जुड़े विवादों की रहती है। घर परिवार में सास बहू काम के प्रति लड़ती हैं बहू कहती है उसको कोई काम नहीं करना है वह पूरा दिन नाटक देखने और मोबाईल पर व्यस्त रहती है। और इसी तरह माता पिता और उनकी संतान के संबंध भी बिगड़ चुके हैं पहले की तरह आज

संतान को माता पिता का डर नहीं है। किसी अच्छे संस्कार के लिए या किसी काम के लिए माता पिता अगर बच्चों को कुछ कहते हैं तो बच्चे आगे से बोलते हैं जबकि पुरातन समय में ऐसा कदापि नहीं था।

डॉ. दुबे जी के निबंध 'आलोक अनवरत' में उन्होंने कहा है कि- ''भूमंडलीय परिवेश ने बाजार को घर-घर में उतार दिया है। अब घर और बाजार में कोई फर्क नहीं है। पारिवारिक संबंधों में हमारी बदलती पहचान भ्रष्टाचार की पराकाष्ठा पनप रही है, अवलोकन बताते हैं कि आज हर रिश्ता एक तनाव के दौर से गुजर रहा है। रिश्ता चाहे पति-पत्नी का हो चाहे भाई बहन या दोस्त या किसी कर्मचारी का।''(दुबे 80) निबंधकार के कहने का सीधा मतलब है कि आज हमारे आस पास घटित हो रहे संबंध हमें बताते हैं कि आज रिश्ते कैसे चल रहे हैं। चारों ओर पूँजी, संपति, धन, बाजार और पेशेवरवाद के सामने मानव, मानवीयता, सहिष्णुता, चरित्र, संस्कार और मूल्य आदि की चर्चा पृष्ठभूमि में चली गई है।

इस विश्लेषण से यह साफ है कि आज के वैश्विक दौर में सामाजिक रिश्ते असहिष्णुता और संवेदनशून्यता को प्रतिबिंबित कर रहे हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि आज देश की संस्कृति तरह-तरह के वैश्विक संपर्कों से गुजर रही है। ऐसी अवस्था में सामाजिक रिश्तों का बदलना स्वाभाविक ही है। ऐसे दौर में हमें अपनी संस्कृति और समाज को और अपने सामाजिक संबंधों को बनाए रखने के लिए कार्य करने की आवश्यकता है। हमें सभी को एकता से यह बातों को अपने जीवन में अपनाना होगा तभी इससे छुटकारा पाया जा सकता है केवल समस्या का फैलाव करना किसी समस्या का समाधान नहीं होता है।

उपसंहार

आज सभी ओर समाज में कलुषित प्रवृतियों के कारण मानव में ईर्ष्या, द्वेष, मोह, मद की प्रवृतियाँ विकराल रूप धारण करती जा रही हैं जिसके कारण आज हमारे समाज में पारिवारिक रिश्तों में दरार पढ़ रही है। दूसरी ओर विज्ञान के बढ़ते प्रभाव के कारण, मानव आज विकास के शिखर पर विराजमान होता जा रहा है। आज के उपभोक्तावाद या यांत्रिकीकरण के प्रभाव से इतनी बुरी तरह जकड़ा जा रहा है कि वह संवेदनशून्य होता जा रहा है। परिणामत: हमारे समाज में अनेक भयानक और विकराल परिस्थितियां जन्म लेने लगी। ऐसे भयानक परिवेश में व्यक्ति को संवेशनशील बनाने के लिए तथ्य स्वस्थ और सुंदर समाज का निर्माण करने के लिए भारतीय जीवनमूल्य या मानवमूल्यों की नितांत आवश्यकता है। हमारे सामाजिक जीवन में परिवार का बहुत महत्व है जिसको इस शोध पात्र में दर्शाया गया है।

पुस्तक सन्दर्भ

दुबे, डॉ.श्यामसुन्दर. कोई खिड़की इसी दीवार से. मेधा बुक्स, 2006.

दुबे, डॉ.श्यामसुन्दर. नेह के नेग. ए पी बुक्स, 2009.

दुबे, डॉ.श्यामसुन्दर. राम-रंग-रस भींजी चुनरिया. 2010.

मिश्र, डॉ.कृष्ण बिहारी. अराजक उल्लास. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2010.

परिहार, डॉ.श्रीराम. परम्परा का पुनराख्यान. यश पब्लिकेशन, 2012.

दुबे, डॉ.श्यामसुन्दर. आलोक अनवरत. यश पब्लिकेशन, 2012.

दुबे, डॉ.श्यामसुन्दर. जहाँ देवता सोते है. बोधि प्रकाशन, 2017.

○○○

दो डोगरी कविताएँ

मूलः पद्मा सचदेव
अनुवादः कृष्ण शर्मा

1. निमंत्रण की चिट्ठी

तन अध-सोया है
मन जाग रहा है-
फागुन में अब की बार
नहीं आई निमंत्रण की चिट्ठी
नहीं बहा इस बार आँखों से
चश्माशाही का जल
नहीं आ पाए शीतल झोंके
चिनारों के-

झेलम का लाचार, शिथिल जल
सिर उठाए रहेगा प्रतीक्षारत
गुजरने वाली हर बस में
करेगा तलाश मुझे-

उदास है मेरी भारत माँ
माँ की आँख में
तिनका-सा गढ़ा है
मल रही है माँ अपनी आँखें
और तलियां भी-
माँ की दो आँखें
जम्मू व कश्मीर हैं

माँ की यही आँखें
निरंतर दुख रही हैं
उपचार आवश्यक हो गया है

माँ की आँखें
होंगी स्वस्थ जब
तभी शायद हासिल होगी
निमंत्रण की चिट्ठी

ईश्वर!
बंद हो अब खून की होली
खेलते-खाने के दिन हैं बच्चों के
उन्हें रास्ते पर ले आओ,
वादी की पगडंडियों हो जाएं
अवसाद व भय रहित
निडर घूमें लोग पहन कर फिरन
घंटों बैठ सकें
शंकराचार्य की सीढ़ियों पर
पीया करें शीतल जल
लिद्दर घाटी का

मेरे आने से पूर्व आएंगे रोजे
ईद के शुभ अवसर पर
आएंगी बेटियां अपने मायके
कोई तमाशा न हो सके उनके समक्ष-

पीहर के दुःख-दर्द में यदि
फट जाए कलेजा बेटी का
तो संभव नहीं होता
उसके जख़्म सी पाना...

सम्पर्कः मूल(डोगरी): श्रीमती पद्मा सचदेव, बी-242, चितरंजन पार्क, नई दिल्ली-110019, मो. 9811147654
हिंदी अनुवादः कृष्ण शर्मा, 152/119, पक्की ढक्की, जम्मू-180001, मो. 9419286258

2. अनुभूति

मेरे साथ आप थे जब–

फूल मुझसे अनुमति लेता था
खिलूं अथवा नहीं ?
बरसने से पहले
मुझसे पूछती थी घटा
बरस जाऊँ क्या ?
चाँद भी लिया करता था अनुमति
आकाश में आ जाऊँ क्या ?

मेरे साथ आप थे जब–
हवा भी चलती थी तो
बे–आवाज चलती थी
फूलों की सुगंध आती थी ऐसे
पहाड़ों पर बहार
पहला कदम रखती है जैसे
कुछ भय था, बेचैनी थी, पर
खूब संतुष्टि थी, जब आप थे।

आप गये तो
बदल गई थी हर शै
अवसाद में बदल गये
जीवन के रात–दिन

आज कई दिनों उपरांत
आकर बैठी हूँ वहीं
वही स्थान है, तनिक सिकुड़ा–सा है
हवा के भीतर से मैंने
खोज ली है अपनी साँसों की सुगंध
मल लिया है उसे अपने जिस्म पर
हो गई हूँ फिर से नई–हवेली
चल पड़ी है सुगंधित हवा
और चाँद कहीं बादलों के मध्य
जा छिपा है...

ooo

मेरा गाँव

डॉ. घमंडीलाल अग्रवाल

मिट्टी में मुक्तक मिलते हैं
गलियों–गलियों में गीत,
गाय–भैंस के रम्भाने में
कविता और अगीत।

छप्पर ऊपर की खपरैलें
अर्पण करती लेख,
टेढ़ी पगडंडियाँ खींचती
उपन्यास की रेख।

जन–जन की बोली उपजाती
मधुर–हास्य की गंध,
पहनावों में पहेलियों के
कई संकलन बंद।

नूतन प्रेम–कथा देने की
पनघट ने ली ठान,
शेर, गजल, गीतिका का लुटाती
अधरों की मुस्कान।

यहाँ रहट की ध्वनियाँ देतीं
एकांकी के भाव,
लेखक, कथाकार, कवि, शायर
लोगों का मेरा गाँव।

ooo

सम्पर्क: 785/8, अशोक विहार, गुरूग्राम–122006 (हरियाणा), मो. 9210456666, ई–मेल: glagrawal1954@gmail.com

बेटे के लिए कवितायें

गंभीर सिंह पालनी

एक

बेटे!
तुम मंजिल हो
कि पुल?

दो

एक ऐसे नाटक में
पिता की भूमिका मिली है मुझे
जिसमें
पहली सीन करने के बाद
मैं पाता हूँ
ग्रीन-रूम का दरवाजा
बाहर से बंद है

बेटे!
क्या मेरी पुकार
तुम तक पहुँचाती है?

तीन

तू गाँव कब आयेगा रे!

तेरे दादा के लगाये लीचियों के पेड़
इंतजार कर रहे हैं तेरा
तू गाँव कब आयेगा रे!

यहाँ बगिया से पता चलेगा तुझे
दादी के लगाये वृक्षों के
आमों का स्वाद

और यह भी कि
शहर के आमों में तो
उतना भी रस नहीं
जितना मिलता है
दादी के लगाये पेड़ों पर चढ़कर
व्हेल-काकड़ा खेलने में।

गाँव आना रे
तब तू जानेगा
कितना मजा आता है
घरवालों से छिपकर
नदी किनारे पहुंच
झरबेरियां तोड़ने में

मकोय, बिरंगल और रसभेरियां
बतलायेंगी तुझे
अपना-अपना स्वाद
जिसे ज़िंदगी भर
नहीं भूल पाएगी-ज़ुबान।

गाँव आना
चुकंदरों से सीखना
कैसे संजो लेते हैं वे
मिट्टी से खींचकर
मिठास।

○○○

सम्पर्क: द्वारा/शिवालिक बुक्स एंड पेपर एजेंसी, 22, आई.एस.बी.टी., देहरादून, 248001, ई-मेल: gambhir.palni@yahoo.com, फोन: 9897849737

जनार्दन मिश्र की दो कविताएँ

संबंधों की दुनिया में

दोस्तो
मैंने कभी किसी को
इस रूप में नहीं देखा
कि वह सुख-दु:ख से परे हो
मैंने सदा यही महसूस किया
कि सुख-दु:ख एक ही तराजू के
दो पलड़े हैं
हाँ, कभी सुख का
भारी होता है
कभी-कभी हम खुद तय नहीं कर पाते
कि हम ज्यादा दु:खी या सुखी हैं

यह बात दीगर है
कि पैसा बहुत से दु:खों को
कम कर देता है
पर पैसे से भी ऊपर होती है समझ
यकीनन।
संबंधों की दुनिया में
कोई कैसे कह सकता है
कि हम सुख-दु:ख से परे हैं।

मिलन

जिससे मिलता रहा वर्षों तक
परीक्षा की घड़ी आई
तो पता चला उससे मिला ही नहीं
जिसे देखता रहा वर्षों तक
परीक्षा की घड़ी आई
तो पता चला कि उसे देखा ही नहीं
जिसे सुनता रहा वर्षों तक
परीक्षा की घड़ी आई
तो पता चला कि उसे सुना ही नहीं
जिससे होती रहीं बातें वर्षों तक
परीक्षा की घड़ी आई
तो पता चला उससे कोई बात नहीं हुई
यकीनन!
जिनसे मिलने, देखने, सुनने
एवं बात करने के बाद भी
मन भटकता रहे
तो समझें
उस मिलन का
कोई अर्थ नहीं।

○○○

सम्पर्क: जनार्दन मिश्र, 1897/17, गोविंदपुरी एक्सटेंशन, कालकाजी, नई दिल्ली-110019, मो. 9953950778

क्षणिकाएं

प्रीति प्रकाश

1. ट्रक ने जरा गर्द क्या डाल दी,
कोंपलों पर,
बूढ़े सूखे पत्ते तो पीछे ही पड़ गए,
उसके।

2. प्यार तो देखो लता का
इस कदर लिपटी है,
की ठूंठ भी नावाफिक है,
अपनी असलियत से।

3. इस बरसाती रात में,
अदा तो देखो लैंप पोस्ट की,
मानो झरना फूट पड़ा हो,
ढेर सारी रौशनी के साथ।

4. धूप ने अपना शामियाना क्या हटाया,
झट पेड़ों की दरियाँ बिछा,
बैठने लगी चिड़ियाँ
उस अनछुई घास पर।

5. रोज रात,
बैंड, बाजे और रोशनी के साथ
अपनी दोस्ती का जश्न मानते है,
झींगुर और जुगनू,
उस अजाने बाग में। ○○○

सम्पर्क: पीएमसीडब्ल्यूएच होस्टेल, तेजपुर युनिवर्सिटी, जिला-नापाम, असम, मो. 9123411425, मो. preeti281192prakash@gmail.com

ना हार तू

प्रगति गुप्ता

काला हो या सफेद
ज़िंदगी के हर सफे की
खूबसूरती जिये-सी
कुछ सीखे सी...
सफे अगर खाली हो
बग़ैर हाशिये
बग़ैर लिखे हो,
तो देखो-
कितनी गुंजाइशें हैं
कुछ नया लिखने की...
तू देख तो
कैसे एहसासों के
ज़िंदा होने से
सफे भी सांसे लेते हैं,
चल कुछ अपनी-सी बातें
हम उन पर,
लिख कर कहते हैं...
कुछ उनकी भी
धड़कनें सुनते हैं...
अब काले हो या सफेद
हर सफे में,
नये रंग उकेरे जायें,
खामोश सफों पर
कुछ जिये-सी
इबारतें
फिर से लिखी जायें... ○○○

सम्पर्क: 58, सरदार क्लब स्कीम, जोधपुर (राजस्थान)-342001, मो. 9460248348

मोहिनी वाजपेयी के दो गीत

ज़िंदगी गुज़ार दी

हर नज़र हर नज़र को कहां भा सकी।
हर अदा हर अदा को कहां पा सकी।।

कुछ झुके, कुछ रूके, कुछ बढ़े,
ज़िंदगी पर किसी से न जी जा सकी।।

कुछ दिया, कुछ लिया, कुछ संजोया
चाहतें पर सभी क्या पा सकीं।

इंतजारों ने ज़र्रा-ज़र्रा करी ज़िंदगी।
सामने मन की मूरत न पर आ सकी।।

अपनी नाकामियां कमखयाली कहें
संगदिली ये तुम्हारी न जो ला सकी।।

इश्के इजहार कुछ लफ्ज जो कर सकें
जब मिले, जुबां जड़ नहीं गा सकी।

सम्पर्क: 48, नॉर्थ एवन्यू, पंजाबी बाग वेस्ट, नई दिल्ली-110026, मो. 9873748000

अलग-अलग रास्ते

तुम गीत सृजन के गाओ, मैं गीत प्रलय के गाऊं।
प्रिय पथिक सुगम पथ के तुम, मैं दिशा कहां से पाऊं।।

तुम भ्रमर कमल कुंजों के, मैं घिरी करील कुलों में
तुम सरस रास के रसिया, क्या तांडव ताल मिलाऊं।।

तुम पूर्ण चंद्र पूनम के, मैं राहू ग्रसित तमसा सी,
तुम विभा विभवमाला के, क्या कौड़ी तुम्हें दिखाऊं।।

तुम उदयाचल की महिमा, मैं अस्ताचल की लघिमा
तुम अटा घटा में खिलते, मैं कैसे घटा घटाऊं।।

तुम पुरवैया की बगिया, मैं लू में झुलसी तुलसी,
तुम फागुन के फगुनौटे, मैं लपटें खड़ी लुटाऊं।।

तुम खोज चुके कितनों को, कितनों ने तुमको खोजा,
मैं अपने में ही खोई, अब किसे खोजने जाऊं।।

हम एक सरित के दो तट, दोनों दोनों को दिखते,
ये दर्शन दर्शन के ही, कैसे मन को समझाऊं।।

○○○

पानी: तीन स्थितियाँ

राजकुमार कुम्भज

एक

मुझे पानी चाहिए
मुझे अंतिम बार पानी चाहिए
मैं मर रहा हूँ, मर रहा हूँ मैं
समूचे संसार को भी चाहिए पानी
जो मर रहा आकस्मिक

दो

कल नहीं होगा
कल पानी नहीं होगा
कल नहीं होगा पानी
और जब नहीं होगा पानी
तो मर जाएगी ये दुनिया
मर जाऊंगा मैं भी
मर जाएगी कविता

तीन

पानी नहीं मिलेगा,
तो कोशिशें लाख, मैं कहाँ जाऊंगा?
घर जाऊंगा तो घर नहीं मिलेगा
डर जाऊंगा तो डर मिलेगा
मुझे बचाएगा कौन?
मेरी पसंद है मौन

○○○

साभार: 331, जवाहर मार्ग, इंदौर-452002, फोन: 0731-2543380

ग़ज़ल

राजेंद्र निशेश

दिल की किताब में इतिहास के कमरे,
मिलते नहीं कहीं अब हास के कमरे।

रिश्तों की दूरी कम कैसे हो पाती
दूर से लगते हैं अब पास के कमरे।

रंगीन मौसम में भी दिल नहीं खिलते
सिमटते जाते हैं उल्लास के कमरे।

आवारा-सा बादल राहत क्या देगा!
खाली पड़े हैं सब प्यास के कमरे।

हर चेहरे पे इक चेहरा चढ़ा है
कंगूरे पर लटके विश्वास के कमरे।

तन की तकली पर नेह और डोर कैसे कते
वीरान से लगते हैं कपास के कमरे।

○○○

साभार: 2698, सैक्टर-40 सी, चंडीगढ़-160036, मो. 9417108632

तबला

शहंशाह आलम

एक

मैं दरिया तक आकर लौट नहीं जाता
एकालाप में लौटते देखा है तुमको मगर

देता हूँ थाप शांत धीमे चल रहे पानी पर
पानी पानी नहीं तबला है इस दरिया का
जिसको बजाता हूँ एकांत से जूझते

दो

जीवन में क्या है देह के अलावा बचा
जिसको आजमाते हो तुम मेरे विरूद्ध

मेरे जीवन में तबला है तुम्हारे अनकहे गुस्से को
ठंडी आग बना देने के लिए तुम्हारी कुंठा को भगाते

तीन

यह एक भारी रात है
तुम्हारे दु:ख में पागल

छंद भी लय भी भूल चुका
तबला मेरा तेरे ही ख्याल में डूबा

चार

घूमते रहने वाला मुसाफिर
घूम आता है सहारा तक जाकर

तबले का मीठा स्वर जिस तरह
तुमको ले आता है मेरे घर में
घर की तन्हाई को भगाने।

पाँच

तुमको जब देखा तन्हा देखा
इस न बोलने वाले शहर में

मैं वादक अकेला कहाँ हुआ कभी
अकेला रहकर भी तुम्हारे शहर में

ooo

सम्पर्क: हुसैन कॉलोनी, नोहसा बगीचा, नोहसा रोड, पेट्रोल पंप लेन के नजदीक, फुलवारी शरीफ, पटना-801502 (बिहार), मो. 9835417537,
ई-मेल: shahanshahalam01@gmail.com

निर्देश निधि की तीन कविताएँ

एक

जीवन के संकट टलते रहेंगे तब तक
जब तक मैं सो रही हूँ,
तुम सोच रहे हो
कि नदियों को बहते रहना चाहिए सदा
धरती को रहना चाहिए हरी भरी
और उसे खुद पर संवारते रहना चाहिए रह-रह वसंत
पेड़ों की नरम मुलायम या खरखरी पत्तियों में छिपकर
चहकते रहने चाहिए अनगिन पाखी।

और बच्चों के मासूम चेहरों पर
बनी रहनी चाहिए मृदुल मुस्कान
जीवन के संकट टलते रहेंगे तब तक।

दो

तुम्हारी वह नरम छुअन
और मेरे पोरूओं से होकर
सदा-सदा के लिए उसका मुझमें लोपन
दशकों बाद है आज तक, भी सुरक्षित मुझमें
क्या इतना गाढ़ा होता है प्रेमिल स्पर्श
घुलता नहीं बीते समय के घोल में
जो इतनी ही गाढ़ी रही तुम्हारी छुअन
तब भी टलते रहेंगे संकट

तीन

एक उम्मीद शेष है
डरी सहमी आँखों में इंसान की
तब तक, जब तक नन्हें बया का
बारीक तंतुओं से गूँथा और जुगनू के पंख से रौशन घर
टंगा है किसी सघन वृक्ष की नरम टहनी पर
कुलांचे भरती रहेंगी उम्मीदें मृग किशोर सी
तब तक, जब तक
उसके भीतर से आती रहेगी
नन्हें चूजों की मासूम आवाजें
टलते रहेंगे संकट।

○○○

सम्पर्क: विद्या भवन, कचहरी रोड, बुलंदशहर (उ.प्र.)-203001,
मो. 9358488084, ई-मेल: nirdesh.nidhi@gmail.com

राजेंद्र स्वर्णकार के संगीतमय दोहे

शीतल सरस सुहावनी गंधिल बहे बयार।
रविशंकर की बज रही, मानो मधुर सितार।।

मद्धम लय घन गरजते, मंद सुगंध समीर।
विष्णु पलुस्कर का मनो, गायन गहन गंभीर।।

तबले पर ज्यों मस्त हो दी हुसैन ने थाप।
बादल गरजे आ गई बरखा हरने ताप।।

सावन ने जग को दिया बरखा का उपहार।
ज्यों पंडित जसराज ने गाया मेघ मल्हार।।

भीमसेन जोशी भरे ज्यों ऊंचा आलाप।
गरज बरस कर मेघ ये हरते दुख संताप।।

खेतों-खेतों में मगन बरखा नाची आज।
वन उपवन आंगन हुए ज्यों बिरजू महराज।।

गाते नीर समीर मिल'... करे जगत रसपान।
राजन साजन मिश्र का जैसे युगल सुगान।।

बूंदे झनकीं, ज्यों छिड़ा शिवजी का संतूर।
मधुरस भीगे गा उठे मलिकार्जुन मंसूर।।

अहो! विलंबित मध्य द्रुत रूक थाम पड़े फुहार।
झूम-झूम कर गा रहे ज्यों पंडित ओंकार।।

सावन झड़ी ने यों किया मदमस्त।
गाए ठुमरी दादरा सिंह बंधु ज्यों मस्त।।

तेज कभी मद्धम कभी, बरसे बरखा नीर।
मींड मुरकियां ले रहे ज्यों उस्ताद अमीर।।

सावन संग बजा रहे अमजाद अली सरोद।
छेड़ें हरिजी हो मगर राग तिलक कामोद।।

बेगम अख्तर की गजल बरखा गाए आज।
बदरी कजरी गा रही बन मलिका पुखराज।।

आरोही स्वर गा रहे, ज्यों कुमार गंधर्व।
सावन झड़ से मन रहा आनंदोत्सव पर्व।।

बूंदन झड़ से यों हुआ मुदित मुग्ध संसार।
मानो किशोरी अमोणकर छेड़े राग बहार।।

मोर पिहू, कोयल कुहू, भीगे धूम मचाय।
सुल्ताना परवीन ज्यों जैजैवंती गाय।।

बरखा बिजुरी यों रमें गाँव शहर वन बाग।
लक्ष्मीशंकर निर्मलादेवी छेड़ें राग।।

उत्तर दिशि की बादली बूंदन झड़ी लगाय।
गिरिजा देवी ज्यों मगन चैती झूला गाय।।

झड़ी झमाझम झम लगी, बिजुरी चमके साथ।
एम राजम के वायलिन पर चलते ज्यों हाथ।।

बूंदन की स्वर लहरियां, सुनो लगा कर ध्यान।
ज्यों कैवल्य कुमार की मधुर मधुर हो तान।।

बरखा संग राजेंद्र गा रहा प्रणय के गीत।
रोम रोम झरना बहे क्लासीकल संगीत।।

ooo

सम्पर्क: पुत्र श्री शंकर लाल स्वर्णकार, गिराणी सोनार मोहल्ला, बीकानेर-334001 (राज.) मो. 931482626, ई-मेल: swarankarrajendra1@gmail.com

शब्द

सलिल सरोज

शब्द
अगर इतने ही
समझदार होते
तो खुद ही
गीत, कविता,
कहानी, नज्म,
संस्मरण या यात्रा-वृतांत
बन जाते।

शब्द
बच्चों की तरह
नासमझ और मासूम
होते हैं
जिन्हें भावों में
पिरोना पड़ता है
अहसासों में
संजोना पड़ता हैं
एक अक्षर
के हर-फेर से
पूरी रचना को आँख
भिगोना पड़ता है

जैसी कल्पना मिलती है
शब्द, बच्चे की भांति
वैसा रूप ले लेता है
जैसी भावना खिलती है
वैसी धूप ले लेता है

शब्द और बच्चे
एक से ही हैं
श्रेष्ठ कृति के लिए
दोनों को
पालना पड़ता है
समय निकाल के
संभालना पड़ता है
तब जाके
एक अदद इंसान
की तरह
एक मुकम्मल
रचना तैयार होती है।

○○○

सम्पर्क: बी-302, तीसरी मंजिल, सिग्नेचर व्यू अपार्टमेंट, मुखर्जी नगर,
नई दिल्ली-110009

नहीं चाहिए

डॉ. परमजीत ओबराय

दृष्टि नहीं,
दिव्य दृष्टि चाहिए।
क्योंकि-
मुझे मुट्ठी भर नहीं चाहिए।

मुझे मृत्यु नहीं मोक्ष चाहिए।
क्योंकि-
मुझे मुट्ठी भर नहीं चाहिए।

मुझे अपना नहीं, सर्व सुख चाहिए।
क्योंकि-
मुझे मुट्ठी भर नहीं चाहिए।

मुझे दीया नहीं,
सूर्य प्रकाश चाहिए।
क्योंकि-
मुझे मुट्ठी भर नहीं चाहिए।

मुझे सामान या सम्मान नहीं,
प्रभु!
आपका आशीर्वाद चाहिए।
क्योंकि-
मुझे मुट्ठी भर नहीं चाहिए।

मुझे दिखावा नहीं,
निर्मल सोच चाहिए।
क्योंकि-
मुझे मुट्ठी भर नहीं चाहिए।

मुझे केवल मानव नहीं,
मानवता चाहिए,
क्योंकि-
मुझे मुट्ठी भर नहीं चाहिए।

मुझे सपने नहीं
साक्षात सफलता चाहिए।
क्योंकि-
मुझे मुट्ठी भर नहीं चाहिए।

मुझे मुट्ठी भर चाहिए,
तो-
देने के लिए चाहिए।
केवल अपनी मुट्ठी भरने-
के लिए नहीं।

मुझे मुट्ठी भर बंद नहीं,
खुली चाहिए।
मुझे बंधन नहीं,
स्वतंत्रता चाहिए।

मुझे बार-बार जग में आना नहीं
आपके चरणों में निवास चाहिए।
क्योंकि-
मुझे मुट्ठी भर नहीं चाहिए,
आपकी असीम शरण चाहिए।

○○○

सम्पर्क: Indian School, Sohar PB 846, PC 311 Sultanate of Oman, Oman

बंटवारे के बाद

मो. बाबर खान

लम्हा लम्हा बंधी हुई थीं
तेरी यादें मेरी यादें
उन लम्हों पर गाज गिरा दी
घर में क्यों दीवार उठा दी

एक मिट्टी में ही तो सना था
तेरा बचपन मेरा बचपन
उस मिट्टी की धूल उड़ा दी
घर में क्यों दीवार उठा दी

एक ही छत थी एक ही छाया
तेरे सर पर मेरे सर पर
उस छाया की याद गँवा दी
घर में क्यों दीवार उठा दी

एक ही माँ ने तो पोंछे थे
तेरे आँसू मेरे आँसू
उस आँचल की सोज दबा दी
घर में क्यों दीवार उठा दी

एक बड़ी सी ईद की दुनिया
साथ थी तेरे साथ थी मेरे
छोटी छोटी ईद बना दी
घर में क्यों दीवार उठा दी

एक ही चूल्हा घर के माँ को
तुम बैठे थे हम बैठे थे
उस लम्हे की रीत बुझा दी
घर में क्यों दीवार उठा दी

हो जाते थे गम के लम्हे
आधे तेरे आधे मेरे
गम की अब मियाद बढ़ा दी
घर में क्यों दीवार उठा दी

एक ही जड़ से जा मिलती हैं
तेरी शाखें मेरी शाखें
काट के इसकी नींव हिला दी
घर में क्यों दीवार उठा दी

○○○

सम्पर्क: ग्राम-पोस्ट: जाले, जिला: दरभंगा, बिहार-847302,
मो. 7464045696

बाजार में हो

विवेक गौतम

बाजार में हो
बाजार में चमक है
तुम्हारी आँखों में नहीं।

हर तरफ सामान हैं
सामानों की कीमतें हैं
कीमतों की आवाजें भी हैं
तुम्हारी कोई कीमत नहीं
और...
आवाज भी

बाजार भी नहीं है तुम्हारा
खरीददार भी नहीं

तुम जो अपनी कीमत लगाते हो
बाजार नहीं लगाता

यदि टिकना चाहते हो
बिकना चाहते हो
बाजार में
तो हल्के हो जाओ
भारी शब्दों, कपड़ों और विचारों को
उतार फैंको।

छोड़ दो मार्केट में दलाल
शरमाना छोड़कर
जो मिले जैसा मिले
सवार हो जाओ उसकी पीठ पर
फिर कंधों से होते हुए
कूद पड़ो दूसरो के सिर पर

और...
मौका मिले तो काट डालो
भर लो जेबें

कामयाबी की बोतल का ढक्कन खोलो
नए पार्टनर बनाओ
बाजार मुस्कराने लगेगा
सही कीमत लगाने लगेगा

तुम तैयार तो हो बिकने को
बाजार किसी को निराश नहीं करता।

○○○

सम्पर्क: डी-61, प्रथम तल, ईस्ट विनोद नगर, दिल्ली-110091

सावन गीत

जितेंद्र निर्मोही

पनीया वाली शाम लौटकर आई है,
धनिया रानी लौट आओ ना घर को,
छप्पर कहलू रेलम पेले
खूब बंदरिया इन पर खेले
करता, खाद, किसानी, लहसून
हमने विपदा के दिन झेले
बरसी, खूब अषाढ़ी पीछे
सावन झिरमिर करे बोवनी,
खेती से सम्पट चूकी तुम
कुछ ठहरी कुछ हटी ओढ़नी
करे किसानी हम ओ किसनियाँ
देखो इस झरमर को
मक्का चवली ज्वार बाजरी
यह सब तो होगा ही
जो तुम घर से बाहर हो तो
घर बेदम होगा ही।
टूटी टूटी म्याल ज़िंदगी
ज्यों खजूर की छाया
इस तपनी में तपता साधू
साधक भी भरमाया
दूर बजे अलगोजा
तुमको कहाँ-कहाँ न खोजा
ये जोगणियाँ है रात,
जोगनियाँ लौट आओ ना घर को

मेहंदी के मेले रीते हैं
संध्या रीती-रीती
जैसे कोई बूढ़ी ढोकरी
जूनी कथली सीती
ये काजल की डिब्बी कहती
गोरा रंग सलोना
चूड़ले वाले हाथ यह कहते
बहियाँ अब पकड़ोना
हम जादू टोने वाले
दिन की यादों में रहते हैं
हम क्या कहते अश्रु हमारे
व्यथा कथा कहते हैं
बिगड़ी बात बना दो दुल्हनियाँ
छम छम से घर भर दो।
खेत, मढ़ैया, दाना पानी
बिन पानी, कैसी जिंदगानी
पानी के हर रंग सलोने
बिन पानी के दुनिया फानी
हरा रंग हरियाली सा है
नीला रंग करे आसमानी
पीला रंग करें उजियारा
रंग बैंगनी लगे सुहानी
जब होने लगेगी भोर
तुम उषा चुनरिया ओढ़ सजनिया
लौट आओ ना घर से।

○○○

सम्पर्क: बी-422, आर.के.पुरम, कोटा-10, मो. 9413007724

गौरैया

अनिल प्रभा कुमार

अपनी मिट्टी की पहचानी गंध
चटक रंगों का खिलन्दड़ापन
अपनों की एक नरम गरमायश
मौसम की बदलती करवटें
वह पहचानी जगहें
वह लौट-लौट आती यादें
सब पीछे छूट गई हैं।
मेरे इस घर के पिछवाड़े
या सामने दरवाजे के आगे
उगे घास के गलीचे पर
मिट्टी कुरेद कुछ ढूंढते
चिड़ियों के झुंड
मुंडेरों पर बैठते हैं।
फुदकती हुई गौरैया
अपनेपन से भर देती है
जैसे गौने में साथ आई हो
मेरे मायके से।
मैं होंठ टेढ़े कर
भौहें ऊंची कर
एक फिल्मी संवाद बोलती हूँ
मेरे पास गौरैया है।
हाँ मेरे पास गौरैया है।

○○○

सम्पर्क: 119, Osage Road, Wayne, NJ 07470, E-mail: aksk414@hotmail.com

जसवीर त्यागी की तीन कविताएँ

1. चेहरा

लोगों के पास कई- कई चेहरे थे
चेहरों को और अधिक
आकर्षक और मोहक बनाने के लिए
वे करते रहते थे अनंत जतन
चेहरे ऐसे जिन्हें निहारकर
दूसरे चेहरे वाले हो जाएं फिदा
जिनके पास अनेक चेहरे थे
उनके पास आईने भी असंख्य थे
वे अपने चेहरों को
सजाते-सँवारते रहते थे बार- बार
मेरे पास एक अदद चेहरा था
कोई आईना नहीं था
बगैर आईने के मेरा चेहरा
रहता था एक ही जैसा
कुछ जानकार बताते भी थे
चेहरे को लुभावना बनाने के
अपने- अपने अनुभव और राज
मैं था कि सभी जादुई आकर्षणों से बेखबर
अपने काम में डूबा हुआ
मैं चाहता था
चेहरा कैसा भी क्यों न हो
मेरा चेहरा न लगे
किसी देवता का चेहरा,
चेहरे पर न हो
किसी शैतान की हँसी,
मेरे चेहरे पर हो
एक मजदूर की मुस्कुराहट,
पेशानी पर हो परिश्रम का पसीना,
मेरी यही चाह थी
कि चेहरा तो हो
पर चेहरे पर कोई मुखौटा न हो।

सम्पर्क: एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग, राजधानी कॉलेज,
राजा गार्डन, दिल्ली-110015, मो.9818389571

2. महानगर की सड़क

महानगर की सड़क के एक छोर पर
काफी देर से खड़ा है एक बूढ़ा आदमी
पाँच साल के पोते की थामे बांह
उसके कंधे पर झूल रहा है
बालक का बस्ता
महानगर की सड़क पार कर

वृद्ध को समय पर पहुँचना है घर
आता ही होगा नौकरी पेशा
बेटे-बहू का फोन
बूढ़ा आदमी चश्मे से झाँकती
आँखों के तराजू में तोलता है
दौड़ते ट्रैफिक का भार
बार-बार पलट जाता है
बूढ़े की पलकों का पलड़ा
फिसल-फिसल जाता है
धैर्य के धनुष का तीर
कम नहीं हो रही है
गाड़ियों की कतार
बढ़ रही है हृदय की रफ्तार
महानगर की सड़क है
बालक और बुजुर्ग को
सुरक्षित पहुँचना है घर
सोचता हूँ मैं
सोचिए जरा आप भी
सोचते हैं सब मिलकर साथ-साथ
सभी की साझा सोच के सेतु से
पार कर लेंगे हम
महानगर की सड़क
बचा ही लेंगे हम
अपने समय के बच्चों और बुजुर्गो को।

3.सड़क पार करते हुए

सड़क पार करना युद्ध जीतने जैसा
हो गया है इन दिनों
सड़क पार कर अपनी मंजिल पर पहुँचना
मुझे बड़े कामों में एक लगता है
कोई मनचाहा कुछ माँगने को कहे तो
मैं सड़क पार कर
अपनी मंजिल पर पहुँचना पसन्द करूँगा
पार करने से पूर्व
सोचना पड़ता है दस बार
रह-रहकर यही सवाल कौंधता है मन में
कहीं टकरा न जाऊँ किसी बस या ट्रक से
कई बार टकराते-टकराते बचा हूँ
और कई बार बचते-बचते टकरा गया हूँ
किसी दूसरे आदमी से
बच्चे-बूढ़े
और सिर पर सामान लादे स्त्री-पुरुष
कैसे कर पाते होंगे सड़क पार?
एक ही जगह पर खड़े-खड़े
सोचता रहता हूँ घण्टों
देखते ही देखते अँधेरा बढ़ता जाता है
मुसाफिर घटते जाते हैं
मैं एक सुनसान में
रह जाता हूँ अकेला
मेरी ही तरह
न जाने कितने सुनसान रास्तों पर
रह जाते होंगे कितने मुसाफिर अकेले?
क्या यह सम्भव नहीं?
जैसे आसमान में कतारबद्ध उड़ते पंछी
करते हैं अपना रास्ता तय
उसी तरह हम भी बच्चे-बूढ़े, नौजवान
एक-दूसरे का हाथ थामे
करें सड़क पार
और हँसते-हँसते पहुँचे सुरक्षित
अपनी-अपनी मंजिलों पर।

○○○

प्रेम बिहारी मिश्र के गीत व ग़ज़ल

गीत

जितने ज़ख्म मिले जीवन में, गले लगाये तन-मन से
बड़े जतन से उन्हें सहेजा, आखिर भेंट तुम्हारी थी
पास मेरे तो सिर्फ प्यार था, और नहीं कुछ दे पाया
दोनों थे मजबूर स्वयं से, दोनों की लाचारी थी

कितनी सुलगी राह हमारी
कितनी झुलसी चाह बिचारी
प्यार न मेरा तुम पढ़ पाए
मुझे मिली ना थाह तुम्हारी

मैंने तिनका-तिनका जोड़ा, दुनिया अलग तुम्हारी थी
दोनों थे मजबूर स्वयं से, दोनों की लाचारी थी

मैंने कितने सपने सँजोए
जागे - जागे, सोए - सोए
दो नीली नीली झीलों में
कूल - किनारे सारे खोए

तुमने सारे सपने तोड़े, मैंने दुनिया वारी थी
दोनों थे मजबूर स्वयं से, दोनों की लाचारी थी

तुमने जाने क्या-क्या सोचा
किया प्यार का लेखा-जोखा
खड़ा रहा मैं एक किनारे
लेकर सजी - सजाई नौका

सौंपी थी पतवार तुम्हीं को, पर तुमको दुश्वारी थी
दोनों थे मजबूर स्वयं से, दोनों की लाचारी थी

मैं था प्रेम पवन का झौंका
तुमने आगे बढ़कर रोका
अपने-अपने किरदारों में
देते रहे स्वयं को धोका

मेरा सुख - संसार तुम्हीं थे, पर तुमको बेजारी थी
दोनों थे मजबूर स्वयं से, दोनों की लाचारी थी

ग़ज़ल

होने को कितने हमदम
कर न रहा कोई आँसू कम

शाख से पत्ते छूट गये
कैसी हवा है ये बेरहम

फूल न जो तुम दे पाए
शूल न देते कम से कम

हम जख़्मों पर रख न सके
छीन के ले गये वो मरहम

उसने हमको चाहा ज्यों
एक तराशा पत्थरहम

गिर न सके हम तो नीचे
कैसे ऊँचा हो परचम

'प्रेम' की जब भी बात चले
वो हो जाते हैं बेदम

ooo

सम्पर्क: pbmishra.bsf@gmail.com

अभी तो मैं जवान हूँ

अर्चना चतुर्वेदी

चाचा खुशी खुशी लगभग उछलते हुए घर पहुंचे ...बीवी को हुक्म दिया जल्दी से खाना लगा दे ..ताकि जल्दी सोने जा सके. आखिरकार तेल जो लगाना था ..पत्नी जी से खरी खोटी भी सुनी पर जबाब देने में कौन समय बर्बाद करे ..बाल उगायें या इसके मुँह लगें, सोचकर चच्चा चुप ही रहे।

जवान दिखने के मामले में हमारे बिसनचच्चा ने लुगाइयों को भी पछाड़ रखा है ..उन्हें तो बस जवान दिखने का शौक ऐसा चर्राया है कि वो कुछ भी करने को तैयार हैं .. उम्र भले ही छप्पन की हो पर दिल फुल टू जवान है। देखने में कद काठी मजबूत है ..हाँ गाल थोड़े पिचक से गए हैं ..और आँखे भी थोड़ी गड्डे में धंस गयी हैं ..मुस्कान बड़ी मारक है सो बंदी पटाने में देर नहीं लगती ..पिछले दो चार साल से खोपड़ी के बाल उनका साथ छोड़ते जा रहे हैं जो काफी हिस्सा चिकना हो गया है..उसकी वजह से बाकी बचे बालों को रंगने में भी मुश्किल होती है। अब बिसन चच्चा बाकी सब तो एडजस्ट कर लेते हैं ..आँखों पर ऐनक चढ़ा लेते हैं ..चेहरे का रेगुलर फेशियल भी हो जाता है पर इन ससुरे बालों का क्या जिनकी वजह से वे भरी जवानी में बूढ़े नजर आने लगे हैं ..और ये उन्हें कतई गवारा नहीं कि कोई जवान सुन्दरी उन्हें अंकल कहकर निकल ले ..

किसी ने कहा आंवला पाउडर लगाओ.. तो पूरे सर पर आंवला पोत कर बैठ गए .किसी ने कहा दोनों हाथों के नाखून आपस में रगड़ो ..फिर तो चच्चा हर वक्त नाखून ही रगड़ते ..रगड़ रगड़ कर नाखून घिस गए पर चाँद गंजी की गंजी ही रही..पर चच्चा निराश नहीं हुए ...कई देशी इलाज अपना डाले ..खूब बेस्वाद पुड़िया भी खा डाली..हकीम जी के दिए बदबू दार तेल भी लगाये पर नतीजा जीरो. कहते हैं ना जो एक बार साथ छोड़ जाए ..वो आसानी से कहाँ वापिस आते हैं ..पर चच्चा हार मानने वालों में से नहीं ...

अभी तरह तरह के उपाय इलाज ..चल ही रहे थे कि किसी ने चच्चा को बता डाला '' चच्चा बाजार में ऐसी तकनीक आई है जिससे नए बाल उगाये जाते हैं''

''अच्छा क्या सच में बाल ऊग सकते हैं, फिर से ?'' चच्चा ने खुश होते हुए पूछा

''हाँ चच्चा अरे आपने क्रिकेट खिलाडी सहवाग को नहीं देखा... अब ..कैसा जवान सा दीखे बाल उगवा के'' भतीजे ने अपनी बात अब उदाहरण सहित समझाई

सम्पर्क: ई-1104, आम्रपाली ज़ोडिएक, सेक्टर-120, नोएडा, गौतमबुद्धनगर, उ.प्र.-201307

चच्चा तो खुशी से ऊछल पड़े और बोले ''..तू तो बस ऐसा कर ..पता करके आ जा कितने में हो जायेगा ये काम ..और कितने दिन लगेंगे बाल आने में ? मैं तो अब उगवा ही डालूँगा''

चाचा रोज सुबह शाम भतीजे को फोन करके जानकारी लेते ..अब भतीजे जी आनाकानी कर रहे थे उन्हें पता ही नहीं था कि सच में ये तकनीक कहाँ है और कौन करता है इलाज ..पर चच्चा तो बेचैन हो उठे थे ..वोवक्त जाया नहीं करना चाहते थे ..सो और लोगों से भी पूछने लगे ..आखिरकार एक दिन अखबार में बड़ा सा विज्ञापन देख चच्चा उछल पड़े ..और सीधे पहुँच गए बताये हुए पते पर .और अपनी समस्या सुना डाली ..उन्हें जल्द से जल्द समाधान चाहिए था।

वहां जाकर जब उन्होंने फीस सुनी और पूरी प्रक्रिया सुनी ..तो थोड़े से सकपकाए क्योंकि इतने रूपये अभी उनके पास नहीं थे और यदि हों भी तो अपने बालों पर इतना खर्च कर दिया तो पत्नी जी जीना मुहाल कर देंगी. जो कई सालों से सोने की चूड़ियों की मांग कर रही हैं और चच्चा बहाने बना रहे हैं ..वैसे भी इतने खर्चे और इतने दर्द के बाद बाल जमेंगे ही इसकी कोई गारंटी नहीं थी.

चच्चा बेचारे निराश से हो लौट तो आये ..पर 'मिशन बाल उगाओ' जारी था ..किसी भी जगह शादी ब्याह में या पार्टी में जाते तो खूब सजते ..अच्छे भी लगते ..दस लोगों से पूछते कैसा लग रहा हूँ?..लेकिन जैसे ही अपने फोटो देखते फिर उदास हो जाते ..'' यार बाल उग जाते तो मै भी जमता ..कैसाबूढ़ा सा दिख रहा हूँ ''।

सब समझाते ''अरे चाचा बहुत जमते हो तुम, तुम्हे जरुरत ना है इन बालों की''

पर चाचा के दिल में तो काँटा सा लगा था ..

कुछ दिन बाद किसी भतीजे ने उन्हें विग लाकर दे दी ..विग देखकर चाचा खुश हुए ..फिर एक दो दिन खोपड़ी पर विग पहनी..शक्ल तो अच्छी दिख रही थी ..बिना मेहनत बालों की खेती भी हो गयी पर इस विग में इतनी गर्मी लगती कि चाचा का जी घबरा उठता और खोपड़ी पसीने से भीग उठती। सो ये इलाज भी फेल ही साबित हुआ।

चाचा फिर से तरह तरह के तेल साबुन लगा बाल उगाने का प्रयास करने लगे.. किसी ने कहा कड़ी पत्ता पीस कर लगाओ ..तो किसी ने कहा गुड़हल का फूल तेल में डालकर लगाओ ..चाचा सारा दिन इन्ही नुस्खो में लगे रहते,, पत्नी और बच्चे मजाक बनाते पर चाचा पर कोई असर नहीं होता। वो तो अर्जुन बन चुके थे जिनका निशाना सिर्फ मछली की आँख पर था।

फिर एक दिन किसी हकीम साहब ने बाल उगाने की गारंटी ली और उन्हें एक तेल दे दिया जिसे उन्हें रात को लगाकर सोना था ..सुबह बाल दिखेंगे खोपड़ी पर ..

चाचा खुशी खुशी लगभग उछलते हुए घर पहुंचे ...बीवी को हुक्म दिया जल्दी से खाना लगा दे ..ताकि जल्दी सोने जा सके. आखिरकार तेल जो लगाना था ..पत्नी जी से खरी खोटी भी सुनी पर जबाब देने में कौन समय बर्बाद करे ..बाल उगायें या इसके मुँह लगें सोचकर चच्चा चुप ही रहे।

रात हुई तो चच्चा ने अपनी खुपड़िया की जम कर मालिश की और सो गए ...आधी रात को चच्चा को फुफकारने की आवाज आई और खोपड़ी पर कुछ गिलगिला सा महसूस हुआ जो हिल डुल भी रहा था. पहले तो चच्चा नींद में थे, समझ नहीं आया.. फिर ध्यान लगाया तो महसूस हुआ कि खोपड़ी पर सांप महाराज लिपटे फुफकार रहे हैं ...चच्चा की घिघ्घी बंध गयी ...मुहँ से गें गें करके आवाजें निकलने लगी ...बिस्तर गीला हो चुका था ..चच्चा डरे हुए थे. हिलते तो सर्प देवता नाराज हो सकते थे . उनकी आवाज सुनकर दूसरे कमरे में सोई पत्नी जी बाहर आई और लाईट जलाई .. उन्हें देख चच्चा की जान में जान आई .. उन्हें लगा अब तो पत्नी जी उन्हें बचा ही लेंगी ..पर ये क्या पत्नी जी तो अपना मोबाइल ले आयीं ..और फिर दूर खड़े होकर विडिओ बनाने लगीं ..बाकायदा रिपोर्टिंग टाइप भी कर रही थी -- लीजिये साक्षात विष्णु भगवान धरती पर उतर आये हैं.. आप लोग भी उनके दर्शनों का लाभ लीजिये ..उनके शेषनाग उनके सिर पर लिपटे हैं ..प्रभु आराम कर रहे हैं ..'' आदि आदि।

चच्चा को गुस्सा तो बहुत जोर से आ रहा था। पर ना तो हिलने के हालात थे, ना बोलने के। कमबख्त कौन से जनम की दुश्मन है.. पति की जान पे बनी है और ये महारानी मजे ले रही है'' चच्चा मन ही मन भिन्नारहे थे...और सारे देवी देवताओं को याद कर रहे थे. पता नहीं उस वक्त कौन आस आस हो और उन्हें बचाने चला आये ....फिर कुछ देर बाद हिम्मत करके.. पत्नी जी ने डंडा फटकारना शुरू किया ..बालकनी का दरवाजा खोल कर तरह तरह के उपाय करने लगी ताकि सर्प महाराज चच्चा की खोपड़ी से हटें। ये ड्रामा कुछ घंटे यूँ ही चला।

आखिरकार सर्प देवता हिले और उनकी खोपड़ी से उतर बालकनी की तरफ बढ़ गए ..पत्नी जी भाग कर कमरे में घुस गयीं और दरवाजा बंद कर लिया ..जब चच्चा आश्वस्त हुए कि सांप चला गया है तो उठे और अपने कपड़े बदले ..अब वे पत्नी को जोर जोर गालियाँ दे रहे थे और साथ ही हकीम साहब को भी ..तब तक पत्नी जी भी कमरे से निकल आयीं और तेल की शीशी उठाकर पढ़ने लगी ..

अब के वे चिल्ल्लाई ..''पागल हो गए हो तुम ..पता नहीं क्या आग लगी है बाल उगाने की ..कम से कम पढ़ तो लेते ..नहीं पढ़ा तो सूंघ ही लेते ..पर नहीं तुम्हे तो सिर्फ बाल चाहिए खोपड़ी पर, चन्दन का तेल है..इसकी खुशबू से सांप आकर्षित होता है ..यदि तुम्हे काट जाता तो ..मेरा और बच्चो का क्या होता?'' कहकर पत्नी जी छाती कूट कूट कर रोने लगी ..खुद पर उल्टा अटैक होते देख चच्चा शांत हो गए और पत्नी जी को भी मनाने लागे ..पत्नी जी मानी तो सही पर चच्चा से कसम ले ली गयी कि अब वे बाल उगाने का कोई उपाय नहीं करेंगे ..उन्हें वो ऐसे ही अच्छे लगते हैं। चच्चा ने भारी मन से कसम तो खा ली ..पर खोपड़ी पर बाल उगाने का सपना आज भी आँखों में लिए कसमसाते हैं।.. ○○○

डॉ. नीलम वर्मा की कविता

काव्य शाक्ति हूँ मैं
वाक्य शाक्ति हूँ मैं
सत्य की ध्वनि हूँ, स्वर की आकृति हूँ
गीतों का माधुर्य हूँ वाणी का चातुर्य हूँ
विराट रूप की, सूक्ष्म उक्ति हूँ मैं
सिद्धि युक्ति हूँ मैं
ज्ञान शाक्ति हूँ मैं
काव्य शाक्ति हूँ मैं
मेरे प्रवाह में उमड़ रहा है
गौरवमय गर्जन
असीम और प्रकृति के बल का हूँ
मैं अर्जन
पा कर प्रभु का प्रेम परम्
मैंने प्रज्वलित किया चिंतन
संरक्षित है मुझसे जीवन
मैं हूँ रोग मुक्ति का साधन
मैं ही अधिष्ठाती हूँ
ईश्वर के साम्राज्य की
अधिकारों की निर्धारक हूँ
साधक हूँ सौभाग्य की
हर ज्ञानी ने आराधन
मेरा प्रथम किया
दिव्य शक्ति ने संस्थापन
मेरा स्वयं किया
हो जाती है मेरी,
जब जिस पर अनुरक्ति
दिव्य ज्ञान की उसको
मिल जाती है युक्ति
मानव, तेरा अस्तित्व,
तेरा व्यक्तित्व
है मुझको ही समर्पित,
है मुझसे ही सम्मोहित
मैं ही तेरी मृदु वक्ता हूँ
कर्णप्रिय श्रुति हूँ
तू मुझमें स्थिर है
मैं तेरी सुसंस्कृति हूँ

सम्पर्क: के-22, कैलाश कॉलोनी, नई दिल्ली-110048

वसंत के बहाने

नीरज नीर

वसंत चंदाखोरों के लिए भी स्वर्णिम अवसर प्रदान करता है। जिन लोगों को पढ़ाई लिखाई से दुश्मनी रहती है एवं जिनपर सरस्वती माता की कृपा नहीं होती है वे लोग जोर शोर से सरस्वती पूजा करते हैं। इस दौरान पंडालों में इतने जोर से लाउडस्पीकर पर शोर मचाया जाता है कि सरस्वती माता अगर आस पास फटक भी जाये तो भाग खड़ी हों। जिन बच्चों की इस दौरान परीक्षाएं होती हैं, वे भी इन दिनों पढ़ाई-लिखाई नहीं कर पाते हैं।

रामभरोसे कह रहे थे कि भारत की इस पावन धरा पर वसंत अब मौसम की तरह नहीं बल्कि एक अवसर की तरह आता है। वसंत के आगमन का स्वागत करते हुये कवि जब कहता है कि ''आया वसंत आया वसंत/छाई जग में शोभा अनंत'' तो अब उसका आशय सिर्फ प्रकृति में छाने वाली शोभा से नहीं रह गया है बल्कि इस मौसम में अनेक तरह से लाभान्वित होने वाले विशिष्ट प्रकार के प्राणियों के हृदय वाटिका में व्याप्त होने वाली अनंत शोभा से है।

वसंत के आते ही ठेकेदारों की बांछे ऐसे खिल जाती है जैसे जंगल में पलाश के फूल। ठेकेदार जानता है कि कम समय में कार्य की अधिकता होने की वजह से अगर बालू से भी भीत खड़ी कर दी जाये तो कोई जाँचने परखने वाला नहीं है। इंजीनियर साहब के पेट में तो अनायास ही गुदगुदी होने लगती है। मिलने वाले कमीशन के जोड़ घटाव में प्राप्त होने वाले आनंद से जीवन रंग बिरंगा प्रतीत होता है। उनके मन मज्जरी पर सुनहरी अभिलाषा के ऐसे पुष्प पल्लवित होने लगते हैं, जिसका वर्णन करने में बड़ा से बड़ा कवि भी सक्षम नहीं। बिल पास करने वाले बाबू तो नींद में भी बिल पास करने लगते हैं। राम भरोसे बता रहे थे कि अभी हाल ही में एक बाबू जब नींद में जल्दी-जल्दी कागज पलटने जैसी भाव भंगिमा करने लगे तो घर वाले चिंतित हो कर उन्हें डॉक्टर के यहाँ ले गए। डॉक्टर साहब भी पुराने घाघ ठहरे, उनके काम का प्रोफाइल जैसे ही पता चला, दर्जनों तरह के टेस्ट करवा लेने के बाद उन्होंने कहा कि इन्हें वसंत टाईटिस हो गया है। घर वाले आज तक नहीं समझ पाये हैं कि यह कौन सी बीमारी है।

जितने सरकारी ठेके पूरे साल में नहीं निकलते हैं, उससे अधिक ठेके इस गुनगुनाते वसंती मौसम में निकाले जाते हैं। सर्दियों के आलस्य प्रदायनी प्रभाव से उकतायी हुई मशीनरी पूरी ऊर्जा के साथ अपने बचे हुये धन को जन कल्याण हेतु लूटा देना चाहती है। आखिर धन होता तो इसीलिए ही है कि उसे जनता पर लुटा दिया जाये और जनता पर धन लुटाने के लिए वसंत से बेहतर कोई मौसम भला कौन सा है, आखिर मार्च इसी वसंत में जो आता है।

संस्कृति के स्वघोषित रक्षकों के लिए यह समय असीम शौर्य

सम्पर्क: आशीर्वाद, बुद्ध विहार, पीओ-अशोक नगर, रांची, झारखंड-834002, मो: 8797777598, ई-मेल: neerajcex@gmail.com

प्रदर्शन करने का होता है। पार्कों में दुबके प्रेमी जोड़ों को ढूँढने एवं उनकी पिटाई करने का महत्वपूर्ण दिवस वैलेंटाइन डे भी इसी मौसम में आता है। सबसे अच्छी बात यह होती है कि ऐसा करने से अखबार और टीवी में तस्वीरें भी आ जाती है और पुलिस कोई कारवाई भी नहीं करती। समाज में धर्म संस्कृति का रक्षक बन कर नाक ऊँची करने का जो अवसर मिलता है, सो अलग। यह अवसर दरअसल राजनीति में प्रवेश हेतु प्रवेश परीक्षा की तरह भी होता है, जितने अच्छे नंबरों से पास हुये राजनीति में प्रवेश एवं सफल होने की संभावना उतनी ब्राइट हो जाती है। इसलिए इस देश के कई होनहार युवा वसंत का पूरे साल बेसब्री से इंतजार करते हैं।

वसंत चंदाखोरों के लिए भी स्वर्णिम अवसर प्रदान करता है। जिन लोगों को पढ़ाई लिखाई से दुश्मनी रहती है एवं जिनपर सरस्वती माता की कृपा नहीं होती है वे लोग जोर शोर से सरस्वती पूजा करते हैं। इस दौरान पंडालों में इतने जोर से लाउडस्पीकर पर शोर मचाया जाता है कि सरस्वती माता अगर आस पास फटक भी जाये तो भाग खड़ी हो। जिन बच्चों की इस दौरान परीक्षाएं होती हैं, वे भी इन दिनों पढ़ाई-लिखाई नहीं कर पाते हैं। इस तरह से सरस्वती पूजा करने वाले सरस्वती माता से अपना भरपूर बदला चुका लेते हैं। राम भरोसे बता रहे थे कि मुहल्ले का सुखाड़ी सिंह जो दसवीं में चार बार फेल हो गया था, वह शहर में सबसे बड़ी सरस्वती पूजा करता है। जितने भी पढ़ने-लिखने वाले आवारा लड़के हैं, सभी उसके शागिर्द हैं। इसके लिए पूरे शहर से जोर जबरदस्ती से चन्दा किया जाता है। मजाल है कि कोई उसे चन्दा किया जाता है। मजाल है कि कोई उसे चन्दा देने से मना कर दे। इसी चंदे की कमाई से उसकी और उसके गुर्गों के कई महीनों के मुर्गे का खर्च निकल आता है। इस बार तो वह विधायक का चुनाव लड़ने की भी सोच रहा है।

अब इस देश में वसंत वैसा नहीं रहा, जब मलयगिरि से आने वाली प्रातः की मीठी हवाएँ शरीर को छूकर नवउमंग एवं स्फूर्ति का संचार किया करती थी। आज तो वसंत अगर शहरों में आ जाये तो लोग उसे पहचानने से भी इंकार कर दें। इसलिए आजकल वसंत मुँह छुपाए हुये सुदूर देहातों एवं जंगलों में ही दुबका हुआ रहता है।

○○○

रचनाकारों से विशेष अनुरोध

- कृपया अपनी मौलिक और अप्रकाशित रचना ही भेजें।
- कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें। ई-मेल द्वारा प्रेषित रचना यूनिकोड में टंकित करें या रचना के साथ टंकित फॉन्ट अवश्य भेजें।
- कृपया लेख, कहानी आदि एक से अधिक और कविता और लघुकथा दो से अधिक न भेजें।
- रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हो। शब्द-सीमा 3000 शब्दों तक है।
- रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन-परिचय भी प्रेषित करें।
- रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र (हाई रेज्योलेशन फोटो) आदि भी भेज सकते है।
- यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं वर्तनी को कृपया भली-भाँति जांच लें।
- यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।
- रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी अतः प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।
- स्वीकृत रचनाएं यथासमय प्रकाशित की जाएंगी।
- रचना के अंत में अपना पूरा पता, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।
- आप अपने सुझाव व प्रतिक्रिया कृपया pohindi.iccr@nic.in पर प्रेषित कर सकते हैं।

पुरुषों की प्रतिनिधि पत्रिका

सूर्यकांत नागर

कुछ पतियों को पत्नी के ताने-उलाहने और जली-कटी सुनते हुए खाना खाने की आदत पड़ जाती है। इसके बगैर न वे खा सकते हैं, न पचा सकते हैं। ऐसे खुशकिस्मत पुरुषों की बीवियाँ जब मायके चली जाती हैं, तो उनकी अनुपस्थिति में पतिदेवों का पेट ठीक से भर सके, इसके लिए मैंने अपने एक महत्वपूर्ण संपादकीय में सुझाव दिया कि ऐसे मर्द अपनी पत्नी के मर्मभेद आख्यानों को टेप करके रख लें और पत्नी के न होने पर खाना खाते समय हरि कीर्तन की तरह उन्हें सुनें।

पता नहीं था कि उनकी जिद यह रंग लाएगी। धन्ना सेठ की तरह उन्होंने थैली खोल दी और कहा, ''कोई नया अखबार या पत्रिका निकालो और उसके संपादन का काम संभालो।'' मैंने कहा, ''यह आसान नहीं है। बहुत कंपीटिशन है। मार्केट टाइट है। नया दैनिक निकालने का मतलब है बहुमंजिला भवन के दसवें माले से कूद पड़ना। साप्ताहिक पत्रिका शुरू करने का अर्थ है, बीसवें माले से कूदकर आत्महत्या कर लेना। जो चालू है, वे बंद हो रही है।'' पर वे नहीं माने। कोई न मानने पर ही आ जाए, तो आप क्या कर सकते हैं।

बहुत सोच-विचार के पश्चात मैंने एक अखिल भारतीय पुरुष-पत्रिका प्रारंभ की। पुरुष-जगत की एकमात्र पत्रिका। पीड़ित पुरुषों का मुख-पत्र। जब महिलाओं की पत्रिकाएँ हो सकती हैं और चल सकती हैं तो पुरुषों की एकछत्र पत्रिका होने में क्या आपत्ति हो सकती है!

घोषणा की गई कि पत्रिका में केवल पुरुषों के लेख ही प्रकाशित होंगे। महिला पत्रिकाओं की तरह यह घाल-मेल नहीं चलेगा कि पुरुषों के साथ स्त्रियों के लेख भी छपें। इसका अच्छा असर हुआ। महिलाएँ यह जानने के लिए उत्सुक हो गईं कि पुरुष उनके बारे में क्या लिखते-सोचते हैं। फिर मैंने 'घर से बाहर रहने के विश्वसनीय बहाने', 'विवाह पूर्व की गलतियाँ कैसे छिपाएँ', 'पति बेचारा शक का मारा', 'दूसरी शादी कब करें', 'पुरुषों के लिए शिशु-पालन की अनिवार्य कक्षाएँ' जैसे लेख छापे तो पुरुष पाठकों की बजाय स्त्री पाठकों की संख्या बढ़ाने लगी।

फिर तो कमजोर नब्ज हाथ आ गई। 'कामकाजी महिला दफ्तर से लौटे तो कितने इंची मुस्कान से उसका स्वागत करें, 'व्यंजन जो पुरुष सरलता से बना सकते हैं', 'शाही दही आलू और टंगरी कबाब अपने हाथों बनाकर पत्नी को खिलाएँ।, 'पुरुष के लिए बिंदी, सिंदूर या चूडियाँ अनिवार्य क्यों नहीं?' वुमन लिब (नारी स्वातंत्रय) की तरह 'मेन लिब' का नारा भी खूब उछाला। इन लेखों से धूम मच गई। महिला पाठकों के पत्रों के ढेर लग गए।'

'गरमी में पुरुषों के परिधान' के साथ-साथ मैंने यह सुझाव दिया कि पत्नी के ब्लाउज के बचे कपड़े से अपने लिए रूमाल कैसे

सम्पर्क: 81, बैराठी कॉलोनी नं. 2, इंदौर-452014

बनाएँ या अपने स्वेटर की बची ऊन से मुन्ने का टोपा कैसे बुनें? एक महिला का पत्र आया कि जब उसके पति ने अपने कुरते से बचे कपड़े का रूमाल स्वयं अपने हाथों सीकर उसे भेंट किया तो वर्षों का मौन टूट गया और परिवार में एक बार फिर सुख-सरिता बह निकली। रूमाल आँसुओं से तर हो गया।

'पुरुषों के लिए कढ़ाई-बुनाई के आद्वितीय नमूने' खूब छापे और उन्हें आढ़े-तिरछे 'फंदों' का भेद भी समझाया। 'फंदे' डालना उनके लिए आसान काम हो गया।

मैंने 'जिज्ञासा' कॉलम भी शुरू किया। समस्याओं के सामाधान छापे। जैसे—प्रश्न—'मैं बीस वर्ष का सुंदर आकर्षक युवक हूँ। मेरी बाईं ओर की मूंछ तो निकल आई है, पर दाहिनी ओर की निकल ही नहीं रही। बताइए, क्या करूँ?' उत्तर—'बाईं ओर की भी साफ कर दें। सफाचट रहें।' या 'पत्नी अक्सर बिना कहे कहीं चली जाती है। चिंता होती है।' उत्तर—'तलाश न करें। यह मालूम हो जाने पर कि कहाँ जाती है, चिंता दुगुनी हो जाएगी।' या 'मुझे पसीना बहुत आता है और पत्नी को उसकी बू से उबकाई। कोई निदान?' इसका उत्तर—'उससे पूछें जिसने कहा था—कभी पसीना भी गुलाब था।' स्त्री-पुरुष दोनों में यह कॉलम बहुत लोकप्रिय हुआ।

महिला पत्रिकाओं की प्रतिस्पर्धा में मैने 'आधी दुनिया' की टक्कर में 'पूरी दुनिया' स्तंभ शुरू किया। 'रूढ़ियाँ कैसे तोड़ें और पूडियाँ कैसे बेलें', लेख बहुत पसंद किए गए। 'बेलन के प्रहारों से बचने के उपाय' के सम्बन्ध में कोण, दूरी गति, आक्रमणकारी का स्वभाव और उद्देश्य आदि को लेकर पुरुष पाठकों के उत्सुकता भरे अनेक पूरक प्रश्न आए। कुछ ने सुझाव दिया कि जूडो-कराटे की भांति 'बेलन से बचाव' की प्रशिक्षण कक्षाएँ भी शुरू की जाएँ। इस माँग का इतना दबाव था कि 'यह क्षेत्र हमारा नहीं'—जैसा शुष्क, कठोर और एकतरफा जवाब छापकर हमें पिंड छुडाना पड़ा।'

'पुरुष तेरा क्या होगा?' लेख के तहत गर्भ-परीक्षण और बालिकाओं की भ्रूण-हत्या से भविष्य में महिलाओं की एक्यूट शॉर्टेज की ओर जब ध्यान आकर्षित किया तो पुरुष चिंता-मग्न हो गए। 'लड़कों के युवावस्था की दहलीज पर कदम रखने पर अभिभावकों की चिंता'—जैसे नई दृष्टि वाले आलेखों ने घोड़े बेचकर सोए अभिभावकों की नींद उड़ा दी, क्योंकि वे अभी तक 'लड़की के विवाह योग्य हो जाने पर अभिभावकों की चिंता'—जैसे लेख पढ़ते आए थे। कुछ पुरुषों ने हमारा एहसान उस हिदायत के लिए माना जिसके तहत हमने उन्हें महिलाओं के केश-वर्धक तेलों से भूलकर भी शरीर की मालिश न करने की सलाह दी थी। पुरुषों के केश-विन्यास पर तो एक पूरा विशेषांक ही निकाल मारा था। उसमें शादी के बाद बालों के तेजी से उड़ने के कारण गिनाए गए थे। बालों को रंगने में पत्नी का सहयोग कैसे लें और मानव-सौंदर्य में 'विग' का महत्व—जैसे लेख प्रकाशित किए।

विवाह-विशेषांक भी निकाला, जिसमें 'जीवन साथी का चुनाव कैसे करें' जैसे परम्परागत लेखों के अतिरिक्त 'दूल्हे के कपड़े कैसे हों?' और 'घोड़ी का रंग क्या हो' लेख भी सम्मिलित थे। घोड़ी बिदक जाए और दुलत्ती मारे तो उसका निदान भी दिया गया था। 'दूल्हे की जंग लगी तलवार के मनौवैज्ञानिक प्रभाव' खूब पसंद किया गया। बाजार में चमचमाती तलवारों की माँग बढ़ गई। इसका पता हमें हमारी पत्रिका में छपे विज्ञापनों से चला।

कुछ पतियों को पत्नी के ताने-उलाहने और जली-कटी सुनते हुए खाना खाने की आदत पड़ जाती है। इसके बगैर न वे खा सकते हैं, न पचा सकते हैं। ऐसे खुशकिस्मत पुरुषों की बीवियाँ जब मायके चली जाती हैं, तो उनकी अनुपस्थिति में पतिदेवों का पेट ठीक से भर सके, इसके लिए मैंने अपने एक महत्वपूर्ण संपादकीय में सुझाव दिया कि ऐसे मर्द अपनी पत्नी के मर्मभेद आख्यानों को टेप करके रख लें और पत्नी के न होने पर खाना खाते समय हरि कीर्तन की तरह उन्हें सुनें। इस सुझाव को बहुत सराहा गया। लेकिन इसका एक पक्ष यह भी रहा कि बाजार में पत्नी की नकली आवाजों वाले कैसेट्स की बाढ़ आ गई।

पत्रिका चल निकली है। फल-फूल रही है। दिन-दूनी, रात चौगनी प्रगति कर रही है। आप चाहें तो उसे प्रगति-पथ पर अग्रसर कह सकते हैं। इस सफलता का राज बताऊँ। कृपया अपने तक रखें। मैंने एक चालाकी की है। पुरुष—पत्रिका की आड़ में मैंने एक छद्म महिला पाठक भी निकाली है। महिलाओं के लेख भले ही न पाता होऊँ, उनके पत्र धड़ल्ले से छापता हूँ। पत्र-स्तम्भ को मैंने एक अखाड़ा बना दिया। आरोप-प्रत्यारोप का सिलसिला समाप्त ही नहीं होता। स्त्री के बारे में पुरुष की राय जानने की महिलाओं की कमजोरी का मैंने भरपूर लाभ उठाया है। कृपया इसे शोषण का नाम न दें। दें भी तो वे मेरी पत्रिका पढ़ना बंद नहीं करेंगी। आखिर वे भारतीय महिलाएँ हैं। भगवान उनका भला करे।

○○○

हृदय का पत्र मस्तिष्क के नाम

शोभना श्याम

आजकल सभ्यता के नाम पर स्वार्थ के इतने भारी-भारी परदे मेरे दफ्तर की खिड़कियों पर लटका दिए गए हैं कि अपने निकटतम पड़ोसी की खैरियत से भी हम बेखबर रहते हैं। जब से लोभ, द्वेष और ईर्ष्या की नियुक्ति मेरे मातहत कर्मचारियों के रूप में हुई हैं, मेरे विभाग का नक्शा ही बदल गया है। इन्होंने मेरे प्रांगण में लगे हर रिश्ते की जड़ में ऐसा मट्ठा डाला है कि सब मुरझाते जा रहे है।

सेवा में,

महामहिम मस्तिष्क जी

निदेशक, शरीर संस्था

पृथ्वीलोक

महोदय,

निवेदन है कि मैं हृदय आपकी शरीर संस्था के रक्त संचार विभाग का अध्यक्ष हूँ। मैं इस संस्था के जन्म के दिन से ही अपना कार्य मुस्तैदी से करता रहा हूँ। अपने अब तक के कार्यकाल में मैं अगणित प्रकार के आघात भी झेलता आया हूँ। आपकी मुँह लगी जिह्वा की उच्छृंखलताओं और मनमर्जी का खामियाजा, पाचन, अस्थि, मांसपेशी, रज्जु आदि अन्य विभागों के साथ अक्सर मुझे भी भुगतना पड़ता है।

यूं तो आधिकारिक रूप से मेरा कार्य अशुद्ध रक्त को श्वसन विभाग में भेजना और वहां से आये हुए शुद्ध रक्त की सप्लाई सारी संस्था में करना है लेकिन ये तो आप भी जानते हैं कि कितने ही कार्य मैंने अवैतनिक रूप से भी संभाले हुए हैं। जनसम्पर्क विभाग में क्या मेरी सहायता के बिना कोई कार्य संभव हैं?

प्रेम विभाग में तो मैं ही अधिकारी और मैं ही हरकारा हूँ। महामहिम मुस्कान का प्रोडक्शन भी प्रत्यक्षतः तो मुख विभाग से ओष्ठों के द्वारा होता है परन्तु इसके लिए कच्चे माल यानि भावों की आपूर्ति मेरे द्वारा ही होती है। सिर्फ उन्हीं मुस्कानों को निश्छल, मधुर, मनमोहक, प्यारी, आत्मीय, लजीली आदि के विशेषण और सम्मान मिलते हैं जो मेरे निर्देशन में निर्मित होती हैं अन्यथा तो कृत्रिम, कुटिल, खोखली, फीकी जैसी संज्ञाएँ ही मिलती हैं। महामहिम बुरा न मानियेगा जब-जब आप दुविधा में पढ़कर संज्ञा-शून्य हो जाते हैं तब-तब संस्था अहम निर्णयों के लिए मेरी और ही उन्मुख होती है।

ये सब कार्य मेरे आत्मीय पक्ष जिसे मन भी कहा जाता है, के द्वारा सम्पन्न होते हैं और यह पत्र मैं अपनी इसी पक्ष की ओर से लिख रहा हूँ। मुझे बड़े अफसोस के साथ यह बताना पड़ रहा

सम्पर्कः एच-256, 11 एवेन्यू, गौड़ सिटी-2, गौतमबुद्ध नगर, नोएडा वेस्ट (उ.प्र.)

है कि आजकल मेरे इस पक्ष की बहुत अवहेलना हो रही हैं। आक्षेप तो मुझ पर सदा से ही लगते आये हैं, मुझे जिद्दी, पागल, चंचल, दीवाना, दुस्साहसी की उपाधियाँ देते हुए कहा जाता है कि मैं कभी-कभी संस्था को गलत दिशा में ले जाता हूँ। मुझे इस आरोप से सर्वथा इंकार भी नहीं हैं, मैं मानता हूँ कि मैं अनजाने में कभी-कभी वह कर बैठता हूँ या करना चाहता हूँ जो सही या संभव नहीं होता। मैं ये भी मानता हूँ कि मैं अक्सर सीमाओं के उल्लंघन हेतु मचल उठता हूँ किन्तु सिर्फ इतने भर के लिए मेरी अच्छाइयों और योगदान को विस्मृत कर मेरी उपेक्षा की जाए, यह भी तो उचित नहीं है।

आखिर सीमाओं में बंधी-बंधाई, लाभ-हानि के गणित की सलीब पर टँगी, एक ढर्रे पर चलती ज़िंदग़ी भी कोई ज़िंदग़ी है। क्षमा करें महामहिम! यदि सभी सिर्फ आपके इशारों पर चलने लगें तो ये दुनिया इतनी नीरस हो जाएगी की शरीर संस्था लम्बे समय तक स्वस्थ रहना तो दूर, काम ही नहीं कर पायेगी। आप स्वयं साक्षी है कि कई बार मेरे प्रस्ताव न मानने के दुष्परिणाम भी अपनी संस्था और निकटवर्ती अन्य संस्थाओं को झेलने पड़े हैं।

आपको तो याद होगा कभी मेरे विशाल आंगन में भांति-भांति के भाव-पुष्प खिलते थे। तमाम रिश्ते-नाते एकत्र होकर खिलखिलाते, बतियाते थे। ये मैं ही था जिसके बूते पर लोग नन्हे से घर में भी मेहमानों का स्वागत बड़ी गर्मजोशी से करते हुए कहते थे ''जगह तो दिल में होनी चाहिए।'' गाँव मोहल्ले में मैं सबका सुख-दु:ख पूँजी की तरह अपने अंदर संजो लेता था। आज भी संस्था की गुडविल मेरे ही भरोसे पर बनती हैं।

लेकिन आजकल सभ्यता के नाम पर स्वार्थ के इतने भारी-भारी परदे मेरे दफ्तर की खिड़कियों पर लटका दिए गए है कि अपने निकटतम पड़ोसी की खैरियत से भी हम बेखबर रहते हैं। जब से लोभ, द्वेष और ईर्ष्या की नियुक्ति मेरे मातहत कर्मचारियों के रूप में हुई हैं, मेरे विभाग का नक्शा ही बदल गया है। इन्होंने मेरे प्रांगण में लगे हर रिश्ते की जड़ में ऐसा मट्ठा डाला है कि सब मुरझाते जा रहे है। अब तो यहाँ अपरिचय की सिवार ही उगती हैं।

मैं आपकी अवज्ञा करना अथवा आपके सम्मान को कोई चोट पहुंचाना नहीं चाहता। निश्चित रूप से इस संस्थान में आपका स्थान ही सर्वोच्च है। आप ही इसके जर्रे-जर्रे के नियामक है लेकिन आप आजकल ज्यादा ही भौतिकतावादी होते जा रहे हैं। मुझे यह देखकर बड़ा क्षोभ होता है कि एक ओर तो किसी गन्दगी को देखते ही आप हाथों को तुरंत नासिका के वातायन ढकने का निर्देश देते हैं दूसरी ओर इस लोभ की लच्छेदार बातों में आकर भ्रष्टाचार, बेईमानी, विश्वासघात आदि किसी भी गन्दी नाली में सर डालने से गुरेज नहीं करते। मेरी अवज्ञा का परिणाम सभी मानवीय मूल्यों की निरंतर अनदेखी के रूप में सामने आ रहा है।

निस्संदेह मेरे रक्त-संस्थान से जुड़े कार्यो की अनिवार्यता को देखते हुए मेरे भौतिक पक्ष की काफी देखभाल की जाने लगी हैं। आप इस विषय में सजग रहते हुए नवीनतम सूचनाएँ एकत्र करते हुए सभी विभागों को आवश्यक निर्देश देते रहते हैं। अस्थि और मंसपेशी संस्थानों को व्यायाम और टहलने के निर्देश दिए जाते हैं। मेरे कार्यो में बाधक कोलेस्ट्रॉल को दूर रखने के लिए आप मनचली जिह्वा पर भी नियंत्रण रखने का प्रयास करने लगे हैं। मेरे विभाग के लिए सभी आवश्यक अनुदान भी यथासमय मिलते रहते हैं। लेकिन सब कुछ भौतिक पक्ष के लिए ही, मेरे आत्मीय पक्ष की तो निरंतर अवहेलना की जाती हैं। मेरे इस पक्ष का प्रसन्न रहना मेरे स्वस्थ रहने के लिए ही नहीं वरना पूरी संस्था के और हमारे जैसी अन्य इकाइयों से बने पूरे समाज के हित में है। कहा भी तो गया है—मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। संस्था में मेरा महत्व इसी बात से सिद्ध हो जाता है कि मेरे अतिरिक्त किसी भी अवयव को मंदिर की संज्ञा कभी नहीं मिलती। क्या आपने कभी मस्तिष्क-मंदिर, यकृत-मंदिर, अमाशय-मंदिर जैसे शब्द चुने हैं? मात्र मन-मंदिर ही कहा जाता है।

आशा है आप उपरोक्त पहलुओं का संज्ञान लेते हुए मेरे इस पक्ष यानि मन को उसकी खोयी हुई प्रतिष्ठा औरर गरिमा वापस दिलवाएंगे और इसके फैसलों को उचित सम्मान देंगे।

आपकी आज्ञाकारी

मन उर्फ हृदय

अध्यक्ष, रक्त संस्थान एवं सलाहकार, जनसम्पर्क विभाग

शरीर संस्था।

○○○

प्रेम जनमेजय कृत 'भ्रष्टाचार के सैनिक'

तरसेम गुजराल

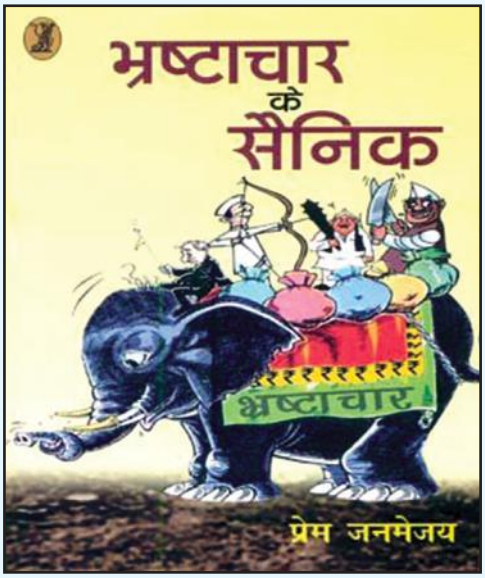

समीक्षित कृति
भ्रष्टाचार के सैनिक
लेखक
प्रेम जनमेजय
प्रकाशक
वाणी प्रकाशन
मूल्य: 350 रुपये
प्रकाशन वर्ष: 2017

सम्पर्क: 444ए, राजा गार्डन, पो. ऑफिस, बस्ती, बाबा खेल, जालंधर -144021 (पंजाब)

प्रेम जनमेजय के व्यंग्य संग्रह 'भ्रष्टाचार के सैनिक' की दिलचस्प, विसंगतियों को उभारती, दूसरों को आईना दिखाती, मानसिक संताप दृढ़तापूर्वक झेलती व्यंग्य रचनाओं को पढ़ते हुए जो पहला सवाल मन में उभरकर आया वह यह था कि प्रेम कैसे मुश्किल कर्म को इतना आसान बना देते हैं। कैसे जाग रहे लोगों को जगा जाते हैं, कैसे भीतर गलत व्यवहार, हालात, गलत जगह के प्रति एक कसक सी पैदा कर जाते हैं?

बगैर खासतौर चुने 'मुतिया मेरा नाम' रचना का एक अंश हाजिर है—''जो आत्मा राजनीति में लावारिस छोड़ दी जाती है, सड़ांध मारती है। बेचारी अच्छी आत्मा चुनाव में अपनों धन लगाकर जीतकर आयी और आपने उसे अनुपयोगी आत्मा समझ कोने में लावारिस-सा पटक दिया। आपने उसे कुत्ता बना दिया। और कुत्ता भी गली का। वह आत्मा तो मन्त्री-पद पर विराजमान हो देश सेवा के उच्च विचार लेकर आयी थी और आपने उसे लाश बना दिया...संसार का नियम है कि चाहे सड़ा आदमी हो, सड़ा कुत्ता हो, सड़े सम्बंध हो, सड़ा नेता हो, सड़ी विचारधारा हो, सड़ी रचना हो, सड़ा रचानकार हो—सड़ांध मारते ही हैं।' (भ्रष्टाचार के सैनिक/पृ. सं./57)

विसंगतियां देखकर चुप रह जाना प्रतिबद्ध व्यंग्यकार का धर्म नहीं। उनकी खूबी इसे तीखे ढंग से जाहिर करने में भी है और बौद्धिक कल्पनाशीलता को एक आधार देने की भी। एक से ज्यादा व्यंग्य रचनायें पढ़ कर हम पाते हैं कि प्रेम का साहित्य विवेक, जीवन विवेक से पृथक नहीं है। समयगत बदलावों को वह दूर से सूंघ लेते हैं और किसी अतिरिक्त घोषणा के बिना व्यंग्य रचना का हिस्सा बना देते हैं।

तकलीफ क्या चीज दे रही है एक रचनाकार को?—जो है उससे बेहतर चाहिए। मुक्तिबोध की तकलीफ भी इसके अलावा क्या थी?—''किंतु मैं सीधी-सादी पटरी-पटरी दौड़ा हूँ/ जीवन की फिर भी अपनी सार्थकता से सिद्ध हूँ/ विष से अप्रसन्न हूँ/ इसलिए कि जो है उससे बेहतर चाहिए/ पूरी दुनिया को साफ करने को

एक मेहतर चाहिए।'' समयगत बदलावों को दूर से ही सूँघ लेने की बात—उनकी व्यंग्य रचना है—'क्यों चुप तेरी महफिल में' इस रचना में बच्चे तैयार हैं कजन्स से मिलेंगे। उन कजन्स से जो वाट्सअप और फेसबुक पर मिलते हैं। मिलने से ज्यादा उनकी उत्सुकता है एक-दूसरे का नया आईफोन, आईपैड टेबलेट देखने की। बच्चों के कमरे में गये। देखें कि क्या बतिया रहे हैं। देखा तो सब अपने-अपने स्मार्ट फोन या फिर टैब में व्यस्त हैं। सब के सर अपने-अपने गैजेटस पर प्रमाण की मुद्रा में झुके हैं। एक अजीब-सी खामोशी हुई है। अंगुलियाँ चल रही हैं, जुबान खामोश है। (प्र.सं./29)

प्रेम जनमेजय इस भूमण्डलीकृत, उपभोक्तावादी, वैश्वीकरण के दौर को सही ढंग से समझ और व्यंग्य के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहे हैं। 'मोची भया उदास' व्यंग्य रचना में 'यूज एण्ड थ्रो' की महिमा का निरावरण करते हुए कहा—सुना है आज के बाजार में व्यक्ति भी वस्तु (कमोडिटी) हो गया। 'पुराना' हो गया व्यक्ति भी यूज एंड थ्रो देवी की कृपा से इस्तेमाल हो रहा है।' बेटे ने हाईराइजर में आलीशान फ्लैट लिया है। 'आलीशान फ्लैट वो होता है जिसका कोई पड़ौस नहीं होता।' प्रेम व्यंग्य की चाबुक लेकर खड़े हैं, नकली जिन्दंगी की खाल खींच लेंगे। कौन कह सकता है व्यंग्य में गुस्से, शेष, नाराजगी का इजहार मुश्किल है।

'मोची भया उदास' व्यंग्य में बेटा गूगल पर सर्च कर रहा है कि आसपास जूतों की दुकान हो तो वहाँ से नई चप्पल मिल जाये' नई दर को ढूँढ़ने पर मोची मिल गया जिसका बखान इस प्रकार है—

'नैतिक-मूल्यों सा दुरुह मोची मुझे भ्रष्टाचार में ईमानदार-सा, बचे पेड़ की छांह में बैठा दिख गया।' यह मोची आभासित मक्खियां मार रहा था।' आजकल हमारे जीवन में आभासित दुनिया बहुत महत्त्वपूर्ण हो गयी है।'

ग्लोबल पूंजीवाद के दौर में भाषा का अवमूल्यन हुआ है। प्रजातंत्र का अवमूल्यन है। रचनाकार/व्यंग्यकार दोनों को बचाना चाहता है।

1. मानवता भी एक कवच है। महान आदमी आदरणीय होता है। वह हाई कमांड हो जाता है। वह प्रभु हो जाता है। मेरे तो गिरधर गोपाल या फिर तुलसी मस्तक तब नसे जब धानुस बान हो साथ टाइप प्रभु। वह सत्य से परे हो जाता है। वह आलोचना से भी परे हो जाता हैं वह आन्दोलन से भी परे होता है। उसकी आलाचेना होते ही दंगा होता है जिसे आन्दोलन कहते हैं। (प्र.स/33)

2. हिन्दी का अध्यापक कितना अनुपयोगी होता है। वो न तो ट्यूशन कर शिक्षा को मूल्यवान बनाता है और न ही देश की आर्थिक दशा में कोई सुधाार करता है। (अहिंसक हिन्दी)

हम बीस कवियों से कविता विधा पर बात करना चाहे या फिर दस कहानीकारों से कहानी के विधागत प्रश्नों पर बात करना चाहें, आम तौर पर हमें निराशा से कुछ ज्यादा हाथ नहीं आता। परंतु प्रेम जनमेजय में हम एक ऐसा व्यंग्यकार पाते हैं जो व्यंग्य विधा के प्रश्नों के जी जान से उत्तर देता है। व्यंग्य के आलोचना शास्त्र के लिए फिक्रमंद है। व्यंग्य के सामाजिक सम्बंध की चिंतात्मक जमीन के लिए व्याकुल है। वह उन विरल व्यंग्यकारों में आसानी से जगह पा जाते हैं जो यह भी बता रहे हैं कि किस पर व्यंग्य नहीं करना चाहिए। न केवल गंभीरता से दत्त चित्त होकर व्यंग्य रचना की, अपितु 'व्यंग्य यात्रा' पत्रिका को अपना खून देकर भी जिन्दा रखा और उसके दरवाजे उन तमाम लेखकों के लिए खुले रखे वो जीवन-मूल्यों और साहित्यिक मूल्यों को सम्मान देते हों और व्यंग्य के प्रसार की (सार्थक व्यंग्य) गंभीर कोशिश कर रहे हो।

'भ्रष्टाचार के सैनिक' संग्रह में 'तू भी रानी मैं भी रानी' के तहत कहा—'हमारी सांस्कृतिक मौलिकता के समक्ष अनेक चुनौतियां हैं। जो संवादहीनता पश्चिमी देशों में वर्षों पहले हुआ करती थी वह आज हमारे समाज में अपने पैर फैला चुकी है। ऐसे में इन सबसे लड़ने का एकमात्र हथियार व्यंग्य ही है। व्यंग्य बदलते सामाजिक परिवेश में उत्पन्न विसंगतियों के विरुद्ध लड़ाई का एक सार्थक हथियार है। सामयिक परिवेश में अवसाद, मूल्यहीनता, एकाकीपन, आदि की उत्पन्न स्थिति का सामना करने के लिए व्यंग्य एक उपयुक्त माध्यम है—पर क्या हम व्यंग्यकार व्यंग्य की इस भूमिका को समझ रहे हैं? क्या हम आज के समाज को समझ रहे हैं?'

प्रेम जनमेजय हिन्दी व्यंग्य के समक्ष दो बड़ी चुनौतियों से आगाह करते हैं—उसे सीमित होने से बचाना और उसके गाम्भीर्य की रक्षा करना। इन चुनौतियों ने उन्हें आत्मालोचना का आधार भी मुहैय्या करवाया है। जो किसी लेखक की उद्घोषणा का हिस्सा हो न हो, रचना प्रक्रिया का अन्जाना हिस्सा जरूर होता है।

'हे पोंगापन्थी' व्यंग्य रचना में सुबह का आलम ही फेसबुकिया है।—'मेरी माँ सुबह की चाय के बाद नहा-धोकर प्रभु भजन को तैयार होती थी। मेरी माँ की अंगुलियां माला फेरा करती थीं और उनका युग ऐसे ही होता। मेरी पत्नी की अंगुलियों मोबाइल स्क्रीन के फेर में रहती हैं और कह नहीं सकता कि उसका युग कैसे बीतेगा? नयी-नयी तकनीक आ रही है और बहुत जल्दी आपके मस्तिष्क मैं चिप फिर हो सकती है जो आपके सोचने भर से काम करेगी।' (भ्रष्टाचार के सैनिक/(पृ.सं./96)

उनका नायिका भेद रीतिकालीन न होकर फेसबुककालीन है क्योंकि पत्नी फेसबुक नायिका है।—'परकीया दूसरे के कहे को कट पेस्ट करती रहती है। स्वकीया लाभ के पद वालों के प्रति पवित्र भाव रखली हैं अभिसारिका दिन-रात भ्रमण करती रहती है। निशाचरी आधी रात को शिकार ढूँढ़ती है कि कोई दिखे और उसे वह धर ले। दिवासरी दिन में शिकार ढूँढ़ती है। वासकसज्जा अपनी पोस्ट को नित्य प्रति सजाती रहती है।'

देश का एक जिम्मेदार नागरिक और एक गम्भीर लेखक होने के नाते प्रेम जनमेजय जनतंत्र को प्रेम करते हैं। आवाम के हर तबके के लिए सच्चे प्रजातंत्र की चाहना भीतर पल रही है। 'कबीरा मैं क्यों यथा उदास' रचना में कबीर से कहा कि उनका समय अभिव्यक्ति की अधिक आजादी का था क्योंकि वह गुलाम भारत में आजाद थे और यह आजाद भारत में गुलाम। स्वामी बनाने वाला एक दिन का वोटर, सेवक है और पाँच वर्ष की सेवा के लिए नियुक्त किया गया सेवक स्वामी है। अन्नदाता किसान भूख के कारण आत्महत्या करता है और अपनी आत्मा की हत्या कर चुके भंडारक कर सर कड़ाही में है।

'लीला चालू आहे' में कटाक्ष किया—जैसे हमारे देश में सबसे बड़ी प्रजातांत्रिक बदमाशियों चुनाव के समय होती हैं वैसे ही साहित्य में सबसे बड़ी बदमाशियों पुरस्कारों में होती हैं।'

आत्म वक्तव्य के रूप मे प्रेम जनमेजय ने कहा—मैं उस पीढ़ी का हूँ जिसने बीसवीं सदी का उत्तराई देखा है। प्रजातंत्र में सपने खूब बंटते रहें और प्रजातंत्र में ही उन सपनों से मुठभेड़ भी होती है। प्रजातंत्र का जीव संघर्षशील प्राणी होता है तो अवसाद में डूबी हुई लगभग निष्प्राण देह भी।' यदि प्रजातंत्र में उभरते हुए राजतंत्र की प्रवृतियों को पहचान कर वह अपने जैसे कुछ मित्रों के साथ मजबूती से विरोध जाहिर करता है, तब संघर्षशील प्राणी होता है और यदि अकेला बैठ कर अपने ही कोने में दुबका रहता है तब अवसाद हावी हो जायेगा। नरोत्तम मेहता ने कहा है कि सत्ता का अपना चरित्र होता है। वह अपनी सुरक्षा की व्यवस्था बड़ी सावधानी और संस्कृति के हथियारों के साथ करती है। सत्ता इस तरह के प्रभामण्डल के माध्यम से ही सांस्कृतिक शून्यता का वातावरण तैयार करती है। (चन्द्रयान-2)

प्रेम जनमेजय की कोशिश है कि सांस्कृतिक शून्यता को हर सूरत भंग करने की चेष्टा की जाये क्योंकि यह एक मुश्किल समय है, जिसमें हम आप जटिल समय को समझने की कोशिश कर रहे हैं और रचनाकार होने का दायित्व संभल रहे हैं। रोज भारतीय समाज के वंशज अपनी परम्परा, अपने कर्मक्षेत्र से बाहर धकेले जा रहे हैं। क्रूरतापूर्वक कुदरत का दोहन हो रहा है। पूंजी का हिंसक स्वरूप जीने, सांस लेने तक को कठिन बना रहा है। हरिशंकर परसाई या शरद जोशी के सामने भी यातनादायी स्थितियां रही होंगी जिनका हरिशंकर परसाई ने प्रतिबद्धता के साथ और शरद जोशी ने नागरिक बोध के साथ सामना किया। प्रेम लोकप्रिय की दलान और गंभीरता की टेक के साथ अडिग हैं। वह व्यंग्य की लोकप्रियता चाहते हैं, गंभीरता को, साहित्यिक मूल्यों को खारिज नहीं होने देते। लोकप्रियता इसलिए कि साहित्य के साहित्य होने में पाठक की उपेक्षा कतई नहीं की जा सकती। गंभीरता इसलिए कि पाठक को सुसंस्कृत होने में मदद करती हैं। एक समर्थ लेखक की सोच का दायरा पहले भी विशाल था, आज भी विशाल हैं। उसमें भविष्य निधि के बीज रहते हैं। उनकी भाषा में कथन चातुरी है, जिसका लगातार विकास हुआ है—'जो सुन्दर है उसमें तो सभी सौन्दर्य ढूंढ लेते हैं पर जो सुन्दर नहीं है उसमें सौन्दर्य ढूँढना ही जीवन को सुन्दर बनाने का मंत्र है।' सूर्य को दीपक दिखाने से क्या लाभ। लाभ तो तब मिलेगा जब अंधेरी रात के चांद दिखाओगे। चाँद न मिले तो मोमबत्ती से काम चल जायेगा। देखना जिस अंधेरे से तुम्हें भय लगता है वह कैसे तुम्हारा मित्र बन जाता है।' (कितने अच्छे हैं आप)

प्रेम जनमेजय अपनी, व्यंग्य विधा की, सामाजिक राजनीतिक ढाँचे की चुनौतियों को जानते समझते हैं और जूझने की मानसिक तैयारी कर सके हैं।

○○○

संजय सिंह बघेल कृत 'विज्ञापन और ब्रांड'

डॉ. अरूण कुमार भरत

समीक्षित कृति	:	**विज्ञापन और ब्रांड**
लेखक	:	**संजय सिंह बघेल**
प्रकाशक	:	**सस्ता साहित्य मंडल**
मूल्य	:	300 रुपये
प्रकाशन वर्ष	:	2016

सम्पर्क: माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय सी-56/4, सेक्टर-62, नोएडा, (उत्तर-प्रदेश)
मोबाइल: 98583 87111.

दिल्ली स्थित सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन द्वारा सन प्रकाशित इस महत्वपूर्ण पुस्तक के लेखक है डॉ. संजय सिंह बघेल। कुल 309 पृष्ठों की इस पुस्तक में विज्ञापन के सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों पक्षों में सामंजस्य स्थापित करते हुए मनोयोगपूर्वक विश्लेषण-विवेचन किया है। ''विज्ञापन और ब्रांड'' से संबंधित प्राय: सभी आयामों को उन्होंने बड़ी कुशलता के साथ रेखांकित किया है। विज्ञापन के महत्वपूर्ण और अद्यतन उदाहरणों के कारण इस पुस्तक के महत्ता और उपयोगिता काफी बढ़ गई है। वैश्वीकरण और उदारीकरण के इस दौर में पत्रकारिता और जनसंचार के विद्यार्थियों के लिए एक श्रेष्ठ और संग्रहणीय पुस्तक सिद्ध होगी, ऐसा मेरा दृढ़-विश्वास है।

इस पुस्तक के पहले अध्याय में विज्ञापन के उद्भव एवं विकास पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। बाजारवादी अर्थव्यवस्था में विज्ञापन उद्द्योग की महत्ता को स्थापित करने के लिए उन्होंने विभिन्न रिपोर्ट के माध्यम से महत्वपूर्ण आंकड़ों का उल्लेख किया है। विज्ञापन की अवधारणा और विकास-यात्रा को उन्होंने उदाहरणों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। यह पत्रकारिता एवं जनसंचार के विद्यार्थियों के लिए सहज रूप से ग्राहय होगा। विज्ञापन जगत में उत्पाद की पहचान, उसकी छवि, उसका स्थान, और उसके मूल्य को समझने के लिए डॉ. बघेल ने महाभारत के एक दृष्टांत का उल्लेख किया है, जो तर्कसंगत तो है ही, समीचीन भी है।

विज्ञापन संचार का एक ऐसा सशक्त माध्यम है जिसके लिए विज्ञापनदाता भुगतान करता है यह ठीक है कि विज्ञापन के माध्यम से उत्पाद की सीधी बिक्री में रातों-रात कोई बेतहाशा वृद्धि नहीं होती है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि विज्ञापन के कोई मायने ही नहीं है। वस्तुत: इसके द्वारा उत्पाद की गुणवत्ता, पहचान और मूल्यों के माध्यम से उपभोक्ताओं के बीच छवि परोसी जाती है जो कालांतर में उत्पाद की बिक्री में सहायक सिद्ध होता है। डॉ. बघेल ने आधुनिक विज्ञापन के वैश्विक विकास का लेखा-जोखा भी प्रस्तुत किया है उन्होंने भारतीय विज्ञापन जगत के प्रादुर्भाव पर भी इस अध्याय में विस्तार से

प्रकाश डाला है। हिंदी विज्ञापनों के इतिहास के क्रम में उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण विज्ञापनों का उल्लेख किया है जो विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है।

विज्ञापन वस्तुत: विभिन्न कलाओं का सम्मिश्रण है। इसमें प्रबंधन, डिजाइन, संचार कौशल और साहित्य की श्रेष्ठताएँ एक साथ सम्मिलित होती हैं इन श्रेष्ठताओं से जो विज्ञापन तैयार होता है, वह उत्पाद को ब्रांड की शक्ति प्रदान करता है। विज्ञापन के लिए कुशल रणनीति तैयार की जाती है। जिसके फलस्वरूप बाजार में उत्पाद की पहचान तो बनती ही है, उपभोक्ताओं के व्यवहार को भी नियमित- नियंत्रित करने में मदद मिलती है। इस अध्याय में उन्होंने विज्ञापित होने वाली वस्तु की पहचान, स्थान और मूल को विस्तार से विवेचित किया है।

डॉ. बघेल ने विज्ञापन के उद्‌भव और विकास को रेखांकित करते हुए लिखा है कि भारत में भित्ति-चित्रों और पत्थरों पर उकेरी गई कलाओं के नमूने 4000 ईसवी पूर्व से ही दिखाई देने लगते हैं। घर के बाहर की दीवारों पर लिखे गए विज्ञापन और प्रचार सूची विज्ञापन के पुराने रूपों में से एक है। लेकिन विज्ञापन का विस्तृत और वास्तविक विकास प्रिंटिंग-तकनीक के विकसित होने के बाद ही माना जा सकता है। जब प्रिंटिंग तकनीक ने चिन्हों के माध्यम से संदेशित किए जा रहे विज्ञापनों को स्थानांतरित कर इसे लिखित और संदेशित रुप में प्रस्तुत किया।

विज्ञापन के उद्‌भव और विकास के क्रम में विज्ञापन एजेंसियों का भी विशेष उल्लेख किया गया है। उन्होंने लिखा है कि सन 1875 में पहली आधुनिक विज्ञापन एजेंसी की स्थापना फिलाडेल्फिया में 'एन.डब्ल्यू.आर एंड संस' के नाम से हुई। सन 1892 में लंदन की पहली विज्ञापन एजेंसी की स्थापना 'रेनेल एंड संस' के नाम से की गई। उन्होंने विज्ञापन में पहली बार 1887 ईसवीं में पेंटिंग के उपयोग का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि पहली बार अमेरिकी विज्ञापन कंपनी ने सेक्स का उपयोग उत्पाद बेचने के लिए किया जो मूलत: महिलाओं के लिए बनाया गया विशेष प्रकार का साबुन था।

पुस्तक के पहले ही अध्याय में डॉ. बघेल ने विज्ञापन के लिए कापी लेखकों, कलाकारों, डिजाइनरों, मनोवैज्ञानिकों एवं मार्केटिंग विशेषज्ञों की जरूरतों पर भी प्रकाश डाला है। भारतीय बाजार की भाषा चूंकि हिंदी है इसलिए लगभग 80 प्रतिशत विज्ञापन हिंदी में ही बनता है। इस सच्चाई के बावजूद लेखक ने पहले ही अध्याय में इस बात का संकेत किया है कि हिंदी विज्ञापन जगत पर अंग्रेजीदा लोगों का कब्जा है। उन्होंने इस बात पर चिंता व्यक्त की है कि भारतीय विज्ञापन का 95 प्रतिशत भाग अंग्रेजी में ही सोचा, विचारा और लिखा जाता है और जब पूरी तरह इसकी कॉपी और रूपरेखा, मसलन विज्ञापन की भाषा जिसे स्टोरी बोर्ड कहते है, अंग्रेजी में बनकर तैयार हो जाती है तब उसका हिंदी में अनुवाद करने के लिए अनुवाद एजेंसी को दे दिया जाता है।

इस पुस्तक के दूसरे अध्याय में हिंदी पत्रकारिता और विज्ञापन के इतिहास की विस्तृत विवेचना की गई है। उन्होंने भारतीय विज्ञापन जगत के इतिहास का वर्षवार विवरण प्रस्तुत किया है जो जनसंचार के विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी है। उन्होंने वर्षवार विवरण के क्रम में कारपोरेट विज्ञापनों की शुरूआत से लेकर रचनात्मक और तकनीकपरक क्रांति का विवरण और लेखा- जोखा प्रस्तुत किया है। इस क्रम में उन्होंने अनेक रोचक और सफल विज्ञापनों का भी उल्लेख किया है जिसकी प्रासंगिकता स्वयं सिद्ध है। उन्होंने हिंदी पत्रकारिता के विभिन्न युगों में छपने वाली पत्र पत्रिकाओं के विज्ञापन का भी उल्लेख किया है उन्होंने विभिन्न शताब्दियों में विज्ञापन के इतिहास का उल्लेख सुरुचिपूर्ण तरीके से किया है जो विद्यार्थियों के लिए अत्यंत उपयोगी है।

पुस्तक के तीसरे अध्याय में विज्ञापन की प्रकृति और स्वरूप को रेखांकित किया गया है। इस अध्याय में भारतीय उत्पादों के अनेक विज्ञापनों का तर्कसंगत विश्लेषण हुआ है जिससे संचार के विद्यार्थियों का सम्यक मार्गदर्शन हो सकेगा ऐसा मेरा विश्वास है। विज्ञापन की प्रकृति और स्वरूप को उन्होंने लैक्मे लिपस्टिक और नेल पॉलिश के माध्यम से विश्लेषित किया है। उन्होंने विज्ञापन की विभिन्न परिभाषाओं के आलोक में विज्ञापन की प्रकृति एवं स्वरूप को अक्षरित किया है। वे लिखते हैं कि विज्ञापन विशिष्ट प्रवृतियों वाली एक ऐसी प्रक्रिया का नाम है जिसको उत्पादन एवं सेवाओं के बदले मूल्य प्राप्त होता है।

लेखक के अनुसार विज्ञापन पहले उपभोक्ता को एक ऐसी रोमांटिक यात्रा पर ले जाता है जहां उपभोक्ता का ब्रांड से परिचय होता है फिर वह उस उत्पाद और ब्रांड के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करता है। फिर पहली बार उसको खरीदना है। जिससे उसकी पसंद-नापसंद का पता चलता है। यदि उसको कोई ब्रांड पसंद आ गया तो वह जीवन भर के लिए उसका एक

वफादार ग्राहक बन जाता है। उन्होंने उत्पाद की उपयोगिता, विशिष्ट गुण, आकार-प्रकार, रूप-रंग, नाम, ब्रांड, प्रतिद्वंद्वी मूल्य इत्यादि के साथ साथ उसके प्रमोशन की तकनीकी और कार्य योजना का विस्तृत विवेचन किया है। विज्ञापन के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष उद्देश्यों के साथ साथ विकासशील देशों में विज्ञापन के मिशन और चुनौतियों की भी विवेचना की है। उन्होंने विज्ञापनों के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रभाव का उल्लेख कर इस पुस्तक की उपादेयता को बढ़ाया है। डॉ. बघेल ने इस अध्याय में विज्ञापन के नैतिक पक्ष का भी उल्लेख किया है। गलाकाट प्रतियोगिता के बीच उपभोक्तावादी संस्कृति के आलोक में विज्ञापन के नैतिक पहलुओं पर विचार करना भी प्रासंगिक है। उपभोक्ताओं को प्रभावित करने की कला और कौशल ने आज अतिरंजना और मिथ्यावर्णन की बैसाखी को आत्मसात करने में भी गुरेज नहीं कर रहा है। यह सचमुच दुर्भाग्यपूर्ण है। कभी सही वजन और पैकेजिंग के नाम पर धोखाधड़ी की जाती है तो कभी माल खत्म की झूठी घोषणा की जाती है। उन्होंने विज्ञापन में सामाजिक मूल्यों के ह्रास होने की ओर भी संकेत किया है।

पुस्तक के चतुर्थ अध्याय में विज्ञापन के विभिन्न सिद्धांतों का उल्लेख करते हुए डॉ. बघेल ने विज्ञापन के रूप में संचार के विभिन्न माडलों को भी विस्तार से समझाया है। विज्ञापन के मूलभूत तत्वों के रूप में उन्होंने धन, संदेश, माध्यम और मापदंड का उल्लेख किया है। उन्होंने उपभोक्ता के व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों का विस्तार से उल्लेख किया है। उनके अनुसार संतुष्टि, मतभेद, प्रेरणा, प्रवृत्ति, व्यक्तित्व, मनोवैज्ञानिक और जीवनशैली उपभोक्ताओं के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इसी अध्याय में उपभोक्ताओं के गुण और उसकी प्रवृतियों के आधार पर बाजार को छः श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है।

डॉ बघेल ने पांचवें अध्याय में विज्ञापन के विभिन्न माध्यमों का उल्लेख किया है। विज्ञापन के माध्यमों और उसकी प्रवृत्तियों के आधार पर विज्ञापन को कुल सात श्रेणियों में विभाजित किया गया है। प्रिंट माध्यम, ब्रॉडकास्ट माध्यम, और आउटडोर माध्यम के साथ साथ गुप्त विज्ञापन, छदम विज्ञापन, सार्वजनिक सेवा विज्ञापन और सेलिब्रिटी विज्ञापन का विस्तृत उल्लेख किया गया है। विज्ञापन की भाषा का उल्लेख करते हुए उन्होंने शब्दों की सार्थकता पर भी बल दिया है। यहां उन्होंने माध्यमों के अनुकूल भाषा की रचना का भी उल्लेख किया है। उनका मानना है कि शब्द विज्ञापन के सशक्त उपकरण है।

''विज्ञापन और ब्रांड'' नामक पुस्तक के छठे अध्याय में कॉपी लेखक और उसके प्रकार, सातवें अध्याय में विज्ञापनः अभिकल्पना, अभिरुचि, अपील, आठवें अध्याय में विज्ञापन के विभिन्न प्रकार, नौवें अध्याय में विज्ञापन और विज्ञापन निर्माण प्रक्रिया तथा दसवें अध्याय में ब्रांड और ब्रांडिंग का समुचित और ज्ञानपरक विवेचन किया गया है। अनेक प्रमुख विज्ञापनों का सचित्र विवरण इस पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ाने में सर्वथा समर्थ है। यद्यपि विज्ञापन पर हिंदी माध्यम में अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं किंतु यह पुस्तक विज्ञापन के प्रायः सभी आयामों को अपने में समाकलित करने के कारण श्रेष्ठ हो गई है।

डॉ बघेल ने विज्ञापन के विभिन्न आयामों को सूक्ष्मता के साथ विश्लेषित किया है। विज्ञापन का शिल्प और कौशल की समझ विकसित करने की दृष्टि से यह पुस्तक विज्ञापन के विद्यार्थियों के साथ-साथ प्रोफेशनल के लिए उपयोगी है। शोधकर्ताओं के लिए भी यह एक संदर्भ ग्रंथ के रूप में महत्वपूर्ण होगी। इस पुस्तक में भाषा और प्रूफ संबंधी कमी अवश्य रह गई है किंतु समग्रता की दृष्टि से यह पुस्तक विज्ञापन और ब्रांड विषय की पाठयपुस्तक के रूप में पठनीय, मननीय और संग्रहणीय है।

○○○

राज हीरामन कृत 'मेरे आते जाते पत्र'

संतोष अर्श

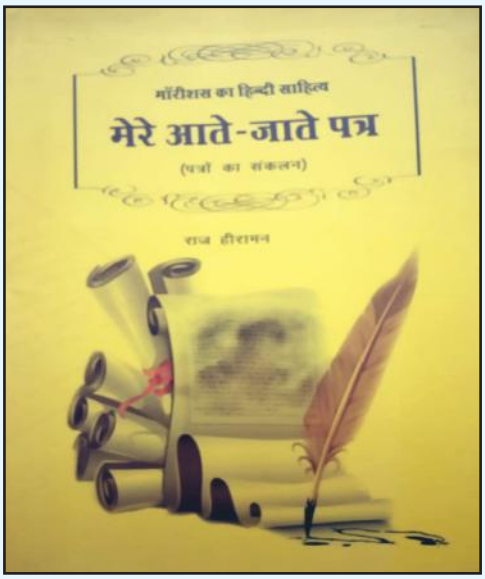

समीक्षित कृति
मेरे आते जाते पत्र
लेखक
राज हीरामन
प्रकाशक
स्टार पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
मूल्य: 450 रुपये
प्रकाशन वर्ष: 2018

सम्पर्क: एच-46, यमुनापुरम, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश-203001

मॉरीशस के प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित लेखक राज हीरामन के पत्रों का संकलन '**मेरे आते-जाते पत्र**' स्टार पब्लिशेन दिल्ली में प्रकाशित हुआ है। यह संग्रह मॉरीशस का प्रथम पत्र-साहित्य है जो मॉरीशस के हिंदी लेखन में पत्र-साहित्य की परंपरा का प्रारंभ करेगा।

''मेरे आते-जाते पत्र' के पत्रों का संकलन डॉ. धर्मवीर भारती के देहावसान (1997) के तुरंत बाद आरंभ हुआ था। उनकी विधवा आदरणीय पुष्पा भारती ने अपने दिसंबर 1997 के पत्र में मुझे लिखा था भईया, आपके पास भारती जी के लिखे कुछ पत्र होंगे। यदि हाँ तो कृपया उनकी जेरॉक्स प्रति मुझे दे दीजिए।''

उन दिनों भारती के पत्रों का संकलन प्रकाशित हो रहा था। जिसके लिए पुष्पा भारती को राज हीरामन को धर्मवीर भारती लिखे गए पत्रों की आवश्यकता पड़ी थी। किन्तु लेखक बताता है कि भारती के पत्र उसे नहीं मिल सके और वह मन मसोस कर रह गया। लेकिन तभी से उसने अपने आने-जाने वाले पत्रों की प्रतिलिपियों को सुरक्षित रखना शुरू कर दिया और उसी पत्र-संचयन के फलस्वरूप यह पुस्तक तैयार हो सकी जिससे मॉरीशयन हिंदी साहित्य में पत्र-साहित्य की परंपरा का आगाज हो रहा है।

पुस्तक में डॉ. कमल किशोर गोयनका, डॉ. विवेकी राय, पुष्पा भारती, कन्हैयालाल नंदन जैसे हिंदी साहित्य की दुनिया के बड़े नामों के पत्र भी संकलित है। इनसे हुआ पत्राचार राज हीरामन की समर्पित साहित्यिक यात्रा का पता देता है। इन पत्रों में लेखक के साथ उनके लिखने वालों के प्रगाढ़ और आत्मीय संबंधों की छटा भी बिखरी हुई है। 21 जून 1998 को पुष्पा भारती द्वारा लेखक को लिखे गए पत्र से मालूम होता है कि धर्मवीर भारती से लेखक के कितने आत्मीय संबंध थे। यह आत्मीयता इस पत्र के इस कथन से व्यंजित होती है: **आप जब भी घर आते थे तो हमारा घर एक ममत्व से खिल उठता था। भारती जी की आँखों में आपको देखकर जो वात्सल्य भाव आता था वह**

बहुत अनोखा था।'' धर्मवीर भारती की मृत्यु पर शोक-संतप्त पुष्पा भारती और राज हीरामन की मन:स्थिति का पता भी पुष्पा भारती के ही एक पत्र से चलता है, जिसमें वे लिखती हैं:

''आदरणीया भाई राज हीरामन, 4 सितंबर 97, भाद्रशुक्ल द्वितीया के दिन मेरे पति डॉ. धर्मवीर भारती ने शरीर छोड़ा। तब उस आकस्मिक वज्राघात को झेल पाने की शक्ति आप की संवेदना और सहानुभूति से ही मिल सकी। मेरे लिए तो जीवन का अब कोई अर्थ रह ही नहीं गया है। पर जानती हूँ परमतत्व में उनके विलीन हो जाने के बाद आप भी कुछ छीज कर एक बड़े शून्य का अनुभव कर रहे हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि उनकी याद को मन में बसाए उनके बिछोह को सहने की ताकत आपको भी मिले।''

पुष्पा भारती के पत्रों के उपर्युक्त उद्धरण राज हीरामन की उनके परिवार से अंतरंग निकटता के परिचायक है। यह पत्राचार धर्मवीर भारती के देहावसान की घटना को साहित्यिक गरिमा के साथ हिंदी के साहित्येतिहास में दर्ज करता है।

पुस्तक में प्रारंभ में डॉ. कमल किशोर गोयनका के छब्बीस पत्र लगातार है। इन पत्रों में राज हीरामन से उनका साहित्यक संवाद, साहित्यिक पत्रकारिता संबंधी वार्तालाप और दो देशों के बीच के हिंदी साहित्य के रोचक अंतसंबंधों के सिरे हैं, निश्चय ही ये भारत और मॉरीशस हैं। साथ ही इन पत्रों में अदबी रायशुमारी और डॉ. गोयनका के राज हीरामन को दिए गए मशवरे भी हैं। ये पत्र जितने आत्मीयतापूर्ण है उतने ही प्रोफेशनल यानी पेशेवर भी हैं। इनमे जो रोचक तथ्य हैं वे हिंदी साहित्य की अप्रचलित बातों को भी दर्ज करने वाले हैं। जैसे कि प्रेमचंद ने 'चाँद' पत्रिका के प्रवासी अंक के लिए 'शुद्रा' नामक एक कहानी लिखी थी। नवंबर, 2005 को राज हीरामन को लिखे गए अपने एक लंबे पत्र में डॉ. गोयनका लिखते हैं:

''मॉरीशस के हिंदी साहित्य को विकसित करने के लिए जो तपस्वी तथा साधक लेखक चाहिए और ईश्वर की कृपा से यह क्षमता आप लोगों में है-बस, उस अग्नि को प्रज्ज्वलित रखने की आवश्यकता है। अत: आपसे अनुरोध है कि स्थितियों को सकारात्मक रूप में देखें-निजी लाभ-हानि से नहीं। मैं नहीं जानता, आपके मित्र मेरे विचारों से सहमत होंगे, परंतु सद्भाव, सदाशयता छोड़नी नहीं चाहिए।''

मॉरीशसीय हिंदी साहित्य को भारत में स्थापित करने और उसे लोकप्रिय बनाने में डॉ. कमल किशोर गोयनका के प्रयासों में उनकी प्रतिबद्धता हिंदी साहित्य जगत में कोई दबी-छिपी बात नहीं है। इसके लिए उन्होंने लंबे समय तक समर्पित भाव से श्रमसाध्य कार्य किया है। यह समर्पण और प्रतिबद्धता राज हीरामन को लिखे गए पत्रों में भी छाई हुई है। इन्हीं पत्रों में एक तथ्य यह पता चलता है कि राज हीरामन और अभिमन्यु अनत के बीच किसी प्रकार का मतभेद भी था। उस मतभेद की जानकारी तो पत्रों में स्पष्ट नहीं मिलती, किन्तु उसके समाप्त होने का जिक्र एक पत्र में हुआ है। यह अक्टूबर, 2005 का पत्र है जिसमें डॉ. गोयनका लिखते हैं:

''अभिमन्यु से आपकी बातचीत हुई, मित्रता बढ़ी और आप उन्हें पुस्तक अर्पित करेंगे तो मेरे लिए प्रसन्नता की बात है। सद्भाव और मित्रता ही स्थायी है। आपके मतभेद समाप्त हो गए तो मुझे सुखकर लगा। मैं तो आप दोनों का मित्र हूँ। इस मित्रता को स्थायी बनाएँ।''

डॉ. गोयनका से राज हीरामन के संवादों में नैरतंर्य है। यह निरंतरता साहित्यिक पत्रकारिता के पेशे से जितनी बनी हुई है, उतनी ही मित्रता की आत्मीयता से भी। डॉ. गोयनका की राज हीरामन को दी गई नसीहतों में उनके प्रौढ़ लेखकीय गुणों के दर्शन होते हैं। ये नसीहतें केवल राज हीरामन के लिए ही नहीं बल्कि प्रत्येक उस लेखक के लिए हैं, जो साहित्य की गंभीरता और उसके सांस्कृतिक महत्व को समझता हैं। ये नसीहतें कहीं-कहीं सूक्तियों जैसी बन पड़ी है। इनमें मॉरीशस के हिंदी लेखकों के मध्य व्याप्त मतभेदों और वैमनस्य की जानकारी भी मिलती है। सन् 1999 में लिखे गए एक पत्र में डॉ. गोयनका पाद टिप्पणी जैसे एक वाक्य में लिखते हैं:

''पुनश्च एक बात और-मॉरीशस में कुछ हिंदी लेखक कटुता, विरोध को स्वार्थ रूप से मन में क्यों बैठा लेते हैं? संवाद ही खत्म हो जाता है। लेखक को क्षमाशील होना चाहिए।''

डॉ. गोयनका के पत्र संकलन के साहित्यिक स्वरूप को निखारने वाले पत्र है। साहित्यकार का पत्र केवल पत्र न होकर साहित्य भी होता है, इस धारणा को प्रामाणिक सिद्ध करने वाले डॉ.

गोयनका के पत्रों में साहित्यकार के आचरण और उसके व्यवहार को गरिमा प्रदान करने वाले विचार भी अभिव्यक्त हुए हैं। वे सन् 1998 में लिखे गए एक पत्र में लिखते हैं:

''मनुष्य की पहचान उनकी मान्यताओं के साथ आचरण से भी होती है। आचरण ही प्रमुख है। साहित्य हमें आचरण की गरिमा सिखाता है, मनुष्य का मनुष्य को निकट लाने/जाने का भाव देता है। यदि हम साहित्य के पथिक होने पर यह भाव न सीख पाए तो साहित्य को ओढ़ने-बिछाने का कोई अर्थ नहीं है।''

डॉ. गोयनका के विस्तृत पत्र इस संकलन के प्रारंभ से लेकर बयालीसवें पृष्ठ तक फैले हुए हैं। ये पत्र राज हीरामन से उनके लगातार होने वाले पत्राचार और उनके आत्मीय संबंधों के विषय में बताते हैं। ये पत्र दो देशों के हिंदी साहित्य के अंर्तसंबंधों की पड़ताल करते हुए उनके अनेक भेद खोलते हैं।

पुस्तक के परिचय में राज हीरामन ने अपने गुरू प्रो. रामप्रकाश का स्मरण किया है। उनके भी कुछ पत्र इस संग्रह में संकलित हैं। इन पत्रों में राज हीरामन को उनकी दी गई शिक्षाओं के साथ उनका उत्साहवर्धन और अपने शिष्य में उनका विश्वास भी अभिव्यक्त हुआ है। मॉरीशस के हिंदी समाज को लेकर उनकी चिंताएँ भी इन पत्रों में मिलती है। मॉरीशस के हिंदी समाज के बारे में कुछ कड़ी बातें भी उन्होंने लिखी हैं। अप्रैल, 1998 के एक पत्र में प्रो. रामप्रकाश लिखते हैं:

मॉरीशस निष्कासन से पहले त्रियोले में डॉ. शिवसागर रामगुलाम की उपस्थिति में मैंने कहा था कि हिंदी के आँगन में विषधर कुंडली मारे बैठे हैं। कुछ फुफकार रहे हैं, कुछ बिलों में बिलबिला रहे हैं-आवश्यकता हैं विषपायी नीलकंठ की। तुम्हारा बिंब 'मेरे घर को चाटती दीमक' अधिक सशक्त है।''

गुरु अपनी बात कहने के लिए अपने शिष्य की कविता की पंक्ति को उसे लिखे गए पत्र में उद्धृत करत हैं, यह गुरु शिष्य की साहित्यिक अंतरंगता को जानने के लिए पर्याप्त है। प्रो. रामप्रकाश के पत्रों में राज हीरामन के लिए जो स्नेह और आर्शीवचन हैं, वह शिष्य-गुरु परंपरा का उन्नायक है। किसी भी भाषा के साहित्य की उन्नति में गुरु-शिष्य परंपरा का बड़ा योगदान रहा है।

संकलन में अन्य छोटे-बड़े भारतीय साहित्यकारों से भी राज हीरामन का हुआ पत्राचार मिलता है। डॉ. विवेकी राय का भी एक पत्र इसमें मिलता है। जिसमें साहित्यकार के रूप में राज हीरामन की प्रशंसा है। मॉरीशस के लेखकों में भारत में भी प्रसिद्ध रामदेव धुरंधर का एक लंबा पत्र है। इस पत्र में श्रीधर बर्वे के मॉरीशस जाने का विवरण मिलता है और यह तथ्य भी कि श्रीधर बर्वे से रामदेव धुरंधर की भी मुलाकात हुई थी। इस पत्र के अंत में रामदेव धुरंधर ने बेहद निश्छल भाव से राज हीरामन की प्रशंसा की हैं:

''तुमसे इतना कहना है कि जमकर लिखो। तुम्हारी साहित्यिक पकड़ अद्भुत है। इसे और तराशो। मॉरीशस का हिंदी जगत शायद तुम्हारे संसार से जाने के बाद कहेगा बढ़िया लेखक था। तुम्हारे जीवन काल में भारत कह रहा है बढ़िया लेखक हो। तुम्हारी अगली रचनाओं की अपेक्षा बनी रहेगी। तुम्हारा अपना ही, रामदेव धुरंधर।

'तुम्हारा अपना ही' से रामदेव धुरंधर का इस पत्र को समाप्त करना पत्राचार की सांस्कृतिक रवायतों को प्रदर्शित करता है, साथ ही एक ही देश के दो लेखकों की अपनत्व की भावना को भी। यह दिलचस्प है कि डॉ. विवेकी राय को लिखे पत्र में राज हीरामन ने मॉरीशस के भारत में मशहूर जिन दो लेखकों का उल्लेख किया है उनमें से एक रामदेव धुरंधर है।

इस संकलन में भारत व अन्य देशों के लेखकों, पाठकों, मित्रों से हुआ राज हीरामन का विस्तृत पत्राचार अपनी विशेषताओ के साथ है। इनका अंतरराष्ट्रीय विस्तार डरबन, पेरिस और लंदन तक है। भारत भर में प्रशंसक और मित्र है। दिल्ली, गढ़वाल से लेकर रांची तक और इंदौर से लेकर मुंबई तक उनका पत्राचार पूरे भारत में फैला हुआ है। किन्तु इस संकलन का प्रमुख और संवेदनशील भाग हैं राज हीरामन के पारिवारिक पत्र। इनमें उनके, उनकी पत्नी और पुत्रियों को लिखे गए पत्र हैं। पुत्रियों के पिता को लिखे गए लंबे-लंबे पत्र हैं। इनमें पारिवारिक जीवन की आत्मीयता और गुनगुनाहट भरी हुई है। साझा पारिवारिक सुख-दु:ख हैं। एक पिता और प्रेमी पति की उत्तरदायित्व पारिवारिक चिंताएँ हैं। उसका वात्सल्य और प्रेम है। राज हीरामन अच्छे लेखक से बढ़कर कितने अच्छे पिता हैं यह उनकी बड़ी बेटी नेहा के ब्रिटेन से लिखे गए पत्रों को पढ़

कर पता चलता है। एक साहित्यकार पिता ने अपनी बेटियों को जो पत्र लिखे हैं वे संकलन की साहित्यिक आभा को और भी दीप्त कर देते हैं। ये पत्र इस संकलन के केंद्रीय पत्र हैं। इन पत्रों से जो एक और अहम बात सामने आती है वह यह कि मॉरीशस में दो शताब्दियों से अधिक समय तक रहने के बाद भी भारत की पारिवारिक संस्कृति के मूल्य अक्षुण्ण है। इन पत्रों में पारिवारिक नोंकझोंक और माता-पिता पुत्री के संबंधों की ऊष्मा अनुभव करने योग्य है। बेटियाँ ब्रिटेन में, घर से दूर रह कर पढ़ाई करती थी। पिता उन्हें पत्र लिखता रहा है। अपनी बेटियों की हिंदी समझने की सीमाओं को भी लेखक जानता है, अत: जब वे उन्हें पत्र लिखता है, तो उन शब्दों को, जिनके विषय में उसे पता है कि ये बच्चियाँ नहीं समझ पाएँगी, हिंदी के स्थान पर अंग्रेजी में लिख देते हैं अथवा कोष्ठक में उनका अंग्रेजी या सरल हिंदी पर्यायवाची लिख देते हैं। एक पत्र में, जो लेखक ने अपनी दोनों बेटियों को संबोधित करके लिखा है, इसका नमूना देखा जा सकता है। इस पत्र में बेटियों के भविष्य के लिए माता-पिता के संघर्ष की बानगी भी मिलती है:

''मुझे और माँ को लग रहा है कि जितनी और जिल्लत (बेइज्जत) से हमने तिनका-तिनका जोड़ कर जो घोंसला तुम दोनों के लिए बनाया था उसकी रीढ़ हिलने व डगमगाने लगी है। यहीं हम चारों का आशियाना (घर) था... और तुम दोनों को इस हालत में पा कर लग रहा है कि तुम्हारे टूटने के साथ यह घर भी टूट गया है।''

पिता पुत्रियों के संबंधों के लिहाज से इन पत्रों की अपना एक विशिष्ट सौंदर्यबोध हैं इनमें कहीं-कहीं ऐसा साधारणीकरण हुआ है कि पढ़ने वाले की आँख भींग जाए। राज हीरामन एक बेहद संजीदा और संवेदनशील पिता के रूप में इन पत्रों में दिखाई देते हैं। अच्छा लेखक बनना संभव है कि आसान हो, किन्तु अच्छा पिता बनना हमेशा कठिन रहा है। हीरामन इन पत्रों में लेखक से कहीं बड़े पिता के रूप में सामने आए है। वे पत्रों में ही अपनी बच्चियों के लिए अपना ममत्व और प्रेम उड़ेलते हैं। उन्हें कहानियाँ लिख-लिख कर सीख देते हैं। उन पर गर्व करते हैं और हिंदी पढ़ने-लिखने का आग्रह करते हैं। नेहा और निधि पिता की दोनों बेटियाँ ब्रिटेन में रह कर भी अपने पिता को न केवल हिंदी में पत्र लिखती थीं बल्कि इस बात पर गर्व करती थी उन्हें हिंदी आती है। 2010 में लिखे एक पत्र में निधि लिखती हैं:

''मैं अपने आपको बहुत खुशनसीब समझती हूँ कि हमने ऐसे घर में जन्म लिया जहाँ हमें अंग्रेजी और हिंदी जैसी शक्तिशाली भाषाएँ सीखने और बोलने का अवसर मिला, जबकि और लोग जो धार्मिक होने का ढोंग करते हैं और अपनी भाषा लिखना तो दूर पढ़ना तक नहीं जानते। देखा जाए तो हिंदी हमारे लिए एक अस्त्र के समान है। यह सोचते ही सीना गर्व से चौड़ा हो जाता है।''

निधि के अपने पापा हीरामन को लिखे गए पत्र के उपर्युक्त उद्धरण में 'धार्मिक' होने का अर्थ वस्तुत: देसज होने से है। भारत के मध्य वर्ग को निधि की इस बात से प्रेरणा लेनी चाहिए, जहाँ हिंदी बोलने और उस पर गर्व करने की बात तो दूर उसे पिछड़े होने की सबसे बड़ी निशानी माना जाने लगा है। जहाँ हिंदी की व्याकरणिक भूलें ही आभिजात्य की पहचान बन चुकी हैं। बड़ी बेटी नेहा ने भी अपने पिता को हिंदी/अंग्रेजी में लिखे गए पत्र पुस्तक में संकलित हैं। इन पत्रों में हिंदी में लिखे गए पत्रों को पिता द्वारा पुत्री को दिए गए हिंदी के संस्कारों का पता चलता है। भाषा अपने आप में एक संस्कृति होती है और उसके भी कुछ संस्कार होते हैं। वे संस्कार नेहा के पत्रों में तरल भावबोध के साथ व्याप्त है। नेहा 2008 के एक पत्र में लिखती है:

''आपका पत्र मिलने पर मेरे मन को बहुत आनंद आता है। मुझे खुशी है कि आपने अपने कार्य को नहीं छोड़ा। मेरा कहना है कि आप अब तक लिख रहे हैं और वह भी खूब लिख रहे हैं। मेरे कुछ मित्रों ने आपकी भेजी हुई पुस्तक को पढ़ा और आपकी सराहना की। वे बहुत प्रसन्न हुए यह सुनकर कि भारतवासियों के अलावा और लोग भी हिंदी भाषा और साहित्य में दिलचस्पी रखते हैं।''

अंग्रेजी के देशों में रहकर पढ़ाई करने वाली बेटियों में हिंदी भाषा के ऐसे संस्कार देखकर हैरानी होती है। उनके पत्रों की भाषा देखकर प्रत्येक हिंदी भाषी को गर्व होना चाहिए। इसके पीछे स्पष्ट रूप से पिता का हिंदी प्रेम है। राज हीरामन का हिंदी प्रेम अकृत्रिम हैं। उनमें हिंदी भाषा के प्रति अगाध निष्ठा और

प्रेम है। वे बेटियों को लिखे गए पत्रों में उन्हें हिंदी बोलने और पढ़ने-लिखने की सलाह बराबर देते हैं। हिंदी भाषा की शक्ति के बारे में बताते हैं। अपने ओरिजन को न भूलने की सीख देते हैं। अपनी बेटी निधि को 2010 में लिखे गए पत्र में हीरामन लिखते हैं:

''हिंदी सिर्फ एक भाषा नहीं है बेटा। हिंदी को एक संस्कार है। हिंदी तो एक संस्कृति है। हिंदी तो एक सिविलाइजेशन है। हिंदी पढ़ने-लिखने-बोलने वाला संस्कारी होता है और लोगों से कुछ हटकर होता है। इसीलिए तुम्हारा कहना ठीक है कि तुम या नेहा कुछ हट के हो। इंग्लैंड में रह कर भी तुम लोग मुझे हिंदी में लिखती हो। नेहा कभी-कभी हिंदी में मेल भी करती है तो सचमुच छाती गर्व से फूल जाती है। मैं सबको तुम दोनों का हिंदी-प्रेम बताता हूँ और बर्वे दादा को तुम्हारे खत के कुछ पढ़ाता हूँ।''

बर्वे दादा लेखक के मित्र हैं। और जब पिता अपनी बेटियों को बर्वे दादा से फोन कर बात करने के लिए कहता है तो यही आग्रह करता है कि, 'बेटा उनसे हिंदी में बात करना।' यह हिंदी-प्रेम भारत के बाहर का हिंदी-प्रेम है, जो अब भारत में भी कुछ-कुछ मद्धिम हो चला है। ऐसे में यह अमूल्य हो जाता है। पिता-पुत्रियों के इन संवादों की परतों में कई दिलचस्प बातें दर्ज हैं। जिन्हें इस संकलन के पाठक बड़े चाव से पढ़ेंगे, यह बात विश्वास के साथ कही जा सकती है।

राज हीरामन का लेखक अपनी पत्नी नमिता को लिखे गए पत्रों में दिखता है। अपनी प्रिया के प्रति लेखक का प्रेम देखने ही बनता है। उसकी बीमारी के दिनों में लिखे गए पत्रों में हीरामन ने जो भीगा दु:ख रचा है वह एक सच्चा लेखक और प्रेमी ही रच सकता है। इन पत्रों में दु:ख और प्रेम के संग उनके अपने वतन की राजनीतिक स्थितियों की कालिक खबर भी मिलती है। पत्नी को लिखे गए एक पत्र में वे लिखते हैं:

''यह देश मध्यम (मिडिल क्लास) के लोगों के लिए अब नहीं रहा। जेवियर गोरों तथा क्रियोलों को फुल स्पोर्ट दे रहा है। अभी होटल से जंग हटाया और इधर लेबर पार्टी जो... सरकार या लेबर पार्टी में कोई ऐसा हिंदी एम.एल.ए. नहीं है हम हिंदू मध्य वर्ग के लोगों का पक्ष ले।''

पत्नी के लिखे गए अन्य पत्रों में भी देश की दशा से उपजी लेखक की चिंता जाहिर होती है। एक पत्र में लेखक ने यहाँ तक लिखा है कि यह देश अब उसके रहने के योग्य नहीं रह गया है। वास्तव में यह प्रकारांतर से पत्नी की बीमारी और उसकी दूरी से उपजी हुई विरक्ति लगती है। पत्नी को लिखे गए पत्रों में लेखक का अत्यंत मृदु रूप हैं। पत्रों में उसने अपना प्रेम, अपने आंसू, अपना दु:ख अत्यंत आवेगमय भाषा में रचा है। पत्नी को संबोधित पत्रों में कविताएँ भी मिलती हैं जो जीवन की ढलती बेला में उससे दूरी के विराग से परिपूरित हैं। पत्नी को लिखे एक पत्र में लेखक ने अपने समूचे प्रेम और दु:ख को खाली दिया है:

''तुम इसी एक सूरज की तरह हो जो मुझे, नेहा को और निधि को सब कुछ देती हो और हमारे लिए जीती रही हो। तुम नहीं रहोगी तो इतना जान लो कि हमारे जीवन में सूरज हमेशा के लिए अस्त हो जाएगा... हमेशा के लिए अंधकार छा जाएगा। किसी के लिए नहीं तो कम-से-कम मेरे लिए तुम्हें जीना होगा। ...नहीं लगता है कि भगवान मुझसे खुश है। या हमसे। या हमारे परिवार से। हमारी झोली में दु:ख के सिवाय है ही क्या? लगता है बहुत दिन हो गए खुशियाँ हमारे द्वार से कब से रूठ कर चली गई है।''

लेखक के जीवन का यह सूरज बीमारी से कठिन संघर्ष करते हुए असमय अस्त हो गया था। लेखक ने अपने जीवन के सूरज की मंद पड़ती दीप्ति को अपने पत्रों तक में भर लिया है और वह शब्दों के अर्थ तक में दिख रही है। ये भावाकुल पत्र इस संग्रह का केंद्रीय और मार्मिक भाग हैं।

मॉरीशस के इस प्रथम पत्र-साहित्य के संकलन में मॉरीशसीय हिंदी साहित्य का पुष्ट रूप दिखाई देता है। इन पत्रों में लेखक के साहित्यिक सफर के कई आयाम अर्थ प्राप्त करते हैं। इनमें भारत देश के साथ उसके प्रगाढ़ संबंध और अपनी जड़ों से जुड़े रहने का संगीतमय सांस्कृतिक राग अभिव्यंजित हुआ है। यह एक उपमहाद्वीप से एक द्वीप का गहरा रिश्ता हैं। यह मिट्टी भाषा और संस्कृति का अविछिन्न पत्राचार है। 'मेरे आते-जाते पत्र' संकलन भले ही मॉरीशस का प्रथम पत्र-साहित्य है, और यह इसकी प्राथमिक विशेषता है, किन्तु यह वहाँ के हिंदी साहित्य की प्रौढ़ता में वृद्धि करेगा और उसे उत्कृष्टता की ओर ले जाएगा। यह प्रथम पत्र-साहित्य की पुस्तक मील का पत्थर बनेगी, जिसमें संकलित पत्रों को पढ़कर 'निजाम रामपुरी' का यह बेहतरीन शेर याद आता है-

मज़मून सूझते हैं हज़ारों नए-नए
क़ासिद ये ख़त नहीं मिरे ग़म की क़िताब है।

○○○

मेरा हाफलाइनर: आपकी नजर

हरीश नवल

कुछ दिनों से भारी भय का साम्राज्य मेरे चारों ओर फैलता जा रहा है। 'मी टू' की व्याप्ति के कारण पुरूषों का मर्दत्व खतरे में पड़ रहा है। विगत की चंद वे स्मृतियाँ कौंधने लगी हैं जब दुर्बल क्षणों में हम 'सबल' हो गए थे... नाटकीय अंदाज से जिन बालाओं को मीठी टक्करों के बहाने स्पर्श किया था... गोरे चेहरे याद नहीं रहे पर अपने काले कारनामे बरबस याद आने लगे हैं... किस किस के कब कब कंधे या पीठ पर अपने चुभते हाथ रखे थे, उनकी यादें कसैली चुभन पैदा कर रही है... 'नेक' इरादे जो कभी तेजी से पनपे थे और जिसके वशीभूत 'अकेले में' मिलने की जुगाड़ें रचीं थी, दिमाग को मथने लगी हैं... 'पीड़िताओं' की दैत्यकार कल्पित छवियाँ नींद हराम कर रही हैं... लगता है जाने कब वे हमें 'मी टू' के पंजों में न जकड़ दें... कैसे किस किस को किस बहाने अकेले में बुलाया या नौकरी देने के ब्याज से 'लिबर्टी' लेने का मानो लाइसेंस लिया... आदि आदि भूतकालीन स्थितियाँ अति वर्तमान होने लगी हैं...

लेकिन एक विचार और भी कौंध रहा है कि... 'वे' कितनी बेखौफ और बेफ्रिक होगी जिन्होंने अपने अपने जाल हम पर बिछाए थे... वह क्योंकर चिंतित होगी जिसने हमें अकेला पाकर अंगप्रदर्शन कर हममें ज्वाला भरी थी... या वह जो हमसे बहुत बड़ी जिसने हमें हमारे कैशौर्य में एक रसीली किताब देते हुए चोरी से पढ़ने की सलाह दी थी और कहा था कि इसमें जो नहीं समझ आए, पूछ लेना... या वह जिसका हमने इंटरव्यू लिया था और उसने संदेश भिजवाया था कि यदि उसे चुन लिया, वह 'खुश' कर देगी... या... अला बला ऐसी और भी... नहीं नहीं उन्हें हम याद क्यों कर होंगे... वे सब भयमुक्त विचरण कर रही होंगी... अपनी नींद सो रही होंगी... उनके आचरण पर कोई सवाल जन्मेगा ही नहीं...

... बस भगवान से दुआ माँगते हैं कि वह हमें अभी सेलिब्रिटी न बनाए नहीं तो उल्टा या पुलटा या दोनों हो सकने के चांस बेशुमार हैं... लेकिन एक बुरा सपना यह भी आया है कि यदि कोई भद्रा हमारा बरसों प्राचीन कोई चिट्ठा खोल दे और इस बहाने मीडिया प्रभु हमें जबरन सेलिब्रिटी निर्मित कर दें... तब क्या होगा?? ... काश! 'मी टू' की भांति उसी तर्ज पर अगर 'ही टू' भी होता हम भय में मर मर के न जी रहे होते।

आमीन!

○○○

सम्पर्क: संपादक, गगनांचल

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के विभिन्न आयोजन

16 अगस्त 2019 को रवीन्द्र नाथ टैगोर सेंटर, कोलकाता में आयोजित कार्यक्रम में पूर्व प्रधानमंत्री दिवंगत श्री अटल बिहारी बाजपेयी जी के चित्र का अनावरण

22 जून 2019 को भारतीय उच्चायोग, लंदन में द्वितीय योग सम्मेलन का आयोजन आयुष मंत्रालय तथा स्वामी विवेकानंद अनुसंधान संस्थान बेंगलुरु के साथ मिलकर किया गया

दिनांक 28 जून 2019 को परिषद में हिंदी कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें परिषद के अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने भाग लिया

भा.सां.सं.प. द्वारा प्रायोजित श्री रत्नेश बाबू गंगाधरन के नेतृत्व में, 18–22 अगस्त 2019 तक भरतनाटयम समूह का मलेशिया में सांस्कृतिक प्रदर्शन

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....

.....

.....

.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....

.....

.....

.....

विवरण	शुल्क				प्रतियों की सं.	रुपये/ US$
गगनांचल वर्ष.....	एक वर्ष	₹	500	(भारत)		
		US$	100	(विदेश)		
	तीन वर्षीय	₹	1200	(भारत)		
		US$	250	(विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय		10%			
	पुस्तक विक्रेता		25%			

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं..... दिनांक .....

रु./US$ ..... बैंक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूँ।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएं:
कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं. 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप .....

नाम.....

पद.....

दिनांक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा गत 41 वर्षों से हिंदी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ-साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिंदी का प्रचार-प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश-विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएं परिषद की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केन्द्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाट्यकला से संबद्ध हैं।

परिषद द्वारा भारत में आयोजित अंतरराष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकॉर्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक श्रृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र की दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद के लिए गौरव का विषय है। परिषद का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद मुख्यालय

अध्यक्ष	:	23378616 23370698
महानिदेशक	:	23378103 23370471
उप-महानिदेशक (एन.के.)	:	23370228 23378662
उप-महानिदेशक (पी)	:	23370784
वरिष्ठ कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)	:	23379386
प्रशासन अनुभाग	:	23370834
अनुरक्षण अनुभाग	:	23378849
वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23379638
भारतीय सांस्कृतिक केंद्र अनुभाग	:	23379274
अंतर्राष्ट्रीय छात्रवृत्ति अनुभाग-1	:	23370391
अंतर्राष्ट्रीय छात्रवृत्ति अनुभाग-2	:	23370234
अंतर्राष्ट्रीय छात्रवृत्ति (अफगान अनुभाग)	:	23379371
हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स. 3358, 3347

पंजीयन संख्या, आर.एन/32381/78
ISSN-0971-1430

Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
फोन : 91-11-23379309, 23379310
ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट : www.iccr.gov.in